ॐ

॥ तत् सत्परमात्मने नमः ॥

'ऋग्वेदतत्त्व' यानें 'वेदमें वेदान्त' नामके यह लघु पुस्तक मेरे परमगुरुश्री रंगिनशर्मा (और संन्यासानन्तर शंकरानन्द सरस्वती गुरुश्री कैवल्यानंद सरस्वती) को, उनोनें भवभयतारण जन्ममरणविदारण परमपदकी प्राप्तिका मार्ग बतलाया इससें स्मरणार्थ परम अभेद भक्ति सहित अर्पण करता हुं.

वकील गुलाबराय विजयशंकर छाया.

परम गुरुश्री रंगिनशर्माका उपकार उनके शब्दोंमें उनके भावमात्रको लेकरके विदित करता हुं, इससें उसमें वर्णित स्थितिको में प्राप्त हो चुका हुं ऐसा मेरा कहनेंका आशय नहि.

राग भजन.

अनुकंपा तारी अनूपम आम में जाणी,
वाणीथी जोय ना वखाणीरे अनुकंपा०
ग्रंथि भेदाणी मारी, शंका छेदाणी सघळी कर्मनी कोटियो कपाणी,
त्रिविधिना ताप मारा, चिंता अंगारा ठार्या, ज्ञानगंगानां पूर आणीरे. अनु० १
दृश्य प्रपंच सघळो समरस भासे प्रभु, न्यून अधिकता हणाणी;
भाव अभाव केरी, भावना छुटी सर्वे, स्वप्नानी बाजी समजाणीरे. अनु० २
गुरुए गोविंद मारा, घटमां प्रकटाव्या तेमां, मस्त रहे छे मन वाणी;
धन्य रंगीन छूटी ताणमताणी शाणी, समताराणीथी सुख माणीरे. अनु० ३

प्रकाशकका विज्ञापन.



यह लघु पुस्तक की जिसका संक्षिप्त नाम 'ऋग्वेदतत्त्व' यानें 'वेदमें वेदान्त' दीया गयाहै, इसको प्रकाशित करनेकी शक्ति परमात्मानें कौन कौनसी व्यक्तिद्वारा दी, उन व्यक्तियोंके उपकार माननेको दो एक शब्द लिखनेंको आवश्यकता मानताहुं.

पुस्तकका नाम और तदन्तर्गत विषयोंके लिये मेरे परमगुरुश्री रंगिन-शर्माका यथार्थ उपकार मानता हुं. और उनके अप्रतिम उपकारको प्रदर्शित करके मेरे दिलको संतुष्ट करनेके लिये यह पुस्तक उन महाशयको समर्पित किया है.

जामनगर हाइस्कूलमें दूसरी भाषाके रूपमें संस्कृत भाषा ली थी. इससे स्कूलमें शिक्षणीय पुस्तकोंसें अतिरिक्तभी कइएक पुस्तकोंका परिचय करनेका विचार होनेंके बाद मेरे सद्गत मित्र त्रिभुवन प्रेमजी (प्रश्नोरा नागर) के पास मेरे सद्गत मित्र केशवलाल मणिशंकरके साथ रघुवंश तथा किरातार्जुनीय काव्यके अमुक सर्गोंका परिचय किया. इस वजहसें संस्कृत भाषामें कुछ अधिक अंशसें प्रीति हुई.

राजकोटमें वकीलात् रोजगारके बादोलत निवास होनेंसें श्रीयुत सद्गत वे. पू. आचार्य वल्लभजी हरिदत्तके तरफसें चारो वेदोंके पुस्तक मात्र ७॥ रु. दाममें प्राप्त होतें हैं ऐसी खबर मिलनेंसें 'वेद परमात्माकी वाङ्मय प्रतिमा है और घरमें होंय तो अच्छा, ऐसा विचार करके वे पुस्तक मंगवाये गये, और ऑफिस में प्रतिक्षण दर्शनार्थ पृथक् रक्खे गये.

उस् मोकेपर महात्मा भीखाभाईके समागमका प्रारंभ हुवा, मेरे पिताजी के पास वे हरदम आया करते थे और रहा करतें थे. मेरे पिताजीके शरीरका अवसान होनेके बाद ऋग्वेदके अध्ययनार्थ स्फुरणा हुई. और मेरे मातृकुलके पुरोहित पूज्य पंड्या बावाभाई मोतीरामको राजकोटमें बुलाकरके उनसें ऋग्वे-दका नियमित सस्वर अक्षरोच्चारणात्मक अभ्यास किया. महात्मा भीखाभाई पिताजीके अवसानानन्तर मेरे यहांही निवास करनें लगे. वे अच्छे वेदान्त-

वित् थे. इससे उनोंने मेरी चित्तरूपभूमिकाको वेदान्तविषयके योग्य बनानेंको प्रयास किया.

दूसरी तरफसे ऋग्वेदका अर्थ समजनेकी आवश्यकता मानके सद्गत केशवलालजीके साथ विचार करके ऋग्वेदका सायणाचार्यरचितभाष्य, की जिसके आठ पुस्तक हैं वे मंगवाये. सार्थ वेदभाष्यके अध्ययनमें जामनगर राजकीय संस्कृतपाठशालाप्रधानाध्यापक और दूसरे समयमें राजकोट ट्रेनींग कोलेजके संस्कृत अध्यापक श्रीयुत शास्त्रीजी नारायणजी मूलजीनें बहुत मदद दी, उनके साथ मेरा अत्यन्त स्नेह था, और उनके ज्येष्ठबंधु सद्गत भीमजी व्यासका मेरे पिताजीके साथ घनिष्ठ संबन्ध था.

शास्त्रीजीका थोडे रोजके बाद काशीप्रयाण हुवा और थोडे दिनोंमें उन्का देहान्त हुवा, परंतु थोडे समयमेंभी उनोनें भाष्य समजनेकी ऐसी पद्धति बतलाई, की उनकी कृपासें भाष्य संपूर्ण परिचित हुवा. और उसके अनन्तर नित्य स्वाध्यायके रूपसें आवर्तन करते करते तदन्तर्गत संशय प्रायः निवृत्त हुवे.

वेदमें व्यावहारिक विषय अनेक आते है, और ऐसा कोई प्रसंग नहिं होगा की जिसकी विस्तृत या संक्षिप्त चर्चा वेदमें न हो. ऐसा विचार करके प्रत्येक ऋचाकी एक नोट की. सन १९११ से १९१५ तक वह पूर्ण हुई.

उस् कालमें परमगुरु रंगिनशर्माका समागम हुवा और उनके बादो- क्त वेदान्त विषयोंमें प्रवेश हुवा. और नित्यस्वाध्यायमें वेदके परिशीलन कालमें अध्यात्मविषयप्रतिपादक ऋचायें जितनी दृष्टिगोचर हुई उन् सबोंकी नोट की.

श्री रंगिनशर्माके अवसानकालमें, प्रसंगवशात् 'वेदमें वेदान्तविषय आता है' ऐसे मेरे कथनसें उनोनें स्वयंदेखनेका कहा परंतु शारीरिकस्थिति निर्बल होनेंसे और अन्तसमयमें 'शंकरानन्द सरस्वती' योगपट धारण करके संन्यास लेनेके बाद समाधिस्थ हो गये इस् वजहसें में उनको दिखलाने पाया नहिं, लेकिन उसी समयमें उन् (अध्यात्म विषयक) ऋचाओंको प्रसिद्ध करनेकी स्फुरणा हुई.

श्री रंगिनशर्माके अवसानके पूर्व और पश्चात्‌भी परमहंस हरदेव भारतीके साथ निकट परिचय था. श्री रंगिनशर्माके पास जो कोई पढने योग्य उपनिषदें अपूर्णथी वे उन हरदेव भारतीजीके पास पूर्ण की, उसके अनन्तर करीब दो वर्षमें वे महाराजभी समाधिस्थ हुवे.

उसके बाद परमहंस स्वामी हरिप्रसादजीसें प्रांगध्रामे मुलाकात हुई. वे महाशयभी अध्यात्मविषयक ऋचाओंकी प्रसिद्धिमें संमत हुवे.

महात्मा नवलशंकर मोतीराम की जिन्को बचपनसें वेदान्तका परिशीलन था, वे जामनगर और राजकोटमें रहाकरते थे. जब वे राजकोटमें आतेथे तब हमेशां मेरे पर कृपा करके मकान पर पधारतेथे और भिन्नभिन्न वेदान्त ग्रन्थोंको बांचते, और इस तरह अपने अनुभवका लाभ देतेथे. मुजसें वे वयोवृद्ध तपोवृद्ध थे, तथापि उतना श्रम लेतेथे. उनका में उपकार मानता हुं.

अखीरमें शास्त्रीजी रेवाशंकर जीवनरामका राजकोटमें आगमन हुवा और उनोंने काशीजीमें व्याकरण और वेदान्तमें परीक्षा दीथी इससें उनके संग अध्यात्मशास्त्रके परिशीलनका प्रारंभ किया. उनसें प्रसंगवशात्‌ बातचित होनेंसे ऋग्वेदान्तर्गत अध्यात्मविषयक ऋचाओंके छपवानेमें प्रोत्साहन मिला और प्रत्येक ऋचाके सायणाचार्योक्त भाष्यका हिन्दी भाषामें अनुवाद करनेंका उनोंनें मंजूर किया. और बहुतही परिश्रमके साथ उनोंनें यह कार्य किया.

इस भाष्यके (हिन्दी) अनुवादकी संगतिके विषयमें, परमपूज्य परमहंस स्वामी माधवानन्दपुरीका राजकोटमे अनायाससें चातुर्मास्यके लिये आगमन हुवा था, उनको थोडासा भाग बतलाया, उनोंने संमतिके साथ पसंद किया.

इस प्रकार पुस्तककी प्रसिद्धिमें जिन्‌ जिन्‌ महात्मा और गृहस्थोंनें आश्रय दिया उन सबोंका में उपकार मानता हुं.

पुस्तकान्तर्गत विषयोंके बारेमें यही वक्तव्य है की—वेद अपौरुषेय और अत्यन्त गंभीर है. ऋग्वेदमें समस्त ऋचायें १०७४० हैं. और उसके दशोपनिषद्‌ हैं. उपनिषद्‌ यह वेदान्तविद्यारूपही है. उस स्थितिमें इस पुस्तककी भीतर जहां मात्र १४८ ही ऋचायें पृथक्‌ की गई हैं इनकी कौन गणना हो सके? निर्णय यही है, की सायनाचार्य

के भाष्यमें स्पष्टतया जिन जिन ऋचाओंकी अध्यात्मपरता मुझे अवगत हुई वेही ऋचायें पृथक् की गई है.

वेदान्तज्ञानकी उपलब्धिमें प्रथम निष्कामकर्मद्वारा चित्तशुद्धिकी परम आवश्यकता है. और विक्षेपादि दोषोंके निवर्तनानन्तर आत्मानात्मवस्तु–विषयक विवेक प्रकट होता है. उसके बाद अनात्म वस्तुके तरफ वैराग्य होनेमें आत्मवस्तुकी जिज्ञासा होतीहै. और तत्पूरणार्थ ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय गुरुके पास उपसदनविधिपूर्वक अध्यात्मविषयका श्रवण मनन और निदिध्यासन करनेसे परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार हो सक्ता है. यह पद्धति इस् पुस्तकमेंकी ऋचा-ओंमें क्रमसहित बतलाई है. यद्यपि ऋग्वेदमें वैसी संकलना बहुत करके वेदान्तज्ञानकी प्राप्तिके लिये है ऐसा कहे सकें हैं, तथापि इस पुस्तकमें वेदा-न्तशास्त्रकी एक मुख्यप्रक्रिया यथार्थ संकलित विदित होतीहै. जैसे उच्चकोटिके मुमुक्षुके लिये आत्मपदार्थमें अनात्मपदार्थका अध्यारोप करके पश्चात् अपवाद पुरःसर शुद्धब्रह्मका स्वरूप उपदिष्ट किया जाता है. और उसी प्रकार सृष्ट्यु-त्पत्ति श्रुतिमें अध्यारोप स्पष्ट प्रतीत होता है. और 'नासदासीत' सूक्तमें 'सृष्ट्यु-त्पत्तिके प्राक्कालमें क्या था, यह बतला करके 'सृष्टि कैसे हुई' यह कहा गया हैं. उसके बाद 'परमात्माका स्वरूप वास्तविक कैसा है' यहभी कहा है. इस प्रकार अध्यारोप और अपवादसें परमेश्वरका वास्तविक स्वरूप कहा गया है.

पूर्वोक्त संकलनाका सावधानतासें मनन होगा तो यह पुस्तक पारमार्थिक आत्मस्वरूपका प्रकाशकरूपसें प्रतीत होगा. मूल मंत्र (ऋचा) के पूर्व चार अंग दीयें हैं. वे सब प्रचलित संख्या, अष्टक संख्या, अध्याय संख्या, और वर्ग संख्या बतलाई गई है. और वे स. अ. अ. व. अक्षरोंसें प्रदर्शित की गई हैं.

॥ ॐ तत्सत् ॐ ॥



ॐ

॥ तत्सतपरमात्मने नमः ॥

ऋग्वेद,

(के अन्तर्गत विषयें).

१. ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ऐसे चार वेद है, शास्त्रमें अमुक स्थलमें " वेदत्रयी " ऐसाभी कहा गया है, परन्तु अथर्ववेदका ऋग्वेदमें समावेश करके वह वाक्य उच्चारित किया गया हो ऐसा समझा जाता है. (अष्टक ३-८ १० ऋचा ३ में " त्रयो अस्यपादा " तीन वेद हैं एसा लिखा है, उसके अनन्तर पुरुष सूक्तके ८ ४-१८ में ऋचा ९ में तीन वेद प्रकट हुवे ऐसा लिखा है.

२. शास्त्रीय रीतिसें वेद अपौरुषेय माने जातें है, याने किसी मनुष्यके कृतिविषय वे है नहिं, परतु बृहदारण्यक उपनिषद् (अध्याय २ ब्राह्मण ४ म. १०) में वेद परमात्माके निश्वासरूप कहे गयें है, वह श्रुति-" अस्य महतोभूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणम् " (इत्यादि) इस् तरहकी है, और इसी लीये वेदके प्रत्येक अ यायके प्रारम्भमें सायणाचार्यनें अपनें भाष्यमे मगलाचरणरूपसें लिखा है की-

यस्य निश्वसित वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहवन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥

३. दुसरी तरफ पुरुष सूक्त जो ऋग्वेदमें अष्टक ८ ४-१७, १८, १९, में है, उसके वर्ग १८ के ९ मत्रमें, और जो पुरुष सूक्त यजुर्वेदमें ३१ अध्यायके ७ मत्रमें है, जिसमें ऋग्वेदकी अपेक्षासें ६ मत्र अधिक हैं उसमें, और अथर्ववेदमें काड १९-२-६ में मत्र १३ में है, जिसमें १६ मत्र हैं, परंतु मत्रान्तर्गतशब्दोंकी रचनामें कुछ विशेष है, उसमेंभी, ऋग्वेदमें जैसा कहा है तैसाही बतलाया है यही ऋग्वेदका मत्र है की-" तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच सामानि जज्ञिरे । छन्दासि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्माद जायत " परतु उसका अर्थ ऐसा नहि है की जैसे आकाशादिककी उत्पत्ति परमात्मासें हुई है तैसें ही वेदोंकी उत्पत्ति भी परमात्मासें हुई, लेकीन उसका यही अर्थ है की महा-

प्रलयकालमें वेदभी परमात्माके स्वरूपमें लीन हो जाते हैं, और-पुनः सृष्टिके समय उनका आविर्भाव होता है, उस रीतिसें अर्थ करनेसें बृहदारण्यक श्रुतिके साथ विरोध आता नहि. इस विषयमें श्रीमद्वेदव्यासभगवत्प्रणीत वेदान्तसूत्रों-के जगद्गुरु श्रीमच्छङ्कराचार्यप्रणीत भाष्यमें और "ब्रह्मामृत वर्षिणी" नामक उन् सूत्रोंकी (स्वतंत्र) टीकामें सविस्तर निर्णय किया है (वेदान्त सूत्र १-३-२८ तथा २९ में देखो) याने वेद किसी मनुष्यकी कृति नहि हैं किन्तु अपौरुषेय हैं.

४. वेद अपौरुषेय होनेपरभी किसी एक स्थानमें वेदोंकी रचना हुई है ऐसा कोइ लोक मानते हैं. दृष्टान्त रूपसें कहा जाय तो जिनकी विपुल शास्त्र-दर्शिता प्रतीत होती है वैसे लोकमान्य मरहुम श्रीबालगंगाधर तिलकनें वेदोंकी रचनाके कालनिर्णयमें प्रयास किया है. और यह प्रसंग उनोनें रचे हुवे Artic Homes "आर्टिक होम " नामक पुस्तकमें उपलब्ध होता है: उसका यह अभिप्राय समझा जाता हैकी-कीसी एक प्राचीन समयमें मनुष्योंका निवास उत्तरध्रुवके निकटके प्रदेशमें संभवित हो सक्ता है, और उसी स्थानमें वेदोंकी रचना उसी समय हुई हो यह उपपन्न होता है. इसमें प्रमाणभूत ऋग्वेदकी ऋचा और पारसीओंके झन्ड भाषाके ग्रन्थोंमेंसें फकरेओंका परस्पर मिलान करके उस परसें ऐसा कहते हैं की-उसमें लिखे मुताबिक सूर्य चन्द्रकी गति छत्राकार वर्तुल दिख पडती थी, और यह वर्तुल गति उत्तरध्रुवके निकट प्रदेशमें रहनेवालें लोकोंकोही प्रतीत हो सके, इससें उत्तर ध्रुवके निकट मनु-ष्योंका निवास सिद्ध होता है. परंतु वह कल्पना ठीक नहि पाई जातीहै ऐसा निम्न प्रदर्शित ह कीकतसें मालुम पडता है. (१) अष्टक१-६-२५ ऋचा १० में सूर्यके उदय और अस्तका वर्णन है.उत्तर ध्रुवके निकट प्रदेशमें वैसा होना दुर्घट है. (वस्तुतः सूर्यका उदय और अस्त होता ही नहि. केवल जब मनुष्योंकी दृष्टि-मर्यादासें बहार उनकी गति है तब अस्त माना जाता है) फिर २-७-७ ऋचा ९में प्रदर्शित किये गये सूर्यके विशेषणोंसेंभी यह बात पाई जाती है. औरभी ४-७-३४ ऋचा २१में भी देखनेसें संशय निवृत्त हो सक्ता है. (२)ऋग्वेदमें किसी एक स्थलमे पांच ऋतु होनेका बतलाया है और अधि-कमास होनेकाभी वृतान्त है (२-८-६ ऋचा ३). परंतु उत्तरध्रुवके

प्रदेशमें पांच या छ ऋतुयें होनेका संभव नहि है. ऋतुओंका विभागभी सूर्यकी गतिकी अपेक्षा रखता है. वहांतो शिशिरसमय जादेतर रहना चाहिये. छ ऋतुओंकी जगापर पांच ऋतु लिखें हैं इसका समाधान यही है की हेमंत और शिशिर ऋतुको एकही माने हैं (अष्टक २-८-६ ऋचा ३के भाष्यमें और ऐ. ब्रा. १-१ देखनेंसें निर्णीत होगा). और अधिक मासको सप्तम ऋतु अष्टक २-३-१६ ऋचा १५ के भाष्यमें कहा है. (३) प्रस्तुत विषयमें आनेपर ऋग्वेदमें जहाजके उपयोगके दृष्टान्त अनेक स्थलपर हैं. (१-२-१७ ऋचा ७, १-४-२१ ऋचा २,४-३ २४ ऋचा २, ८-२-४ ऋचा १०) उसी प्रकारसें ९९ नदीयां कहीहैं, मुख्य २१ उनमें भी प्रधान नदीयां ७ कहीं हैं. जहाजोंका उपयोग और उतनी बडी संख्यावाली नदीयोंका उत्तरध्रुव प्रदेशमें होनेंका संभव पाया जाता नहि. कारणकी विशेष बरफ होनेसें वैसा होना संभवित नहि है. नदीयोंके गंगादिक नाम दीयें हैं इससें पूर्व कल्पमेंभी वेही नाम होंगे ऐसा सूचित किया जाता है. नदीयोंकी अधिक संख्याके विषयमें १-२-२८ ऋचा १४ में ९९नदीयां होनेका बतलाया है. और ७-८-२४ ऋचा ३ और ८-२-१६ ऋचा १२ में ७ नदीयां मुख्य है ऐसा लिखतें हैं, और ८-२-७ ऋचा ८ में २१ नदीयां होनेका लिखा है, और ८-२-६ ऋचा १ और ५ में प्रधान तो ७ ही हैं ऐसा नाम निर्देश करके दिखलाया है. और ८-३-७ ऋचा ८ में ऊर्णावती नदी कही है, जिसके तीरपर ऊर्णासमान रोमवाले पशु होतें हैं ऐसा भी लिखा है. (४) और मि. तिलक कहतें हैंकी किसी कालमें हिमके अधिक पातकी संभावना करके मनुष्यलोक अपनी जान मिलकत वचानेंको उपरसे नीचे अनु क्रमसें आये. मि. तिलकका यह कथन है की वैसा हिमपातका समय अमुक वर्षोंके अनन्तर आता है, इससें यह अनुमान हैकी मनुष्यसृष्टि उत्तर-ध्रुवके निकट करीब अमुकसहस्र किंवा अमुकलक्ष वर्षोंकी पहिले थी, लेकिन ऐसा हो तोभी इसी हेतुसें वेदोंकी रचना भी उसी स्थानमें और उसी समयमें होनी चाहिये ऐसा शास्त्रविरुद्ध माननेका कारण नहि है. जहां परमात्मासें वेदोंका आविर्भाव मानतें हैं वहां उस स्थलका उस प्रकारका वर्णन वेदमें उपलब्ध हो तो कोई आश्चर्य नहि है.

५ वेदकी अपौरुषेयताके लिये मन्त्रोंके द्रष्टा ऋषिलोक भी कौन थे उस विषयपर सायणाचार्यने लिखा है उससे भी समझा जाता है,

" तस्य सूक्तस्य द्रष्टत्वा चदीय ऋषिः। वेदप्राप्त्यर्थं तपोऽनुतिष्ठतः पुरुषान्स्वयंभूर्वेदपुरुषः प्राप्नोत्, तथाच श्रूयते–अजान्हवै पृश्नींस्तपस्यमानान्ब्रह्म स्वयंभ्वभ्यानर्ष चदषयोऽभवन्निति। तथा अतीन्द्रियस्य वेदस्य परमेश्वरानुग्रहेण प्रथमतो दर्शनात् ऋषित्वमित्यभिप्रेत्य स्मर्यते—

"युगान्तेऽन्तर्हितान्वेदान्सेतिहासान्महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवेति ॥" अष्टक १-१-१ अनुक्रमणिका

६ *वैदिकमुनि हरिप्रसादकृत वेदसर्वस्वमें* वेदका *आविर्भाव* और विभागके विषयमें लिखा है की—

" मनुष्य सृष्टिके आरम्भमें मनुष्यमात्रके लिये ईश्वरकी अपार दयासें ऋषियोंके हृदयमें जिस ज्ञानका प्रकाश हुवा वही ज्ञान यहा वेद शब्दका ज्येष्ठ अर्थ विवक्षित है। वह जिस आनुपूर्वीविशेषयुक्तशब्दविशेषसें मनुष्य मात्रमें फैलाया गया, उसको " वाक् " कहते है। (पृष्ठ ९)

इस वाङ्मय मन्त्रके तीन विभाग किये है। उनकी प्रतिपादक श्रुति यह है " सा१ एषा वाक् त्रेधा विहिता, ऋचो यजूंषि सामानि "

उन मन्त्रोंका नाम ऋचा है जिनमें अर्थवशपादोंकी व्यवस्था है, अर्थात् जिन मन्त्रोंमें अर्थ अधूरा न रहे, पूरा कहा जाय. इस प्रकारके अर्थबन्धनसे ' एक एक पादमें इतने २ अक्षर हों, न्यून वा अधिक न हों,' इसप्रकार पादोंकी मर्यादा है, उनको ऋचा कहते है. " गीतिषु सामाख्या ' (मीं. २।१। ३६) जो मन्त्र गाये जाते है, उनकी सञ्ज्ञा साम है। ' शेषे यजुः शब्द " (मीं. २।१।३७) ऋचा और सामसे शेषमन्त्र यजु शब्दसे कहे जाते है. (पृष्ठ ११)

जिन मन्त्रोंको ऋचा नामसे कहा गया है, वे अवान्तर भेदसे दो प्रकारके है–एक वे, जिनका यज्ञादि कर्मोंमें कथञ्चिद् उपयोग है. दुसरे वे, जिनका यज्ञादि कर्मोंमें कथञ्चिदभी उपयोग नहिं, किन्तु भैषज्य तथा राजनीति आदि अनेक सर्वजनसाधारण लौकिक विषयोंका प्रतिपादन करते है। इन दूसरे प्रकारके मन्त्रोंकी सञ्ज्ञा " अथर्वाङ्गिरस " है.

७. ऋग्वेदमें ८ अष्टक हैं, १० मंडल हैं, ६४ अध्याय हैं, १०१७ सूक्त हैं, २००६ वर्ग हैं, और ऋचायें १०४७२ (परिशिष्ट वर्जित) हैं, इस प्रकारसे ऋग्वेदका 'वर्द्धर्च' ऐसा नाम यथार्थ है।

८. वेदोंमें कर्म उपासना और ज्ञान इन् तीन कांडोंका समावेश होता है, यजुर्वेदमें देखते हैं तो चालीसमें अन्तिम अध्यायमें ईशावास्य उपनिषद्हीका भाग पाते हैं, ऋग्वेदके अन्तिम अष्टम अष्टकमें वेदान्त भाग ही अधिक रूपसें उपलब्ध होता है, लेकिन उससे अन्तिम भागहीमें अध्यात्म विषय होनाही चाहिये ऐसा कहे सके नहिं, पहिले अष्टकोंमेंभी वेदान्त विषय बहोतसी ऋचाओंमें मालुम पडता है. ज्ञानभाग अथवा वेदान्तको वेदका शिरोभाग कहा जाता है, इससें वेदके अन्त भागहीमें वह विषय होना चाहिये ऐसा संकुचित अर्थ सकारण नहि है, वेदकी कांडत्रयीमें अध्यात्मविषय अप्रतिमफलक होनेसें उसको शिरोभाग कहते होंय तो अनुचित नहि है.

९ ऋग्वेदके अन्तर्गत विषयोंके तलाशकी पहिले यह विषय अवश्य ध्यानगोचर करना चाहिये, वह यहकी पूर्वोक्त प्रकारसें वेद परमेश्वरके निश्वास रूपही हैं, मनुष्यकी कृति नहि हैं. इस विषयमें शास्त्रोंके वचनोंपर अचल श्रद्धा होनी चाहिये, और वेदमें ऐसे विषय, ऐसे नाम, और ऐसे इतिहासोंकी गाथा उपलब्ध होती हैं की जिनसे साधारण लोकोंको वेदकी अर्वाचिनताका भ्रम हो जाता है. विशेषमे जनतामें विद्याके अधिक प्रचारसें और सुधारणामें प्रगतिके वजहसें उन् नामादिकका उपयोग संभवित है इस लिये वेद परमेश्वरके निश्वासरूप न हो करके आधुनिक हैं ऐसी शंका निरवकाशही है, यह निम्नप्रदर्शित विषयसें स्फुट होगा.

१०. ऋग्वेदमें इस विषयका निर्णय पाया जाता है, और वह अष्टक ८-८-४८की तृतीय ऋचामें स्फुट है, उसमें "यथापूर्वमकल्पयत्" ऐसे शब्द हैं. सायणाचार्य उसपर भाष्यके रूपसें लिखते हैं की "यथापूर्वं पूर्वस्मिन् काले अकल्पयत् सृष्टवान् तथैवागामिन्यपि कल्पे कल्पयिष्यतीत्यर्थः" व्यास सूत्रोंमेंभी इस विषयकी चर्चा है, सो उसपरके शांकरभाष्यमें विशदीकरण होता है. देवताओंको ब्रह्मज्ञानका अधिकार है की नहि इस विषयमें संशय होनेकेबाद निराकरणके लिये वेदकी नित्यतासिद्धिके प्रसंगमें सूत्र १-३-

२८में उस विषयको स्पष्ट किया है. वहां ऐसा सिद्धान्त प्रदर्शित किया हैकी–नाम और रूप याने आकार सर्वदा जो सनातन याने अनादि है उनही नाम रूपको चित्तमें याद करके सृष्टिकी उत्पत्ति प्रत्येक कल्पमें ईश्वर करते हैं, "अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा। आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः"॥ सूत्र १-३-३०में वही विषय है, वहांभी ऐसे शब्द हैं की "समान नामरूपत्वाच्चाऽऽवृत्ता वप्यविरोधो दर्शनात्स्मृतेश्च" उस सूत्रकी "ब्रह्मामृत वर्षिणी" नामक (१-३-३० सूत्रकी) टीकामें महाभारतमेंका श्लोक प्रमाणरूपसे दिया है– "यथर्तुष्वृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये। दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु॥ ऋषीणां नामधेयानि याश्च देवेषु दृष्टयः। शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः॥ "भगवान् भाष्यकारभी १-३-२८ सूत्रके भाष्यमें लिखते हैं की–" नाम रूपं च भूतानां कर्मणां च प्रवर्तनम्। वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः॥" इन् सब प्रमाणोंसे स्पष्ट अवगम होगा की वेदमें नाम, आकार, इतिहास इत्यादिक सब प्रत्येक कल्पके वहके वही चले आ रहे हैं; इससे वेदको आधुनिक किंवा मनुष्योंकी कृति कहनेका अवकाश नहिं है.

११. पूर्वोक्त प्रकारसे स्पष्ट रूपसे अध्यात्मविद्या कई एक ऋचामें पाई जाती है परन्तु दुसरे प्रकारसे प्रायः अधिक रूपसे देवताओंको परमेश्वर स्वरूपसे वर्णित किये हैं, इतनाही नहि लेकिन कई एक प्रसंगपर कई एक पदार्थोंकोभी देवतारूपसे कहे हैं, और उसी पद्धतिसे गूढ रूपसेतो सकल दृश्य परमात्मस्वरूपही हैं ऐसा वेदका हार्द पाया जाता है ऐसा कहनेमे अतिशयोक्ति नहिं मानी जायगी. उसके बाद अजातवादकी तरह किंवा विवर्तवादकी तरह अथवा लयचिन्तनकी तरह प्रत्येक दृश्योंका मूल कारणमें लय (चिन्तन) करनेसे वे दृश्य परमात्मरूपही हैं ऐसा भाव उपलब्ध होता है. उस् प्रकारसे जो पुरुष जैसा अधिकारी हो सो अपनी अनुकूलतानुसार उस प्रक्रियाको ग्रहण करे इसी हेतुसे भिन्न भिन्न प्रकार आत्मज्ञानार्थ प्रदर्शित किये होंय ऐसा मालुम होता है.

१२. इस अन्तिम विषयको समग्र रूपसे ख्यालमें रखके सायणाचार्यके भाष्यपरसे वैसी प्रक्रिया जिस जिस ऋचामें दिख पडी है उस उसको

अलक अलक तारण करके "ऋग्वेदतत्त्व" यानें " वेदमें वेदान्त " नामक इस पुस्तकमें प्रदर्शन करनेंको यथाशक्ति प्रयास किया गया है.

१३. पूर्वोक्तक्रमानुसार सब मिलके ऋग्वेदमें १०४७२ ऋचायें हैं. उनमेंसें वेदके अलक अलक प्रसंगसें सात विभाग निम्न प्रदर्शित प्रकारसें व्यवस्थित कियें हैं—

(१) शुद्धवेदान्त किंवा अध्यात्मविद्यामें जिन् ऋचाओंका अर्थ हमको स्पष्ट रीतिसें अवगत हुवा है वैसी ऋचायें.

(२) तत्तद्देवताको उद्देश करके किसीको परमात्मा, अन्तर्यामी, नियामक, व्यापक, इत्यादि रूपसें जिनमें वर्णन कियें हैं वैसी ऋचायें.

(३) मनुष्योंमेंसें तप और मंत्रके प्रभावसें जो लोक देवत्वको पाये हैं उन विषयोंको बतानेवाली ऋचायें.

(४) देवताओंकी शक्ति किंवा पराक्रम बतलानेवाली ऋचायें.

(५) वैदिक मन्त्रोंके जपसें अथवा प्रकारान्तरसें यथाविधि अनुष्ठान करनेंसें प्राप्त होनेवाले प्रभावको बतलानेवाली ऋचायें.

(६) पुराणोंमें कहे हुवे अवतार सरिखे प्रसंगोंको बतलानेवाली ऋचायें.

(७) व्यावहारिक विषयोंको बतलानेवाली ऋचायें. पूर्वोक्त विभागोंमें किस किस रीतिसें प्रसंग अथवा विषय प्रदर्शित कियें हैं सो निम्न भागमें प्रदर्शित किया है.

१४. प्रथम विभागमें अध्यात्मतत्त्व और उसको उपलब्ध करनेके लिये उपाय और ज्ञानका प्रभाव बतलाया है. पारमार्थिक तत्त्वको उपलब्ध करनेको उत्सुक मुमुक्षु जनोंको अज्ञानकी निवृत्ति द्वारा कामक्रोधादिक विकारोंको निर्मूल करनेके लिये चित्तशुद्धि संपादनार्थ निष्काम कर्म करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है, यह विषय २-२-७ ऋचा १२ में निष्काम यज्ञयागादि कर्म चित्तशुद्धिके द्वारा निरतिशयानन्दरूपब्रह्मप्राप्तिमें सहायक होनेसें संसारसागर उतरनेका साधनरूपसें कहे गये हैं. किंवा उसका नौकारूपसें, सामर्थ्य प्रदर्शित किया है. ऋचा १ और ५,२-२-२४ में विष्णुशब्दका अर्थ सर्वतन्त्रस्वतन्त्र अगाध और अचिन्तनीय शक्तिवाला व्यापक परब्रह्म परमात्मा

(अर्थरूपसे) बतलाया है, और उसी तरह २-३-१४ में ऋचा १,४,५ में भी ब्रह्मका अचिन्त्यशक्तिमत्त्व प्रकट किया है. और ब्रह्म किसीका ज्ञेय (ज्ञान विषयीभूत) नहि है यह भी निर्दिष्ट किया गया है. ऋचा १६,२-३-१७ में स्त्रीपुरुषादिक संज्ञा (नाम) को निरवकाशत्वप्रदर्शन सहित संपूर्ण यह जगत् ब्रह्मस्वरूपही है ऐसा निर्णीत किया है. उसके बाद ऋचा २० और वर्ग १८ की ऋचा २१,२२ में जीवात्मा और परमात्माका वास्तविक अभेद स्फुट कहा गया है. (इन तीनो ऋचा सहित १६४ सूक्त २-३-२३ तकका वामन सूक्त कहा जाता है, यह सब अथर्ववेद ९ काण्डके ४ तथा ५ अनुवाकके अन्तर्गत है, उसमें थोडासा विशेष है. ऋचा ३०, २-३-१९ में वैराग्य प्राप्त करनेके लिये शरीरकी असारता और क्षणिकता बतलाकरके तदन्तःप्रतीयमान जीवात्माको नित्य निरूपित किया है, और २० वर्गकी ३२ ऋचामें गर्भवासके असह्य क्लेशसे बचनेके लिये आत्मज्ञानकी आवश्यकता सिद्ध कही हुई है. यह सब प्रकार निष्काम कर्मोंसे चित्तशुद्धि होनेके बाद विरक्ति होनेसे साधनचतुष्टय संपादन करके ब्रह्मके अपरोक्ष विज्ञानमें पूर्ण उपकारक बतलाये गये है.

१५. इस प्रकार चित्तशुद्धि होजानेके बाद साधनचतुष्टयसंपन्न होकरके साक्षादपरोक्षपरब्रह्मके स्वरूपका २-३ २१ ऋचा ३६ से, ३९ तक प्रदर्शन किया गया है. और यह अवश्य अपरोक्षज्ञान होनाही चाहिये ऐसा स्फुट कहा गया है. और ऋचा ४६ अष्टक २-३-२२ में परमात्मा एक होने परभी उपाधिके भेदसे भिन्नतया प्रतीत होता है ऐसा कहा हुवा है. और इसके अनन्तर अध्यारोप और अपवादकी प्रक्रिया बतला करके ज्ञान प्राप्त करनेके मार्गको बतलानेके लिये समग्र भूतभौतिक जगत् परमात्मासे ही उत्पन्न हुवा है ऐसा २-५-२ ऋचा १ में निरूपित किया गया है. और द्यावापृथिवीका कारण कौन है और द्यावापृथिवीमेंसे पहिले कौन उत्पन्न हुवा है ऐसा प्रश्न करके समस्त स्थावरजंगमात्मक प्रपंच परमात्मामें ओतप्रोत है ऐसा स्पष्ट प्रतिपादन किया है.

१६. अष्टक ३-४-१० ऋचा १०में गायत्रीमंत्र है. सायणाचार्यने उस मंत्रका शाङ्कर भाष्य दीया है उसमें व्याहृति और शिरःसहित गायत्री मन्त्रके प्रत्येक पादोंका रहस्य प्रकट किया हुवा है. (तथाहि) 'भूरिति सन्मात्रम्'

लोकमें जो कुछ सद्रूपसें अवस्थित है सो ॐकारवाच्य ब्रह्मही है. 'भुवइति चिद्रूपम्' परमात्मा स्वयंप्रकाश होनेसें सबोंको प्रकाशित करते हैं, इससें वह चिद्रूप है. और 'स्वरिति सुखस्वरूपम्' परमात्मा अखंडानन्द रूप हैं. यानें भूरादिक तीनो व्याहृतियोंसें परब्रह्म परमात्मा सच्चिदानन्दरूप है, यह निर्दिष्ट किया गया है. इसी तरह भूरादिलोकभी ॐकारवाच्य ब्रह्मरूपही है. सिवाय परमात्माके और कुछ हैही नहिं यह समुदित अर्थ विशद किया गया है. व्याहृति और शिरोभागसेंभी सर्वात्मक अखंड अद्वितीय सच्चिदानंदरूप अर्थ समझाया गया है. यानें सर्वव्यापक, सर्वप्रकाशक, सर्वोत्कृष्ट, नित्यमुक्त, आत्मरूप सच्चिदानन्दात्मक ॐकारवाच्य जो ब्रह्म है वह में हुं यह तात्पर्य सूचित कर दिया है.

१७. अष्टक ३-५-२५ और २६ वह सूक्त १८ में है. उसमें ऋचायें १३ हैं. उन्में वामदेव ऋषिको गर्भस्थानमें भी ज्ञान हो गयाथा वह वृत्तान्त प्रदर्शित किया है. वामदेव ऋषिको गर्भहीसे ज्ञान होनेके सबब गर्भवासका और योनिद्वारा वहार आनेका तिरस्कार होनेसें यानें गर्भस्थिति और योनिद्वारा अपसरण यह नापसंद होनेसें योनिद्वारसें वहार आना उनोंनें नामंजूर किया. और अपनी माता शचीदेवीका पार्श्वभाग (कुक्षि) विदारण करके वहार आनेको तत्पर हुवे. ऐसा होनेसें उन् शचीदेवीने अपने प्राणत्राणार्थ इन्द्रकी माता अदितिका ध्यान किया, उसी समय अदितिभी इन्द्रको साथही में लेकरके वहांपर आ पहुंची की जिस आश्रममें वामदेवजीकी माता शचीदेवी तकलीफ पा रहीथी, वहांपर उपस्थित होकरके इन्द्र और आदितिने वामदेवजीको समझाये और उनके वचनोंको मंजूर करके वामदेवजी उसी योनिमार्गहीसें वहार आनेको स्वीकार करते भये. वामदेवजीका उसके अनन्तर द्वितीय जन्म हुवा नहिं. उनके अपरोक्षानुभवका माहात्म्य इसी (३) अष्टकमें अध्याय ६ वर्ग १५ और १६ में प्रदर्शित किया गया है. और वामदेवजीनें "अहं मनुरभवं सूर्यश्च" इत्यादिक मंत्रोंमें अपना सार्वात्म्यभाव प्रकटित किया है. गर्भहीमेंसे जन्मान्तरानुष्ठित साधनोंसे ज्ञान होनेपरभी महात्माओंकोभी योनिद्वारहीसें वहार आना पडता है, और वैसे अपरोक्ष ज्ञानवाले महात्मा पुरुष अवशिष्ट प्रारब्धमात्रका उपभोगपर्यन्त इस लोकमें

जीवन्मुक्त रूपसें रहेतें है लेकिन उनका दूसरा जन्म होता ही नहि. यह तात्पर्य भी उसी अष्टकमें बतलाया गया है.

१८ अष्टक ३–७–१४ की ५ ऋचा आदित्य स्वरूपकी प्रत्यायक मालुम होती है. और वही ऋचा इतर उद्देशसें परब्रह्मके स्वरूपकाभी निरूपण करती है. और वही मत्र कृष्णयजुर्वेदीय कठवल्ली उपनिषद्में २-२-२ मेंभी है.

१९ अष्टक ४-५-११ ऋचा २ से ५ तकमें परमेश्वरका अत्यन्त गहन स्वरूप कहा है याने अपचीकृत पंच महाभूत और पंचीकृत पंच महाभूतके कार्य सूक्ष्म और स्थूल शरीर और सकल दृश्यवाले संसारमेंभी परमात्मा वस्त्रोंमे तन्तुओंकी तरह ओतप्रोत है. लेकिन हरएक लोक उसको यथोर्थ समज सक्ते नहिं. जिस किसीका अज्ञानात्मक आवरण नष्ट हो गया हो वही सिर्फ जान सक्ता है. और उसी अष्टक ४-७-३३ ऋचा १८ में इन्द्रको परमात्मस्वरूपसें वर्णित कियें हैं. और वही इन्द्रशब्दके लक्ष्यार्थ परमात्मा अपनी मायाशक्तिसें प्रत्येक प्राणिमात्रके अन्तःकरणमें प्रतिबिंब स्वरूपसें भिन्न भिन्न स्वरूपसें (सुज्ञोंको) प्रतीयमान होतें है. यह श्रुति "बृहदारण्यक उपनिषद्"२-५-१९ में भी है.

२० परिपूर्ण ज्ञानवाले वसिष्ठ ऋषिके दृष्टान्तसें ज्ञानका महत्त्व अधिक रूपसें पाया जाता है. अष्टक ५–३–२३ ऋचा ८ से १० तक और वर्ग २४ ऋचा ११ से १४ तक किसी प्रबलसंस्कारके प्रभावसें वसिष्ठ ऋषिको जब उर्वशीके उदरमें गर्भरूपसें प्रविष्ट होनेका संकल्प हुवा तब वसिष्ठजीने अपनें ज्योतिःस्वरूपका किस प्रकारसें अतिक्रमण किया है उस वृत्तान्तकी प्रशंसा की गई है.

२१ अष्टक ६–७–१६ सूक्त १ मंडल ९ सें पवमानका प्रारंभ होता है. वह अष्टक ७–२–१८ तक है. एकादशी किंवा जयन्ती अथवा मरणोन्मुख प्राणिकी समक्ष इस पवमानका पाठ करनेंसे महत् पुण्य होता है और मरणोन्मुख प्राणिकी सद्गति होती है. इस पवमानमें कई एक देवताओंका नाम निर्देश किया है. और कई एकको परमेश्वर स्वरूप कहे हैं.

२२ अष्टक ७–७–१६ ऋचा ९ और १० में और वर्ग १७ की ऋचा ११–१२–१३ में अध्यात्मविषयका निरूपण किया गया है. उसमें इन्द्रको

परमेश्वरस्वरूपसें कहा गया है. और हृदयाकाशमें अन्तर्यामिस्वरूप जो प्रत्यक् चैतन्य उपलब्ध हो रहा है उस रूपसेंभी परमेश्वरको निरूपित किया है. और स्थावरजंगमात्मक समग्रदृश्यसहित इस जगत्का कर्ता भी कहा है. स्त्री-स्वरूपसेंभी वह परमेश्वरही आविर्भूत हुवें है ऐसा कहा है.

२३ अष्टक ८-२-२३ ऋचा १-४ में वेदका आविर्भाव किस तरह हुवा इसके ज्ञानका माहात्म्य बृहस्पतिने बतलाया है की—

॥ यज्जोतिः परमंब्रह्म यद्योगात्समुपाश्नुते ।
तज्ज्ञानमभितुष्टाव सूक्तेनाथ बृहस्पतिः॥

और ८-३-१६ ऋचा १ सें ६ में परमात्माने अपनी मायाशक्तिद्वारा विश्वकर्मस्वरूपसें जगन्निर्माण किस तरह किया? पहिले क्या था? प्रलयकालमें क्या था? और वह जगत् दृश्यकोटिमें कैसे आया? और परमेश्वरने उसी जगत्में प्रवेश किस तरह किया? किंवा चैतन्यरूपसें कैसे स्फुरित वे हुवें है! यह सब वृत्तान्त विस्तारसें विशद किये गये है. और सृष्टिके प्रारंभमें परमात्माने किसी पदार्थकी सहायता ले करके जगत्की रचना की? क्योंकी जैसे कुम-कार घट बनानेमें दंड, चक्र, चीवर, मृत्तिका, जल इत्यादिक पदार्थोंकी मदद विना लिये कार्यारंभ कर सक्ताही नहिं, तैसेंही परमात्माने कौनकौनसे पदा-र्थोंकी मदद ले करके रचना की है? इत्यादिक विषयोंमें परमेश्वरकी अचिन्त्य-शक्तिका परिणाम और उसका महिमा ही है ऐसा उत्तर दिया गया है. और विशेषरूपसें यह कथा गया है की परमेश्वरको जगन्निर्माण करनेमें किसी पदा-र्थकी सहायता लेनी नहि पडी. वही खुद तत्तत्स्वरूपसें प्रतीत होता है. सृष्टिमें सबोंके चक्षु, मुख, बाहु, चरण इत्यादिक सब वही है. और यहभी कहा है की एक मकानके बनानेमे शिल्पी जंगलमेंसें बडे बडे काष्ठ काट करके परिमाणानुसार उसको दुरस्त बना करके मकानके उपयोगमें लाता है वैसें इस विश्वभवनको बनानेमें उपयुक्त साधनसामग्री वे परमात्मा कहासें लायें होंगे? ऐसा प्रश्न करके उसका उत्तरभी दिया गया हैकी ब्रह्मरूप जगत्में समग्र साधनसामग्री अपनी शक्तिद्वारा लेकरके विश्वात्मक भवनको रचा हो ऐसा प्रतीत होता है. परमेश्वर एकही होते हुवे उनोंने किस प्रकारसें विविध शरीरा-त्मक भुवनोंको रचे यह प्रश्न फिर रहता नहि. यही परमेश्वरकी अचिन्तनीय

शक्ति है. उसी अध्यायके १७ वर्गकी २ ऋचामें प्राणिमात्रके शुभाशुभ-कर्मोंके फलोंको देने वालेभी वही विश्वकर्माके लक्ष्यभूत परमात्मा है एसा कहा है.

२४. पुरुष सूक्त ८-४-१७ और १८ और १९ वर्गमें है उसकी १६ ऋचायें हैं, यही पुरुषसूक्त यजुर्वेद और अथर्ववेदमेंभी कुछ न्यूनाधिक-रूपसें प्रदर्शित किया गया है. वेदार्थके गौरव और रहस्यको यथार्थ न समझके कईएक लोक इस पुरुषसूक्तके उपरसें " नरमेध (पुरुषयज्ञ) " की कल्पना कर के वेदको दूषित करतें है. लेकिन सायणाचार्यने इस विषयको बहुतही स्पष्ट किया है ऐसा भाष्यसे पाया जाता है. उस पुरुषसूक्तके द्वारा वेद परमात्माका व्यापकत्व निरूपण करतें हैं. वह " ऋग्वेदतत्त्व " पुस्तकके पृष्ठ ७६ सें ८५ तक देखनेसें अवगत होगा.

पुरुषसूक्तमे नरमेधका प्रतिपादन करतें है यह मन्तव्य बिलकुल निर्मूल है. एकही परमात्मा सर्वव्यापक है और उनके अधीन रहनेवाली मायाके वजहसें आध्यासिक जगत् अनुभूयमान हो रहा है, और उसी मायाके वजहसें जगत् फिर लीन होता है इत्यादि उस पुरुषसूक्तमें प्रतिपादन किया है. और यज्ञ, हविष्य, अध्वर्यु, समिध प्रभृति सकलसामग्री तथा यजमान यह सब परमात्मस्वरूपही है औरअन्य कुछहै ही नहि. ऐसा पुरुषसूक्तका अभिप्राय पाया जाता है. पुरुषसूक्तोक्त सृष्टिक्रममें संदिग्ध विषय पाया जाता है, याने तैत्तिरीय उपनिषद्में प्रथम पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति होनेके बाद उनी भूतोंसें जगत्की सृष्टि बतलाई गई है, और छान्दोग्य उपनिषद्में सिर्फ तीन ही भूतों-की याने तेज, जल, अन्न, (पृथ्वी) की उत्पत्ति कही गई है. और ऐतरेयो-पनिषद्में औरही प्रकार बतलाया गया है. उन सब विषयोंमें श्रीव्यास भग-वान् और जगद्गुरुश्री आद्य शंकराचार्य वेदान्तसूत्रमें ऐसा निर्णय करतें है की उन उपनिषदोंकी श्रुतियोंका उद्देश सृष्टिका अनुक्रम बतलानेका नहि था किन्तु ब्रह्मविद्याका बोध करनेके लिये और जगत्की असारता और क्षणिकता प्रदर्शित करनेके लिये मात्र कल्पना की गई है. भगवान् श्री शंकराचार्यजी २-३-३३ सूत्रके भाष्यमें लिखतें है की " न चेयं परमार्थविषया सृष्टिश्रुतिः, अविद्याकल्पितनामरूपव्यवहारगोचरत्वात्, ब्रह्मात्मभावप्रतिपादनपरत्वाच, इत्येतद-

पि नैव विस्मर्तव्यम्" इससे यह पाया जाता है की सृष्टिक्रम जिस कालमें जैसा अनुकूल हुवा तैसा आगे पीछे व्युत्क्रमसेंभी बतलाया गया है. वह सिर्फ अध्यारोप करके अपवादद्वारा ज्ञान प्राप्तिके लिये ही है. इससें सृष्टि प्रकारके व्युत्क्रममें लक्ष्य देनेकी आवश्यकता नहिं. (वेदान्त सूत्र १.४ १४ तथा १५ देखो).

२५. अष्टम अष्टकके सप्तम अध्यायमें बहुतसें वर्गोंमें अध्यात्म-विषय उपलब्ध होता है. प्रथमवर्गमें परमात्माही मायाद्वारा जगत्का कारण है ऐसा प्रतिपादन किया है. उसी तरहसें ११ और १२ वर्गमें "अंमृग महर्षि" की दुहिता (पुत्री) "वाग्" नामा ब्रह्मविज्ञानवाली अपने आत्माका उद्देश करके परब्रह्मस्वरूपता भिन्नभिन्न प्रकारसें प्रकट करती है, याने सकल देवतारूप मैंही हु, सोमभी मैं ही हु, सब लोक मेरीही सत्तासें अन्नप्राशन करतेंहै, मेरीही सत्तासें लोकोंकी चक्षुरादिक इन्द्रियां अपने अपने व्यापारमें तत्पर हो सक्तीं हैं. श्वासोच्छ्वासकाभी कारण मे ही हुं. सचराचर विश्वका मूल-कारण मैं ही हु. रक्षितव्यकी रक्षा मैं ही करती हुं. ब्रह्मदेवको जगत्का सृष्टा मैं ही बनाती हुं. और ऋषियोंकी अतीन्द्रियदर्शिता मैंही बक्षीस करती हुं. बुद्धिमत्ताभी मेरे तरफसेंही दी जाती है. सर्वान्तर्यामितया प्रविष्ट हो करके सर्वत्र मैं ही रहती हु. महादेवजीको त्रिपुरासुरके विजयप्रसंगमें धनुप् बाण मैनेही सज्ज कर दिये थे. पचमहाभूतोंको अपने अपने कार्यमें तत्पर मैंही करती हुं, इत्यादिक सार्वात्म्यभानको वह अमृण ऋषिकी पुत्री "वाग्देवी" प्रकट करके विज्ञानशक्तिसे लभ्यमान सर्वशक्तिमत्त्व और सर्वज्ञत्वको विशद करती है.

२६. इस (अष्टम) अध्यायमें (८-७ १७ में) "नासदासीत्" नामक सूक्त है. जिसको नासदीय (१२९) सूक्त कहते हैं. एतदन्तप्रक्रियासें सोपाधिक (मायाशबलित) ब्रह्मके स्वरूपका प्रवचन करके भेदाभास प्रत्या-यक वाक्योंसें ब्रह्मकी शक्ति सत्ता और स्फूर्ति यह बतला दिया. याने वेदान्त-शास्त्रके प्रधान प्रकरणानुसार अध्यारोप करके अब अग्रिमऋचयोंसें अध्यारोपित पदार्थोंका अपवाद निरूपित करते है. मतलब यही है की ब्रह्मस्वरूप यद्यपि मन और वाणीका अविषय है इस लिये उन ब्रह्मस्वरूपके अधिगमके लिये शब्दकी प्रवृति करना उचित नहि, तथापि वाचिक प्रवृत्तिके विना समझमें

आना अशक्य होनेसें और वह स्वरूप वाचिक प्रवृत्तिका अगोचर होनेसें प्रथम अध्यारोपकी कल्पना करके उस अध्यारोपकी पहिले वह स्वरूप किस हालतेंमें था और मायाद्वारा अध्यारोप करित करनेके बाद वह किस तरह प्रतीत होता है, और अगर उस अध्यारोपितका अपवाद कर दिया जायतो अवशिष्ट क्या और कैसा रहता है यह सब वर्णन करतें हैं.

इस सूक्तमें सृष्टिके आविर्भावकी पहिले याने महाप्रलयकालमें जो जगत्का मूलकारण था वह शशशृंगकी तरह अत्यन्त असत् नहि हो सक्ता. और आत्मतुल्य अबाधित सद्रूपभी वह मूलकारण नहि था, और भूरादि-लोक पंचमहाभूत भोक्ता भोग्य मृत्यु अमृत दिन रात केनिमित्त सूर्य चन्द्र तन्निमित्तक मास ऋतु का समष्टिरूप काल वगैरह नामरूपात्मक प्रपंच था ही नहि किन्तु सकल सिद्धान्तसिद्ध पारमार्थिक सत्य ब्रह्मतत्त्वही था. वर्तमानकालमें परिदृश्यमान जगत सृष्टिके पूर्वकालमें नहि था. (पूर्वपक्ष) जब यह दृश्यमान जगत् उसकालमें नहिं था तो उसकी उत्पत्ति किस प्रकारसे हुई ? (सिद्धान्त) सृष्टिके पूर्वकालमें यह जगत् भावरूप अज्ञानसें आच्छादित था, जिस अज्ञानको " माया " भी कहते हैं. जब उसी मायासें " नाम " "रूप" का आविर्भाव हुवा तब उसका उत्पत्तिशब्दसें व्यवहार किया गया है. इसके बादकी ऋचाओंमें प्रपंचोत्पत्तिका प्रकार प्रदर्शित किया है. इस प्रकार जब शुद्ध ब्रह्मके सिवाय कुछभी प्रथम नहिं था तब अध्यारोपद्वारा सृष्टिके प्रादुर्भावका प्रकार कहा गया है. वैसी यह सृष्टि कहासे उत्पन्न हुई और किसनें की यह यथार्थ समझना देवोंकोंभी दुर्लभ है. क्योंकी जिस कालमें सृष्टिका प्रारंभ हुवा उस समयमें कोई देवादिक थेही नहि.

२७. इसी अध्यायके २३ वर्गमें कठवल्लीकी आख्यायिका कही है जिसमें यमराज और नचिकेताका संवाद बीजरूपसें प्रदर्शित किया है. नचि-केता अपनें पिताजीकी आज्ञासें यमराजके पास गये हैं और उनोंनें यमराजको संतुष्ट करके उनसें तीन वरदान प्राप्त किये है. उनमें के आन्तिम वरदानसें ब्रह्मविद्याकी याच्ञा की है. वह ब्रह्मविद्या न देनेको और नचिकेता उस ब्रह्मविद्याके अधिकारी हैं की नहि इस वृत्तान्तको अवगत करनेके लिये यमराजने दीर्घायुष दिव्यभोग वगैरह पदार्थोंसें बहुतसा प्रलोभन किया परंतु जब नचिकेताने वास्त-

विक वैराग्य प्रदर्शन करके भोगोपरति बतलाई तब यमराजनें ब्रह्मविद्याका बोध किया, यह सब कठवल्ली–यजुर्वेदीय उपनिषदमें है. और यह इस जग (२३ वर्गमें) भी कहा गया है.

२८. अष्टम अध्यायके ३५ वर्गकी प्रथम और द्वितीय ऋचामें जीवात्मा और परमात्माका अभेद आहितसंस्कार होनेंसें अन्तर्मुख मनसे अवगत हो सक्ता है, याने साक्षात्कारकी योग्यता हो सक्ति है यह कहा गया है. और परमात्माने जगन्निर्माण करनेको किस तरह पर्यालोचन करके जगदुत्पत्ति की है यहभी संक्षेपसें कहा गया है. इस प्रकार प्रथमवेदान्तविभाग संपूर्ण होता है.

२९. दुसरे विभागमें कईएक देवताओंको और विशेष करके इन्द्रको वारंवार परमात्मरूपसें वर्णित किये हैं. वह संक्षिप्त प्रकारसें कहतें है.

अष्टक १-१-५ चतुर्थ ऋचामें इन्द्रका परमात्म स्वरूपसें वर्णन किया है. उस ऋचामें इन्द्रशब्दकी भिन्नभिन्न व्युत्पत्ति करके वह नामाभिधान परमात्माहीका है ऐसा कहा गया है. जैसे “ भूतानि प्राणिदेहान् इन्धे जीवचैतन्यरूपेण अन्तःप्रविश्य दीपयतीतीन्द्रः”. बृहदारण्यकोपनिषदमें ४-२-२में “इन्द्र” शब्द इन्ध माने “ प्रकाशकतासे प्रत्यक्ष ” इस शब्द उपरसें परोक्ष रीतिसें प्रयुक्त होता है ऐसा आधिदैविक और आध्यात्मिक पद्धतिसें अर्थावगम करतें हैं. और ऐतरेयोपनिषदमें १-३-१४ मंत्रमें “ इदन्द्र ” ऐसा परमेश्वरका नाम कहा है, और उसीके बादोलत “ इन्द्र ” शब्दभी परमात्माको उद्देश करके प्रयुक्त होता है, इससें उन दोनोंकी समानता (लक्ष्यार्थरूपसें) पाई जाती है. श्री सायणाचार्य (१-१-५ ऋ. ४) भाष्यमें लिखतें हैकी—

“यद्यस्मात्कारणात् एनं परमात्मरूपमिन्द्रं देवं प्राणैर्वाक्चक्षुरादीन्द्रियैः प्राणापानादिवायुभिश्च सहितं समैन्धन् उपासकाः ध्यानेन सम्यक् प्रकाशितवन्तः तद्यस्मात्कारणादिन्द्रनाम संपन्नम्”. औपमन्यव नामक ऋषि कहतें हैं की—“इदंदर्शनादिन्द्र इति निर्वचनमाह, इदमित्यापरोक्ष्यमुच्यते, विवेकेन हि परमात्मानमापरोक्ष्येण पश्यति इत्यादि”.

उसी प्रकार अष्टक २-१-२१ की पंचम ऋचामें इन्द्रको अन्तर्यामी कहे हैं. और ३-३-१२ चतुर्थ ऋचामें इन्द्रदेव कार्यवशात् भिन्न भिन्न स्वरूप धारण

करतें हैं ऐसा कहे करके २-३-२० की अष्टम ऋचाको देखनेका कहतें हैं, और इस ऋचामें अष्टक ४-७-३३-१८ ऋचाका निर्देश किया हुवा है. जिसमें बृहदारण्यक उपनिषद्का २-५-१९ मंत्र बतलाया है. इसी प्रकार वेदमंत्र और उपनिषद्की श्रुति ऐकमत्य करके 'इन्द्रदेव भिन्न भिन्न स्वरूप धारण करतें हैं' ऐसा सिद्ध करतें है. उनी इन्द्रदेवको "तदेतद् ब्रह्मापूर्व मनपर मनन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूरित्यनुशासनम्" यह श्रुति इस प्रकार कहती है. उसी प्रकार अग्निदेवको १-४-२५ ऋचा १ में और ३-१-२० ऋचा ४ में अन्तर्यामी नियामक रूपसें कहतें हैं. और वर्ग २७ की सप्तम ऋचामें उनका सर्वात्मकत्व प्रतिपादन करके ब्रह्मत्व सिद्ध किया है. उसी तरह अष्टम ऋचामें उन अग्निदेवको परमात्मस्वरूपसें कहतें हैं, और अन्तर्यामी सर्वात्मकभी कहा है. वैदिक मुनि हरिप्रसादजीने अपने वेदान्तदर्शन नामक पुस्तकमें पृष्ठ १३८, १३९ में इस विषयपर प्रत्येक वेदमेंसे मंत्रोको बतलायें हैं—ऋग्वेदमेंसें २-३-२३ ऋचा ४६, यजुर्वेदमेंसें ३२-१ और अथर्ववेदमेंसें १३-४-४, ३-४-५.

३०. तीसरे चौथे और पंचम विभागके लिये तो वेदभगवान्के उपर पूर्ण श्रद्धावाला अधिकारी ही योग्यतासंपन्न कहा जाता है. तीसरे विभागमें मनुष्य तपोबलसें देवकोटिको भी पा सक्ता है इसका दृष्टान्त है. बृहदारण्यक उपनिषद् (४-३-३३) में और तैत्तिरीय उपनिषद्में (२-८) मनुष्य, पितृ, गंधर्व, कर्मदेवता, देवता, प्रजापति, इत्यादिकके आनन्दमें उत्तरोत्तर शतगुण उत्कृष्टता बतलाके परमात्माका आनन्द इनसेंभी उत्कृष्टतर है ऐसा बतलाया है. और उसी प्रसंगमें मनुष्य कोटिमेंसें तपके प्रभावसें देव कोटिमें प्रविष्ट होते हैं ऐसा बतलाया है. वेदमेंभी मनुष्यमेंसें तपके प्रभावसें देवकोटिको पाये भये "ऋभु" नामक तीन भाइओंके वृत्तान्तका अष्टक १-२-१ और २ वर्गमें प्रारंभ होता है. और उनके पराक्रमोंका प्रभाव कहा है. उन्ने अपने वृद्ध माता पिताको युवावस्था मंत्रबलसें बक्षीस कीथी और वे लोक निष्कपट और निष्पाप थे इससें उनको मंत्र सिद्धिप्रद होते थे. (१-२-१ ऋचा ४).

३१. चतुर्थविभागमें देवताओंके पराक्रम प्रदर्शन कियें हैं. जबकी "ऋभु" नामक बंधुओंने मनुष्य होनेपरभी अपने तपोबलसें देवत्वको प्राप्त करके पूर्वोक्त पराक्रम कियें है तब स्वतःसिद्ध देवत्ववालें इन्द्र, अश्विनी-

कुमार, मित्रावरुण, सूर्य इत्यादिक देवोंने असाधारण पराक्रम किये होंय इसमें आश्चर्य नहि. उन पराक्रमोंका संक्षिप्त प्रकार कहते हे—(१) कई एक भक्तोंको संतति नहिं थी तो देवताओंने उनके लिय संततिका प्रबंध किया है, और जिनके भाग्यमेंसंतति नहिं थी उनको देवोंने खुद अवतार धारण करके संतानवाले बनाये है यह वृतान्त १-१ २० ऋचा ११ और ३ ५ २३ ऋचा १४ में है (२) किसी एक मनुष्यको किसी जलाशयमें फेंक देनेसें वह गतासु हो गया फिरसे उसको वहासें निकालके सजीवन किया. यह वृत्तान्त १-७-२४ ऋचा ६ और २ ३-१ ऋचा ३ और ८-२-११ ऋचा १२ में है. श्री कृष्ण परमात्मानेभी अपनें गुरु श्री सांदीपनिके समुद्रमें डुबे हुवे पुत्रको सजीवित ला करके गुरुश्रीको अर्पित किया था यह कथा श्रीमद्भागवतमें है (३) वृद्धावस्थाको पाये भये "च्यवन" ऋषिको अश्विनीकुमार (देववैद्य) नें युवावस्था बक्षीस की और नेत्रोंकी विकलता दूर करनेंके साथ साकल्य संपादनभी किया था. और कोई पुरुषत्वहीन था उसको पुरुषत्व प्राप्त करा दिया, यह तीनो वृत्तान्त सूक्त ११६, अष्टक १–८-९ ऋचा १० और १-८-१० ऋचा १२ में है. और भी शापप्रभावसें स्त्रीत्वको प्राप्त भये हुवेको पुन. पुरुषत्वप्रदानका (५ ७ १० ऋचा १ सें ४ तक) निरूपण किया गया है. स्त्रियोंके गर्भाशयगत रोगोंकी निवृत्ति (६-६ १४ ऋचा १ सें ५में) और हृदय रोगकी निवृत्ति कही हुई है. (४) अश्विनीकुमारका पराक्रम ऐसा बतलाया हैकी गायको प्रसव होनेंकी पहिलेही दुध देनेवाली बनाई है. यह वृत्तान्त १-७ ३३ ऋचा ३ में है. ऐसी गाय (काठियावाड मंडलान्तर्गत) लखतर दरबारके वहा होनेंकी खबर सुनीथी. उन लखतर दरबारके भृत्यवर्ग उस गायको कामधेनु कहा करते थे उसके बाद (काठियावाड मंडलान्तर्गत) जेतपुर रियासदके दरबार "मुळुवाला" साहेब की राजधानीमेंभी वैसी गाय मुझे बतलानेंमें आईथी. वैसी गाय होना यह ईश्वरानुग्रहका चिह्न है (५) कोइ एक "सप्तवध्रि" नामक ऋषिको अपने बन्धुओंने द्वेषके मारे किसी सन्दुकमें बद्ध कर दीये उनोने भीतरही फसे हुवेभी भगवान् अश्विनीकुमारकी स्तुति की, अश्विनीकुमारने उन सप्तवध्रि ऋषिको उसी समय उस सन्दुकमेंसे बहार निकाले. इस देववैद्यके चरित्रका वृत्तान्त ४-४-२० ऋचा ५ सें ९ में है. और वैसे कइ एक पराक्रम अश्विनीकुमारके ८–२–१७ ऋचा ११ में कीये है.

३२. पंचम विभागमें वैदिक मंत्रोंके प्रभावका वृत्तान्त कहा गया है. अगर वैदिक मंत्रोका यथाविधि अनुष्ठान अधिकारी करे तो शास्त्रप्रदर्शित फलको वह अवश्य पा सक्ता है. इस विषयके दृष्टान्त दीये गये हैं. (१) गौतमऋषिको जलकी जरूरत अपने आश्रममहीमें थी उनोने मंत्रोंके प्रभावसें जल प्रकट किया था. (२) दीर्घकालके अनुष्ठानसें इन्द्रदेवके दर्शन प्रत्यक्ष होतें है, (१-६-८ ऋचा १८). (३) किसी एक राजाके पुरोहित रथाविरूढ हो करके अपनें यजमानके पास आ रहेथे, मार्गमें कोइ एक राजकुमार चलते हुवे रथकी नीचे दब जानेसें मर गया, उसको मंत्र बलसें पुरोहितजीनें सजीवन किया. (४) मंत्रबलसें आकाशमें गमन हो सक्ता है. पातञ्जलयोगसूत्रमेंभी आकाशविहारका प्रयोग बतलाया है. (५) अष्टक २-५-६ मंडल १ सूक्त १८७के अनुष्ठानसें अन्नजन्य रोग निवृत्त होतें है, और विष अमृतायमान होता है. मिरांबाइको अपने पतिनें (मेवाड देशके नरेश मांडलिक राणानें) विषपात्र पानके लिये भेजा था उनोने उस विषका पान किया परंतु कुछभी हानि हुइ नहिं थी. वहभी मंत्र किंवा भक्तिका प्रभाव है. प्रह्लादकोभी अपने पिता हिरण्यकशिपुने विष्णुभक्तिकी बहुत मनाइ की परंतु जब उसने माना नहिं तब अनेक उपद्रवोंके साथ विषमय भोजनभी करवाया परंतु वह सर्वत्र भगवत्स्वरूपही देख रहाथा इससें वह विष अमृतरूप हो गया, यह कथा श्री मद्भागवतमें है. (६) और १८९सूक्तमें, २-५-१० ऋचा १ में, ईशावास्योपनिषद्की १-१८ श्रुति अक्षरशः प्रदर्शित की है. उसमें अग्निकी प्रार्थना अवसानकालमें उपासक करता है. (७) ' विषनिर्हरिण्युपनिषद्' १९१ सूक्तके १४सें १६ वर्गमें प्रसिद्ध है. उसमें भिन्नभिन्न प्रकारके विष बतलायें हैं. और उसमें सर्पदंशकाभी समावेश किया गया है. इस सूक्तको यथार्थ समझके अनुष्ठान करनेसें विषोत्तारण होता है ऐसाभी कहा गया है. (८) दुःस्वप्नके निरोधार्थ अष्टक २-७-९ और १०, सूक्त २८ के जपका विधान है. और अनुष्ठान करनेकाभी कहा हुवा है. अष्टक ३-७-१४ की ५ ऋचामें कठोपनिषदका मंत्र है, वह ४ मंडलके सूक्तमें है. अवसानकालमें उसका जप करनेसें शाश्वतिक सुखकी प्राप्ति कही है. (९) अष्टक ४-४-२७ मंडल ५का ८३ सूक्तका पाठ करनेसें अनावृष्टिकी निवृत्तिके साथ वृष्टि होती है. और २८ वर्गकी १०

ऋचामें अतिवृष्टि—उपद्रव निवारणार्थ जपका कहा है. अष्टक ८-८-२२ का नित्य जप करनेसें दु:स्वप्नका निरोध होता है. और जाग्रत किंवा स्वप्न कालमें किये हुवे अघटितकार्यजनित पापका प्रतिबंध होता है. अष्टक ५-४-३० की १२ ऋचामें मृत्युजयका महामंत्र है. उसका जप सकाम अनुष्ठानादिकमें किया जाता है. (१०) अष्टक ३-३-२३ वसिष्ठजीके शिष्योंने पढना नहिं चाहिये. इसका कारण यही हैकी विश्वामित्रका 'सुदा' नामक एक शिष्य था, वह राजर्षि था, वह किसी कारणसें वसिष्ठजीके साथ द्वेष करता था, इसमें विश्वामित्रने अपने शिष्यके रक्षणार्थ वसिष्ठजीको इस वर्गकी ऋचासें शाप दीया, इस वजहसें वसिष्ठानुयायि शिष्य इस वर्गका पठन पाठन या श्रवण नहिं करते हैं.

२३ षष्ठ विभागमें पुराणोंमेंके अवतार और कई एक अलौकिक कथायें प्रदर्शित की गई है. उनके बीजरूपसें वेदकी जिस् किसी ऋचामें कुछ कहा गया है वह संक्षिप्त लिखता हुं. (१) विरोचनके पुत्र और प्रह्लादके पौत्र बलिराजाका पराजय करनेके लिये समग्र देवसहित इन्द्रनें की हुई विष्णु भगवानकी स्तुतिसें स्वयं वामनावतारसें विष्णु प्रकट हुवे. और बलिराजासें चरणत्रयपरिमित भूमिकी याच्ञा की, तब बलिराजानें कबूल किया. उस समय विष्णु भगवाननें विराट् स्वरूप धारण करके एक चरणसें पृथिवी, द्वितीय चरणसें अन्तरिक्षको परिमित करके तृतीय चरण बलिकी छातीके उपर रखके उसको पातालमें निहित कर दीया. इस वृत्तान्तसें मिलता हुवा वृत्तान्त अष्टक १-२-७ में दिख पडता है, उसी तरह अष्टक ६-२-२६ में भी है. (२) अष्टक ६-१-१६ ऋचा १३में नमुचि नामक दैत्यसें इन्द्रका युद्ध हुवा तब इन्द्र पकडे गये उस समय इन्द्रको दैत्यनें अपने मृत्युके साधन कहे की —मेरे मृत्युकालमें रात्रि अथवा दिवस नहिं होना चाहिये, शुष्क किंवा आर्द्र पदार्थसें मेरा मृत्यु नहिं हो सका इत्यादिक सब खूब समझ करके समुद्र फेनसें संध्या समयमें वह दैत्य मारा गया. यह बात प्रह्लादजीके पिता हिरण्यकशिपुको परमात्मानें नृसिंहावतार धारण करके मारा था उससें मिलती है. उनकोभी ब्रह्माजीने वरदान दीया था की—मनुष्यसें तु नहिं मरेगा, रात्रिमें या दिनमें और शस्त्रसें तेरा मृत्यु नहिं होगा इत्यादि. इससें परमात्माने नरसदेवके

वचनोंको सत्य करनेके लिये नृसिंह रूपसें प्रकट हो करके संध्यासमयमें अपनें हाथोंके नखूनसें उस हिरण्यकशिपुको मारा था. (३) अष्टक ३-८-९ ऋचा ६-७ और ८-४-२८ ऋचा १४ में लोकमान्य तिलकनें अपने 'आर्कटिक होम' नामक ग्रन्थमें रामायणके तुल्य वृत्तान्त है ऐसा कहा है. (४) अष्टक ५-४-११ ऋचा १में अश्वाभिमानिनी देवताका आवाहन करनेका बतलाया है इससें निष्कलंक की जो 'कल्कि' स्वरूपसें अश्वाभिमानी देव प्रकट होनेके हैं उनसें यह कथा मिलती है. अथवा हयग्रीव किंवा हयशिराः स्वरूप भगवाननें धारण किया उस उद्देशसें यह प्रसंग हो. महाभारतके शान्तिपर्वके मोक्षधर्मप्रकरणमें ऐसी कथा हैकी—ब्रह्मदेवके पाससें मधुकैटभ नामक दोनों दैत्य वेदका हरण कर गये थे. ब्रह्मदेवकी स्तुतिसें प्रसन्नताको पाये भये विष्णुने हयशिराः स्वरूप धारण करके वेदको वापस ले आ दिये थे, उस प्रसंग पर उनका वह अवतार था. (५) अष्टक ८-७-३० ऋचा ७ मे स्तम्भमित्र नामक किसी ऋषिके स्थानमें आग लगनेंसें उनोंने अपने स्थानके रक्षणार्थ अग्निदेवकी स्तुति की है. और महाभारतमें कहा है इस तरह खांडव वनमें जैसे उत्तरोत्तर अग्नि बढता जाताथा उसी प्रकार बढते हुवे अग्निको शान्त करनेंके लिये ऋषिने प्रयास किया है इत्यादिक वृत्तान्त है. (६) अष्टक ८-८-१३ ऋचा ३ में श्री जगन्नाथजीकी प्रतिमा और उनके स्थानके लिये कुछ विवेचन है—काष्ठमयप्रतिमावाले देव समुद्रतीर पर आये हैं ऐसा लिखनेसें यह श्री जगदीशजीका वृत्तान्त हो ऐसा पाया जाता है. औरभी पुराणोंने मनुष्योंको शिक्षण दीया गया है यहभी वैदिक पाया जाता है, जैसे—(१) असत्यवादी नष्ट हो जाता है (५-७-६ ऋचा ८). (२) सत्यवादी अनुकूल फलको पाता है. पुण्यात्माभी अनुकूल फलको प्राप्त होता है. और पापात्मा प्रतिकूल फलको प्राप्त होता है. अपनें अपनें शुभाशुभ कर्मानुसार परिणाम भोगना पडता है (७-६-१४ ऋचा १). और किये हुवे कर्मोंको देवदूत देखते हैं, (७-६-७ ऋचा ८). (३) रात्रिसूक्त (८-७-१४) में रात्रिको देवताके रूपकसें वह प्राणिमात्रके श्रमको दूर करनेंवाली है ऐसा कहा है. (४)अष्टक ५-४-२१ और वर्ग २४, २५, २६ में नवीन मकानमें वास्तु करनेके प्रासंगिक मंत्र हैं.

३४. सप्तम विभागमें व्यावहारिक विषयोंका निर्देश है. इसमें पहेला प्रसंग यह है की पहिले चार वर्ण थे की नहिं ? भिन्नभिन्न ज्ञातियें थी की

नहिं ? उस विषयपर ऋग्वेदमें अष्टक १-७-२७ ऋचा ७ में ब्राह्मणादिक वर्ण होनेका स्पष्ट पाया जाता है. और चारो वर्णोंको परमात्माने बनाये हैं ऐसा पुरुषसूक्तमेंभी (८-४-१९) कहा है, यह प्रमाण बृहदारण्यक १-४ मंत्र ११-१२-१३ में भी पाया जाता है. इस तरहसें चारो वर्ण वैदिक ही है यह असंदिग्ध है. और ज्ञातिविभागका प्रकारभी बृहदारण्यक उ. ४-३-२२ के श्रीमज्जगद्गुरु भगवान् शंकराचार्यजीके भाष्य परसें स्पष्ट अवगत होता है. चारो वर्णमें आभ्यन्तर विभागके विषयमें सूक्ष्म विचार करनेकी आवश्यकता है. पवित्रतादिक सद्गुणोंसें भ्रष्ट होनेंवालोंका बहिष्कार होनेंसें उनकी एक ज्ञाति (मंडली) बने, इस तरह- उच्च नीच ज्ञाति वालोंमें लग्न व्यवहार होनेंसेंभी अलग ज्ञाति बनें, ऐसा होते होते वैसी अनेक ज्ञाति होजानेमें कौतुक नहिं है.

३५. दूसरा प्रसंग यह हैकी पूर्व कालमें देशमें राजा नहिं था ऐसा कइ एक लोकोंका मन्तव्य है. और यह विचार सद्गत स्नेही साक्षर उत्तमलाल केशवलाल त्रिवेदीने अपने राज्यतंत्रव्यवस्थापक ग्रन्थमें प्रदर्शित किया है. परन्तु ऋग्वेदमें राजासें रहित देश नहिं होना चाहिये ऐसा ८-८-३१ में स्पष्ट उपलब्ध होता है. इस वर्गमें राज्याभिषेक प्रसंगके मंत्र दिये हैं. इस तरह " नराणां च नराधिपं " भ. गी. अ. १० श्लोक २७ में श्री कृष्ण भगवाननेभी नृपकी अस्तिता बतलाई है. मतलब वेदको अपौरुषेय माननेंसें यह राजा और राज्यका प्रकरण अनादि है ऐसा माननाही चाहिये. मंत्रोंमेंभी पर्वतोंकी तरह राजाका राज्य अचल रहे ऐसा आशीर्वाद उपलब्ध होनेंसें राजा अनादि सिद्ध है यह सूचित किया जाता है.

३६. शुद्धव्यवहारपक्षमें देखें तो वर्तमान समयमें भिन्नभिन्न देशमें सुशिक्षित प्रजामें जहांतक उत्कर्ष नजर आता है वैसाही उत्कर्ष वेदमेंभी उपलब्ध होनेंसें पूर्व कल्पमें वहांतक मनुष्य पहुंचे थें यह पाया जाता है. और भविष्यत् में भी बुद्धिविकाश वहांतक उत्कर्ष करेगा यह मानना चाहिये. दृष्टान्त रीतिसें (१) स्त्रीवर्गके लिये कहांतक उत्कृष्टस्थिति थी यह समझनें योग्य है- वे पठित थी (१-२-२५ ऋचा ३), उनको गाडी हांकना यादथा (८-५-२० ऋचा २), तथापि परम सारल्य रखतीं थीं, देवार्चनके लिये पुष्पा-

चर्चय खुद करती थीं (१-४.२१ ऋचा २), अपने लग्न प्रसंगके लिये स्त्री अच्छी तरह तैयारी करतीथी, पतिगृहगमन प्रसंगपर आवश्यक संभार वही प्रयुक्त करती थी, यह सब विषय बहुत करके सूर्याविवाह सूक्तोंमें दीये गये है, वह ८-३-२०सें ले करके वर्ग २८ और ४ अध्यायके वर्ग १ सें ४ तक है जो वर्ग सूक्त ८५-८६ के भाग है. यह सूक्त काठियावाड नागर ज्ञातिमें विवाहके पूर्व कन्याको सुनाया जाता है. नागरोंका दूसरे निवासस्थलोंमेंभी यह रीवाज प्रचलित होगा. पवित्रवस्त्रपरिधान, सात्विक हविष्यान्नभोजन, और एकस्थाननिवासादिक नियमोंका सूक्त श्रवण पर्यंत वह कन्या पालन करती है. और वह आठ दिन तक सुनाया जाता है. वर्तमानमें अल्प समयमेंभी सूक्तका आठ आवर्तन सुनानेकी पद्धति शुरु हुई है. कइ एक जगापर प्रमादसें नहिं भी सुनाये जाते होंगे. सूर्याविवाहकी ऋचायें अथर्ववेदके १४ काडमें नजर आती है, परन्तु उस जगे अधिक ऋचा हैं. और बहुतसा लोम विलोमभी मालुम होता है. प्रकृतमें, इन सूक्तोंमें कन्याके विवाह अनन्तर श्वशुरगृह जानेके समय अपने पतिके साथ, और उनके सम्बन्धि वर्गके साथ कैसा वर्तन उस कन्याने करना चाहिये यह वृतान्त सविस्तर बतलाया गया है. औरभी प्रसंगवशात् ऋग्वेदमें अनेक स्थलोंमें स्त्रीनें नीची निगाहसें चलना, शरीरके अवयवोंको जब तक बने तब तक छुपाना, सुंदर वस्त्र परिधान करना इत्यादिक (६-३-१० ऋचा १९ में) विशद रूपसें बतलाया है. आम्य धर्मके बारेमें भिन्न-भिन्न ऋचामें दृष्टान्त रूपसें कहा गया है. इन सब बातोंसें यह पाया जाता हैकी विवाह कालमें कन्या योग्य वयकी हो, छोटी अज्ञ (बेसमझ) न हो. (२) अन्तरंग संबन्धीयोंमें कन्याका दानादान व्यवहार असंगत है यह बातभी (७-६-६ सें ८ तक) यम यमीके संवादरूपसें प्रदर्शित की है. उसमें यमीनें अपने भाइ यमके साथ (अपने ही) विवाहकी अनुचित प्रार्थना की, यमनें उपपत्तिके साथ उत्तर दीया और इस तरहके संबन्धकी अयोग्यता, अप्रशस्तता बतलाकरके समाधान किया. उससें निकट संबन्धीयोंमें कन्याका दानादान नहिं होना चाहिये यह वेदमें सिद्ध होता है. और स्त्री और पुरुषनें निकट संबन्ध होनेपरभी एकान्तमें नहि रहेना चाहिये यहभी पाया जाता है.

(३) स्त्रीयोंके सामान्य स्वभावसें भिन्न प्रकारके वर्तनका निदर्शन लोपामुद्रा और अगस्त्यऋषिके संवादसें स्पष्ट प्रतीत होता है. विवाहित होनेपरभी वृद्धावस्थापर्यन्त गृहस्थाश्रममें ग्राम्यधर्म (वैषयिक सुख)का उपभोग न करनेसें समयानुसार ऋषिपत्नीनें अपनें पति अगस्त्यऋषिसें प्रश्न कियाकी महाराज ? अन्य ऋषिलोक महात्मा होनेपरभी सांसारिक व्यवहारपरायण उपलब्ध होतें हैं और आप हमेशां सांसारिक व्यवहारसें उपरत क्यों हैं ? ऋषिनें उत्तर दीया की देवि ? जहांपर नित्यकर्म श्रद्धापूर्वक होतें रहतें हैं वहांपर वैसी वृत्ति होती ही नहिं (२-४-२२). इससें नित्यकर्म और तपः परायण ऋषि महर्षि लोकोंकी धर्मपत्नीयोंके वर्तन सामान्य स्त्रीयोंसें विलक्षण पाये जाते हैं. और कइ स्थलोंमें ऐसाभी नजर आता है की ऋतुकालमें स्त्री स्वयं अपने पतिकी पास जाती है. (८-२-२३ ऋचा ४). (४) स्त्रीयोंको एक ही पति होना चाहिये यह प्रसंगभी ५-३-१० ऋचा ३ में प्रदर्शित किया है. और ७-६-२७ ऋचा ७ और ७-८-१९ ऋचा ८ में विधवाशब्दके प्रयोगसें पुनर्लग्नका प्रचार न होनेंका पाया जाता है. और पतिके पीछे सती होनेकाभी वेदको मान्य न हो ऐसा सिद्ध हो सक्ता है. ७-६-२७ ऋचा ८ में यहभी वृत्तान्त उपलब्ध होता है की पतिके अवसान अनन्तर उसकी विधवा स्त्रीको श्मशानमेंसें अपनें रिस्तदार ले आतें हैं. कइएक जातिमें देवर परिग्रह (पतिके अवसानके बाद उसके कनिष्ट बन्धुके साथ सांसारिक व्यवहार) करनेंकाभी ७-८-१८ ऋचा २ में नजर आता है. और ७-६-२७ ऋचा २में धनुषबाणादि पदार्थोंका वर्णन है. और क्षत्रियोंसे जादेतर उसका संबन्ध होनेंसें प्राचीन क्षत्रियलोक धनुर्धर थे यहभी उपलब्ध होता है. (५) पुरुषनेंभी एक स्त्री होनेपर दूसरी स्त्रीका परिग्रह नहि करना चाहिये यह वेद सिद्ध है. यह प्रसंग ७-८-१ ऋचा ३ और ८-८-३ सुक्त १४५में है. वहांपर सपत्नीका दुःख, और तन्निवारणोपाय, पति और अपनी सपत्नीको परस्पर विमुख करनेका प्रयास इत्यादिक वृत्तान्त है. (६) उस (प्राचीन)कालमेंभी स्त्रीयोंमें दुर्गुणोंकी अवश्य स्थिति भिन्नभिन्न ऋचामें दृष्टान्त रूपसें विशद है. और जारकर्मजन्य गर्भाधान निवृत्तिके लिये दूर देश गमन, और जारस्तुति, जारसें एकान्तसंमेलनपूर्वकरहस्यगोष्ठी, इत्यादिक प्रसंग दृष्टान्त रूपसें

चोये गये हैं. उन विषयोंका उद्देश ऐसी बातोंसें बचनेके लिये शिक्षण रूपसें है ऐसा मानना आवश्यक है. वह अष्टक २-७-११ ऋचा ९ में और ६-८-२२ ऋचा ५ और वर्ग २८ ऋचा ४में देखनेसें मालुम पडेगा. (७) अष्टम अष्टकके ८६ सूक्तमें इन्द्रके वृषाकपि नामक पुत्रको अपनी सापत्न माता अघटित आक्षेपका पात्र बना करके अपनें पतिसें उसके मिथ्या दोषोंको प्रकट करनें लगी यह बतलाया है. इससें यह सार पाया जाता हैकी संतान होनेके बाद अगर स्त्रीका अवसान हो जायतो द्वितीय लग्न नहिं करना चाहिये. और सापत्न माता अनौरस पुत्रके तरफ दुर्भावद्वारा कहां तक दुर्वर्तन करती है यहभी तत्त्व पाया जाता है.

३७. जैसें स्त्रीयोंमें दुर्गुण उपलब्ध होतें हैं तैसें ही पुरुषोंमेंभी दुर्गुण होनेका वेदनें प्रदर्शित किया है. डाकु लोक पान्थोंको लुंट लेते है, और बन्धनमें फसा देतें है. वैश्य (वणिक) लोकभी व्यापारादिक व्यवहारमें मक्रमेंसें अनेक द्रव्य बना लेतें है, और प्रसिद्ध रूपसें इस तरह चौर्यका कार्य करतें है, और वे लोक अत्यन्त लोभी पायें जातें है. उस कालमें शिकारका प्रचार होनेकाभी उपलब्ध होता है. यह सब विषय अत्यन्त यानें हदसें ज्यादेतर होनेंसें दुर्गुण है.

३८. वर्तमान कालानुसार औरभी कइएक सुधारणाके प्रचार उस कालमें मवजूद थे ऐसा पाया जाता है. (१) जैसें म्रियमाण शक्सकी जायदादका हकदार कौन हो सक्ता है? और दोहित्र (पुत्रीके पुत्र) को धर्मपुत्र रूपसें स्वीकार करनेका कन्याके विवाह कालमें मुकरर किया जाता है. जिसकोकी मन्वादि स्मृतियोंमें ' पुत्रिका विधि ' नामक विवाहविधि कहते है (३.२-५ ऋचा १). एक मातृक पुरुषको भाइ शब्दसें व्यवहार करनेकाभी लिखा है (४-८-२५ ऋचा २,) वह विषयभी मृतक भागदारके वारसाके प्रश्नमें सापत्न और औरस भाइके सबंन्धमें उपयुक्त होता है, यानें औरस बन्धुके अवसानानन्तर सापत्न बन्धुको हिस्सेका अधिकार न हो करके सिर्फ औरसहीको वह हिस्सा मिलता है. और अन्तमें पितामहादिवृद्धोपार्जित, जनकोपार्जित और ज्येष्ठबन्धूपार्जित ऐसी तीन तरहकी जायदाद मानी

है, की जो सांप्रतसमयमें हिस्सेदारोंके मुकद्दमोंमे सवाल जवाबमें उपयुक्त है (५-३-२ ऋचा ७). (२) दुष्काल, अतिवृष्टिका भय और तन्निवारणोपाय ४-३-२७ वर्गमें और २८ वर्गकी ऋचा १० में प्रदर्शित है. और जल रहित देशोंमें जलोंकी प्रपाओंके (अवेडा याने परबके) प्रबंधका प्रकार उस कालमेंभी था ऐसा पाया जाता है (७-५-३२ ऋचा १).

३९. गोविद्या, अश्वविद्या, खगोळविद्या, ज्यौतिषविद्या, धनुर्विद्या, शिल्पशास्त्र, शरोदाशास्त्र, शकुनप्रचार और आयुर्वेद यह सब उस कालमें प्रचलित थे ऐसा उपलब्ध होता है. इस विषयमें रा. भाइ मगनलाल वि. अमृतलाल बुच (प्रोफेसर बरोडा कोलेज) कृत "प्राचीन हिन्दुस्थानमें करकसर" विषयका पुस्तक (Economic life of ancient India) देखनेसे मालुम पडेगा. इसमें वेद मंत्रोका आधार बतलाया है.

४०. वेदमें दूसरे विषयभी इस प्रसंगमें है जैसें— (१) गोवधके प्रतिबंधके साथ गोरक्षणका महत्त्व बतलाया है. और उसका देवताओंके साथ संबन्ध प्रदर्शित करके उसकी पूज्यता प्रकट की है. उसको अनेक रूपसें उपयुक्तता बताकरके उसके रक्षणार्थ देवोंकी प्रार्थनाभी की है. (६-७-८ ऋचा १६, ८-८-२७ ऋचायें १ से ४). (२) दुर्बल स्थितिवाले भिक्षुकोने प्रातःकालमें भिक्षावृत्ति करनेको जाना यहभी (१-४-४ ऋचा ६ में) प्रदर्शित है. यानें प्रातःकालमें भिक्षुक लोक भिक्षावृत्तिके लिये निकलतें है तो कइलोक उन बिचारोंका तिरस्कार करतें है यह अनुचित है; अशक्तोंके लिये उदर निर्वाह वेदको इस तरहसेंभी मान्य है यद्यपि भिक्षुक यूथ वृद्धिको प्राप्त होनेंसें लोक देनेंवालें गभरातें होंगे परन्तु दान सम अन्य अधिक पुण्य नहिं है यहभी पाया जाता है. (३) उस कालमें उष्ट्र (उंट) बोजा ढोनेके उपयोगी थे और रासभोसें देवता लोक सवारीका काम लेते थे. (४) युद्ध कालमे क्षत्रिय लोक पराङमुख नहिं होते थे ऐसा नियमित रीतिसें प्रचार थ (१-३-२ ऋचा १). (५) मनुष्य शरीरके अवसान होनेपर उसको श्मशान ले जातें है और उसको अग्नि संस्कार करतें है, और अस्थि संचय करते है, यह सब वर्णन सविस्तर (७-६-२३ सें २८) वर्ग

तक) उपलब्ध होता है. (६) व्यावहारिक विषयोंमें साधारण विषयभी वेदनें बतलाया है. जैसेकी दुर्बल जामाता (दमाद) हो तो उसको प्रातःकालसें सायंकाल पर्यन्त अपनें श्वशुरके मकानमेंभी प्रसंगवशात् ठहरनेका होता है ऐसा ५-७-२० ऋचा २० में बतलाया है. और भेंसको जादेतर जल पसंद है वह जलहीमें बैठती है (६-३-१५ ऋचा ७). मृगवृषभादिक पशु जलकी प्यासको शान्त करनेके लिये जलके तरफ दौडते रहते हैं (६-६-१० ऋचा ९ और ७-५-३२ ऋचा ५). गवादिक पशु छोडनेसें गोष्ठमें जाते हैं (७-५-३२ ऋचा ३). और शिशिर कालमें शीतनिवारणार्थ आतप (धाम) में खडे रहेवे (७-५-३२ ऋचा २), और अपनें नूतन बच्चोंको चाटते हैं (७-४-२८ ऋचा ७). छोटे छोटे वत्सतर एक रस्सीसें बांधे जाते हैं (८-६-१७ ऋचा ४), ऐसी छोटी छोटी अनेक हकीकत वेदमें उपलब्ध होतीं हैं.

४१. पूर्वोक्त प्रकारसें वेद अपौरुषेय है, अति गंभीर है, इससें उसमें किस विषयका समावेश न हो इस विषयका अवगाहन करना यह मेरे समान अल्प मति और अल्पशक्तिवालोंका प्रयास बुद्धिमत्तापूर्वक तो नहिं ही कहा जायगा, बलकिन साहसहीमें गणना होगी. तथापि कइ दिनोंसें मनमें विचार-तरंग उछल रहेथे उनका शमन करनेके लिये ऐसा प्रसंग पाकरके लाभ लिया है. इस प्रसंगपर (जुनागढके) रा. रा. भाइ मोतीलाल वि. रविशंकर घोडाका उपकार मानताहुं. नामदार वडोदा सरकारनें ऋग्वेदके सायण भाष्यका गुर्जर भाषान्तर करनेंका उनको सुप्रत किया है. और मुद्रित करादेनाका मंजूर किया है. रा. मोतीलालजीने उस ग्रन्थकी प्रस्तावनाके रूपसें विषय उपयुक्त होवें इस लिये नोट करके भेजनेंके लिये मुझे सूचना की. मेंनें उसी उद्देशसें इस विषयकी यथामति रचना की है. प्रमादकी क्षमाका पात्र हुं—में—

वकील गुलाबराय वि. छाया राजकोट.

नोट—पृष्ठ ९के पाराग्राफ ४ में "वेद अपौरुषेय है" इस सिद्धान्तके विरुद्ध लोकमान्य तिलकका अभिप्राय और इसकी पुष्टिमें दृष्टान्त दीये हैं वे बतलाये हैं. यह विषय इसके Arctic Home नामके पुस्तकमें पृष्ठ ४५ में छपा गया है. इस तरह अधिक हिम पातके वजहसे मनुष्य उत्तर ध्रुवके निकट प्रदेशमें रहते थे वहांसे नीचे आये इसका समय इ. स. पू. दश हजार वर्ष पहिलेका मी. तिलक मुकरर करते हैं (पृष्ठ ४२७). और कोइ महर्षि इ. स. पू. दो और चार अब्ज वर्ष पहिले होनेका कहते हैं (पृष्ठ ४२२).



शुद्धि पत्र.



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
प्रकाशकका विज्ञापन			
७	९	बतलाइ है	बतलाइ नहि है
९	१२	Artic Home	Arctic Home.
ऋग्वेदतत्त्व			
२	१९	ह्यकर	होकर
५	१२	प्राप्रामिच्छन्ति	प्राप्तुमिच्छन्ति
२१	१८	मातुर्जनयाः	मातुर्जनन्याः
२३	२०	श्रुतिभ्यां	श्रुतिभ्यः
३८	१५	आजानिब्रष्टि	आजानिर्पष्ट
५१	२	परिस्रव	परिस्रव
५१	१५	जातभूतदा	जातमभूत्तदा
५१	२५	परमेश्वरमें	परमेश्वरसें
६२	१९	तदन्याशांदिसौ	तदन्वाशादिशो
६७	१६	महाम्तं	महान्तं
७१	४	आदिद्धावा	आदिद्यावा
७२	१३	अतीन्दिय	अतीन्द्रिय
७६	८	सहस्रस्राशीर्षा	सहस्रशीर्षा
७६	८	सहस्राक्षः	सहस्राक्षः
७९	१८	नन्त्रमें	मन्त्रमें
८७	२	देप्ट्य	देप्ट्राय
८९	१७	यज्ञादिकम	यज्ञादिकमें
९२	३	श्रुतिम	श्रुतिमें
९६	१७	महाभाग्य	महैश्वर्य
१०१	२	मावा	माया
१३३	२५	कुमारे	कुमारो

नोट—पृष्ठ ९के पारिग्राफ ४ में "वेद अपौरुषेय है" इस सिद्धान्तके विरुद्ध लोकमान्य तिलकका अभिप्राय और इसकी पुष्टिमें दृष्टान्त दीये हैं वे बतलाये हैं. यह विषय इनके Arctic Home नामके पुस्तकमें पृष्ठ ४५ में छपा गया है. इस तरह अधिक हिम पातके वजहसे मनुष्य उत्तर ध्रुवके निकट प्रदेशमें रहते थे वहांसे नीचे आये इसका समय इ. स. पू. दश हजार वर्ष पहिलेका भी. तिलक मुकरर करते हैं (पृष्ठ ४२७). और कोइ महर्षि इ. स. पू. दो और चार अब्ज वर्ष पहिले होनेका कहते हैं (पृष्ठ ४२२).





तत्सद्ब्रह्मणे नमः

ऋक्संहितान्तर्गताना मध्यात्मविषयाणामृचां
सायणाचार्यविरचितं भाष्यम् भाषानुवादसहितं प्रारभ्यते ।

सं. अष्ट. अ. वर्ग

१. १ ४ ७ तरणिर्विश्वदर्शतोज्योतिष्कृदसिसूर्य ।
विश्वमाभासिरोचनम् ॥ ४ ॥

हे सूर्य ? अन्तर्यामितया सर्वस्यप्रेरक ? परमात्मन् ? तरणिः संसारार्णवे स्तारकोऽसि । यस्मात्त्वं विश्वदर्शतो विश्वैः सर्वै र्मुमुक्षुभिर्दर्शतो द्रष्टव्यः साक्षात्कर्तव्य इत्यर्थः । अधिष्ठानसाक्षात्कारेणारोपितं निवर्तते ॥ ज्योतिष्कृत् ज्योतिषः सूर्यादेः कर्ता, तथाचाम्नायते- "चन्द्रमामनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत" (ऋ. सं. ८-४-१९) इति । ईदृशस्त्वं चिद्रूपतया विश्वंसर्वंदृश्यजातं रोचनं रोचमानं दीप्यमानं यथाभवति तथा आभासि प्रकाशयसि । चैतन्यस्फुरणेहि सर्वं जगद् दृश्यते । तथा चाम्नायते-" तमेव भान्तमनुभातिसर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" (कठ, २-२-१५) इति ॥ ४ ॥

अनुवाद-हे सूर्य सबके अन्तर्यामि होनेसे प्रेरणा करनेवाले हे परमात्मन् ? आप संसारसमुद्रसे (अधिकारीयोंको) तारनेवाले हो. क्योंकी आप समग्र मुमुक्षुजनसमूहके साक्षात्कार करनें योग्य हो. याने अधिष्ठानके अपरोक्ष ज्ञानसे आरोपित जोकी कल्पित प्रपंच है सो निवृत्त होजाता है. और सूर्यादिक ज्योतिके बनानेवाले याने अपना तेज उनमे निहित करके प्रेरणा करनेवाले भी आपहीहो. श्रुतिभी इसीअर्थका प्रतिपादन करती है-" आपके (विराट्स्वरूपान्तर्गत) मनसें चन्द्रमा और चक्षुसें सूर्य प्रादुर्भूत होताहै" वैसे आप शुद्ध

२. २, २-२४ - प्रताद्विष्णुःस्तवतेवीर्येणमृगोनभीमःकुचरोगिरिष्ठाः।

यस्योरुषुत्रिषुविक्रमणेष्वधिक्षियन्तिभुवनानिविश्वा ॥२॥

स महानुभावो विष्णुः वीर्येण स्वकीयेनवीरकर्मणा पूर्वोक्तरूपेण प्रस्तवते प्रकर्षेण स्तूयते सर्वैः। वीर्येण स्तूयमानत्वे दृष्टान्तः—मृगोन सिंहादिरिव यथास्व विरोधिनो मृगयिता सिंहो भीमोभीतिजनकः कुचरः कुत्सितहिंसादिकर्ता दुर्गमप्रदेश गन्तावा गिरिष्ठाः पर्वताद्युन्नतप्रदेशस्थायी सर्वैः स्तूयते तद्वदमयपि मृगोऽन्वेष्टा शत्रूणां भीमो भयानकः सर्वेषां भीत्यपादानभूतः, परमेश्वराद्भीतिः "भीषास्माद्वातः पवते " (तै. २-८) इत्यादिश्रुतिषुप्रसिद्धा। किञ्च कुचरः शत्रुवधादिकुत्सित कर्मकर्ता कुषु सर्वासु भूमिषु लोकत्रयेषु संचारीवा तथा गिरिष्ठाः गिरिवदुच्छ्रित लोकस्थायी यद्वा गिरि मन्त्रादिरूपाया वाचि सर्वदा वर्तमानः ईदृशोऽयं स्वमहिम्ना स्तूयते। किञ्च यस्यविष्णोरुरुषु विस्तीर्णेषु त्रिषु त्रिसंख्याकेषु विक्रमणेषु पादप्रक्षेपेषु विश्वासर्वाणि भुवनानि भूतजातानि आश्रित्य निवसन्ति साविष्णुःस्तूयते ॥२॥

अनुवाद—वह महाप्रतापी विष्णु वीरकर्म-पराक्रमसे अत्यन्त स्तूयमान होतेहैं। इसमें दृष्टान्त हैकी जैसे अपने विरोधिवर्ग हरिणादिककी खोज करनेवाला अयोग्य हिंसादि करनेवाला अथवा दुर्गमप्रदेशतक जानेवाला और पर्वतादिक उन्नत स्थलपर रहनेवाला परम भयानक सिंहादिक इतर लोकोंसे याने उस सिंहादिकके भक्ष्य समूहसें स्तुति किया जाता हैं तैसेंही वह विष्णुदेवभी सब शत्रुन्को दुराचारीयोंको खोजनेवाला सबनको (अपराधिओंको) भय देनेवाला है. तैत्तिरीय (२-८) श्रुतिमें भी कहाहै की "इसी देवसें भयभीत होकर वायु सदा गतिमान् होताहै- और सूर्य, चन्द्र, अग्नि, मृत्यु वगेरह इसीके डरसें अपने अपनें कार्यमें सुस्तेइद हो रहे है"। और यह विष्णु सिंहादिककी तरह शत्रुवधादिक करनेवाले है, अथवा (कुचरः) पृथिव्यादित्रिलोकीमें सर्वत्र विहार करने वाले है, और मन्त्रादि रूप वाणीमें रहनेवाले है, अथवा पर्वतवत् दुर्गम देश (लोक) में स्थितिवाले है, सो विष्णु अपनी महत्तासे स्तूयमान होतेंहै। और जिस विष्णुके विस्तारवाले तीन पादप्रक्षेपमें समग्र भूत आश्रित-होकर निवास करतें है, ऐसे विष्णु स्तुति किये जातें है. ॥ २ ॥

चिद्रूप होनेसे समस्त दृश्य वर्ग जैसे प्रकाशित हो तैसे भान कराते हो, क्योंकी चैतन्यकी स्फुरणाहीसे सकल प्रपंच दृश्यमान हो रहाहै. कठवल्लीमें भी कहाहैकी उस (परमेश्वर) के प्रकाशसे सब प्रकाशित होताहै और उसीके तेजसें सब तेजस्वी हो रहा है. इत्यादि.

२. २ २ २४ विष्णोर्नुकंवीर्याणिप्रवोचंयःपार्थिवानिविममेरजांसि।
योअस्कभायदुत्तरंसधस्थंविचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥१॥

हे नराः! विष्णो र्व्यापनशीलस्य देवस्य वीर्याणि वीरकर्माणि नुकमिति शीघ्रंप्रवोचं प्रब्रवीमि। यो विष्णुः पार्थिवानि पृथिवीसंबन्धीनि रजांसि रञ्जनात्मकानि क्षित्यादिलोकत्रयाभिमानीनि अग्निवाय्वादित्यरूपाणि रजांसि विममे विशेषेण निर्ममे। किञ्च यश्चोत्तरमुत्कृष्टतरं सर्वेषां लोकानामुपरिभूतमपुनरावृत्ते स्तस्योत्कृष्टत्वम्, सधस्थमुपासकाना सहस्थानं सत्यलोकमस्कभायत् स्कंभितवान् ध्रुवं स्थापितवान्। किंकुर्वन्! त्रेधा विचक्रमाण स्त्रिप्रकार स्वसृष्टलोकान् विविधंक्रममाणः। विष्णोस्त्रेधा क्रमणम् "इदंविष्णुर्विचक्रमे" (ऋ सं. १-२-७) इत्यादि श्रुतिप्रसिद्धम्। अतएव उरुगायः उरुभिर्महद्भिर्गीयमानः। यएवं कृतवाँस्तादृशस्य विष्णोर्वीर्याणि प्रवोचम्। १

अनुवाद—हे पुरुषो! विष्णु व्यापक जो परमेश्वर है उनके वीर्य वीरकर्म पराक्रम बहुत जल्दी में कहताहु। जिस विष्णु देवने पृथिवी संबन्धि रञ्जनात्मक भूरादि तीनों लोकके अभिमानी अग्नि वायु और सूर्य स्वरूप सृष्टिका स्पष्ट रूपसें निर्माण किया है। और जोकी विष्णुदेवका धाम पुनरावृत्ति रहित होकर सकल विश्वका सर्वोपरि विराजमान होनेसें अत्यन्त उत्कृष्ट है. और जिस विष्णु देवनें उपासकोंके सहनिवासरूप सत्यलोकको स्थिर निश्चल करके स्थापित किया है. स्वकीय अपरिमित शक्तिसें निर्मित लोकोंको मात्र पादत्रयाक्रान्त करके जिस विष्णु देवनें व्याप्त किये है. (ऋ. सं. १—२—७ श्रुतिमें विष्णुकृत पादत्रया क्रमण स्फुट प्रदर्शित किया है.) और जो विष्णुदेव वैसा आक्रमणादिक अनन्य साधारण पराक्रम करनेसे महापुरुषोंसें स्तूयमान स्तुति किये जाते है. वैसे विष्णु देवके पराक्रम में कहता हुं.॥ १ ॥

३. २. २. २४ प्रतद्विष्णुःस्तवतेवीर्येणमृगोनभीमःकुचरोगिरिष्ठाः ।
यस्योरुषुत्रिषुविक्रमणेष्वधिक्षियन्तिभुवनानिविश्वा ॥२॥

स महानुभावो विष्णुः वीर्येण स्वकीयेनवीरकर्मणा पूर्वोक्तरूपेण प्रस्तवते प्रकर्षेण स्तूयते सर्वैः । वीर्येण स्तूयमानत्वे दृष्टान्तः—मृगोन सिंहादिरिव यथास्व विरोधिनो मृगयिता सिंहो भीमोभीतिजनकः कुचरः कुत्सितहिंसादिकर्ता दुर्गमप्रदेश गन्तावा गिरिष्ठाः पर्वताद्युन्नतप्रदेशस्थायी सर्वैः स्तूयते तद्वदमयपि मृगोऽन्वेष्टा शत्रूणां भीमो भयानकः सर्वेषां भीत्यपादानभूतः, परमेश्वराद्भीतिः "भीषास्माद्वातः पवते " (तै. २–८) इत्यादिश्रुतिषुप्रसिद्धा । किञ्च कुचरः शत्रुवधादिकुत्सित कर्मकर्ता कुषु सर्वासु भूमिषु लोकत्रयेषु संचारीवा तथा गिरिष्ठाः गिरिवदुच्छ्रित लोकस्थायी यद्वा गिरि मन्त्रादिरूपाया वाचि सर्वदा वर्तमानः ईदृशोऽयं स्वमहिम्ना स्तूयते । किञ्च यस्यविष्णोरुरुषु विस्तीर्णेषु त्रिषु त्रिसंख्याकेषु विक्रमणेषु पादप्रक्षेपेषु विश्वासर्वाणि भुवनानि भूतजातानि आश्रित्य निवसन्ति सविष्णुःस्तूयते ॥२॥

अनुवाद—वह महाप्रतापी विष्णु वीरकर्म-पराक्रमसे अत्यन्त स्तूयमान होतेहै । इसमें दृष्टान्त हैकी जैसे अपने विरोधिवर्ग हरिणादिककी खोज करनेवाला अयोग्य हिंसादि करनेवाला अथवा दुर्गमप्रदेशतक जानेवाला और पर्वतादिक उन्नत स्थलपर रहनेवाला परम भयानक सिंहादिक इतर लोकोंसे याने उस सिंहादिकके भक्ष्य समूहसें स्तुति किया जाता हैं तैसेंही वह विष्णुदेवभी सब शत्रुनको दुराचारीयोंको खोजनेवाला सबनको (अपराधिओंको) भय देनेवाला है. तैत्तिरीय (२–८) श्रुतिमें भी कहाहै की "इसी देवसें भयभीत होकर वायु सदा गतिमान् होताहै. और सूर्य, चन्द्र, अग्नि, मृत्यु वगैरह इसीके डरसें अपने अपने कार्यमें मुस्तेइद हो रहें है" । और यह विष्णु सिंहादिककी तरह शत्रुवधादिक करनेवाले है, अथवा (कुचरः) पृथिव्यादित्रिलोकीमें सर्वत्र विहार करने वाले है, और मन्त्रादि रूप वाणीमें रहनेवाले है, अथवा पर्वतवत् दुर्गम देश (लोक) में स्थितिवाले हैं, सो विष्णु अपनी महत्तासे स्तूयमान होतेंहै । और जिस विष्णुके विस्तारवाले तीन पादप्रक्षेपमें समग्र भूत आश्रित होकर निवास करतें है, ऐसे विष्णु स्तुति किये जातें हैं. ॥ २ ॥

४. २-२-२४, प्रविष्णवेशूषमेतुमन्मगिरिक्षितेउरुगायायवृष्णे।
यइदंदीर्घंमयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥३॥

विष्णवे सर्वव्यापकाय शूषमस्मत्कृत्यादिजन्यं महत् बलत्वं मन्म मननं स्तोत्रं मननीयं शूषं बलं वा विष्णुमेतु प्राप्नोतु। कीदृशाय? गिरिक्षिते वाचि गिरिवदुन्नतप्रदेशे वा तिष्ठते उरुगायाय बहुभिर्गीयमानाय वृष्णे वर्षित्रे कामानाम् एवं महानुभावं शूषं प्राप्नोतु। कोऽस्य विशेष इत्युच्यते—यो विष्णुरिदं प्रसिद्धं दृश्यमानं दीर्घमतिविस्तृतं प्रयतं नियतं सधस्थं सहस्थानं लोकत्रयमेक इत् एक एवाद्वितीयः सन् त्रिभिः पदेभिः पादैर्विममे विशेषेण मितवान् ॥३॥

अनुवाद—सर्वत्र व्यापक ऐसे विष्णुदेवको हमारे कृत्यादिकोंसे उत्पन्न होनेवाला बडा बलत्व (बलिष्ठता) अथवा मनन करने योग्य जोकी स्तोत्रादिक है सो प्राप्त हो। जोकी विष्णुदेव मन्त्रात्मक वाणीमे अथवा पर्वतादिवत् उन्नत स्थानापन्न है. जैसे पर्वतादिस्थलबहुत दुर्गम होताहै तैसेंहीयह विष्णु अनधिकारियोंको दुर्गम दुष्प्रापहै और अनेक लोकोंसे स्तूयमान है सकल कामनाओंको पूर्ण करने वाले है ऐसे विष्णुदेव को हमारा कृत्यादि जन्य बल और स्तोत्र प्राप्त हो. याने वह विष्णुदेव मन वाणीके अविषय होने परभी हमारी स्तुतिका लक्ष्य हो. अब इस विष्णुदेवका विशेष बतलातेहै—जो विष्णु देव यह सुप्रसिद्ध याने पुरोदृश्यमान अत्यन्त विस्तारवाला देशकालानुसार नियमपूर्वक स्थितिवाला सचराचर प्रपंचको स्वयं अद्वितीय याने एकाकी होते हुवेभी मात्र चरणत्रयाक्रमणसें युगपत् परिमित करचुकेहै, सो परमदेव विष्णु हमारी स्तुतिका विषय हो ॥३॥

५. .. .. .., यस्य त्रीपूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
यउंत्रिधातु पृथिवीमुतद्यामेकोदाधारभुवनानि विश्वा ॥ ४

यस्य विष्णोर्मधुना मधुरेण दिव्येनामृतेन पूर्णा पूर्णानि त्री त्रीणिपदानि पादप्रक्षेपणानि अक्षीयमाणानि स्वधया अन्नेन मदन्ति मादयन्ति तदाश्रितजनान्। यउ यएव पृथिवीं प्रख्यातां भूमिं द्यामुत द्योतनात्मकमन्तरिक्षं च विश्वा भुवनानि सर्वाणि भूतजातानि चतुर्दशलोकाँश्च धृतवानुत्पादितवान्, तथाच श्रुतिः—तत्तेजोऽसृजत तदपोऽसृजत ता आप ऐक्षन्त ता अन्नमसृजन्त (छा ६–२–३, ४) इत्यादिः ॥ ४ ॥

अनुवाद–जिस विष्णुदेवके अविनाशी और अमृतपूर्ण चरणत्रयके आक्रमणसे उन (विष्णु) के आश्रित लोक अन्न (आदिक) से तृप्तहोतेहैं। और जिस विष्णुदेवने पृथिवी अन्तरिक्ष सकलभूत और चतुर्दश ब्रह्माण्ड वगैरहको उत्पन्न किये है। छान्दोग्यश्रुतिमे "उसने तेजको उत्पन्न किया उसने जलको उत्पन्न किया और जलसे ईक्षणद्वारा पृथिव्यादि भूत भौतिक सकल सृष्टि उत्पन्न की" ऐसा कहा है. ॥४॥

६. २ २ २४ तदस्यप्रियमभिपाथोअश्यांनरा यत्रदेवयवोमदन्ति।
उरुक्रमस्य सहिबन्धुरित्थाविष्णोःपदेपरमेमध्वउत्सः॥५॥

अस्य विष्णोः प्रियंप्रियभूतं तत् सर्वैः सेव्यत्वेन प्रसिद्धं पाथः अन्तरिक्ष लोकाख्यंस्थानं अविनश्वरं ब्रह्मलोकमित्यर्थः अभिअश्यां व्याप्नुयाम, तदेव विशेष्यते–यत्रस्थाने देवयवः देवं द्योतनस्वभावं विष्णुमात्मनइच्छन्तो यज्ञदा नादिभिः प्राप्तुमिच्छन्तो नरः मदन्ति तृप्तिमनुभवन्ति तदश्यामित्यन्वयः। पुनरपि तदेव विशेष्यते–उरुक्रमस्य अत्यधिकं सर्वं जगदाक्रमणस्य तत्तदात्मना अतएवविष्णो व्यापकस्य परमेश्वरस्य परमेउत्कृष्टे निरतिशये केवलसुखात्मकेपदे स्थाने मध्वः मधुरस्य उत्सः निष्पन्दो वर्तते तदश्याम्। यत्र क्षुत्तृष्णाजरामरण पुनरावृत्त्यादिभयं नास्ति, संकल्पमात्रेणामृतकुल्यादिभोगाः प्राप्यन्ते तादृश मित्यर्थः। ततोऽधिकं नास्तीत्याह–इत्था इत्थमुक्तप्रकारेण सहिबन्धुः स खलु सर्वेषां सुकृतिनां बन्धुभूतो हितकरो वा तस्य पदं प्राप्तवतोनपुनरावृत्तिः। "नसपुनरावर्तते" इतिश्रुते स्तस्य बन्धुत्वम् ॥५॥

अनुवाद–इस विष्णु देवको प्रिय और सब लोकोंका सेवनीय जो अन्तरिक्ष स्थान, यानें ब्रह्मलोक उसको में प्राप्त होउं की जिस स्थानमें यज्ञदानादिकसें उस विष्णु देवको प्राप्त करनेकी इच्छावाले अधिकारिलोक तृप्तिका अनुभव करते हैं. और तत्तत्स्वरूपसें सचराचर विश्वका आक्रमणकरनेवाले, और इसीलिये व्यापक जो परमेश्वर उनके परमश्रेष्ठ निर्विशेष केवल सुखरूपस्थानमे माधुर्यका प्रवाह बहेताहै, यानें जिस विष्णुपदमें भूख प्यास वार्धक्य मृत्यु पुनरावृत्ति इत्यादिक भय नहोकर केवल संकल्पमात्रसें पीयूषपानादि भोग अनायाससे प्राप्त होतेहै, और जो विष्णु देव इसी प्रकारका अपना स्थान सकल सुकृतवाले

-अधिकारियोंको देनेसे सबोका बन्धुहै. याने भोगोंकी- इच्छावाले पुण्यात्मा पुरुषोंको ब्रह्मलोकान्तर्गत अनुकूल भोगप्रद होनेसे बन्धुहै, अगर वह पुण्यात्मा -पुरुष मुमुक्षु हो तो अनुकूल भोगानुभव होनेके बाद आत्मज्ञानद्वारा अपुनरावृत्ति-रूप मोक्षपदका दायक होनेसेभी वह बन्धु है अथवा हितकरहै. उसके स्थानको प्राप्त भये हुवे अधिकारिलोक फिर वापस लौटते नहिं. ऐसे विष्णुदेवके स्थानको में प्राप्त होउं। " नसपुनरावर्तते " " वह (अधिकारि) पुनरावृत्तिको पाता नहिं." इस श्रुतिके अनुसार विष्णु देवका बन्धुत्व सिद्ध है ॥५॥

७. २ २ २४ तावां वास्तूंन्युश्मसिगमध्यै यत्र गावोभूरिंशृङ्गा अयासंः। अत्राहतदुरुगायस्य वृष्णः परमंपदमवभाति भूरिं ॥६॥

-हे पत्नीयजमानौ ? वां युष्मदर्थं ता तानि गन्तव्यत्वेन प्रसिद्धानि वास्तूनि सुखनिवासयोग्यानि स्थानानि गमध्यै युवयोर्गमनाय उश्मसि कामयामहे तदर्थं विष्णुं प्रार्थयामइत्यर्थः। तानि कानीत्याह यत्र येषु वास्तुषु गावो रश्मयो भूरि-शृंगाः अत्यन्तोन्नत्युपेताः बहुभिराश्रयणीयावा अयासः अयनागन्तारः अतिवि-स्तृताः यद्वा अयासः गन्तारः अतादृशा अत्यन्तप्रकाशयुक्ताइत्यर्थः । अत्राह— अत्र खलुवास्त्वाधारभूते द्युलोके उरुगायस्य बहुभिर्महात्मभिर्गातव्यस्यस्तुत्यस्य वृष्णः कामानां वर्षितुर्विष्णो स्तत्तादृशं सर्वत्र पुराणादिषु गन्तव्यत्वेन प्रसिद्ध परमं निरतिशयंपदं स्थानं भूरिअतिप्रभूतमवभाति स्वमहिम्ना स्फुरति ॥६॥

अनुवाद-हे पत्नी औरयजमान ? आप (दोनो) के लीये आरामसे वास करने योग्य अवश्य प्राप्त करने योग्य जो (विष्णुदेवका) स्थान है, वहां आप जाइयें, आपका वहागमन हमलोक चाहते है. और इसीलीये भगवान् विष्णुदेवकी प्रार्थना करते है, जिन स्थानोमें अत्यन्त उन्नतिको पाये भये (दिव्य तेजके) किरणोंको अनेक लोक आश्रय कर रहें हैं, और जो किरणो बहुत विस्तारवाले होकर अत्यन्त ही प्रकाशवाले है। और जिस निवासके आधारभूत दिव्य लोकमें महात्माओंसे स्तुति किये जाते सकल कामनाओंको पूर्ण करनेवाले विष्णुदेवका पुराणोंमें प्रसिद्ध और अवश्य प्राप्त करने योग्य निर्विशेष धाम अपने माहात्म्यसे देदीप्यमान हो रहा है याने स्फुरतया चमक रहा हैं वहां आप (दोनों) जाइये ॥६॥

८. २-३-१४- अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयोभ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्॥१॥

अस्य वामस्य विश्वस्योद्गरितुःस्रष्टुः पलितस्य पालयितुः स्वसृष्टजगत्पालन शीलस्य होतुरादातुः स्वस्मिन्संहर्तुः परमेश्वरस्य सृष्ट्यादिकर्तृत्वं श्रुतिस्मृतिपुराणादिषु प्रसिद्धम्, तस्यतादृशस्य परमेश्वरस्य भ्राता तद्भागहारी तदंशभूतसूत्रात्मा मध्यमः सर्वत्र मध्ये वर्तमानोऽस्ति जगद्धारकत्वेन वर्तते। सचाश्नः व्यापनशीलः "वायुनावैगौतमसूत्रेण अयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि" (बृ. उ. ३-७-२) इति श्रुतेः। वक्ष्यमाणविराडपेक्षया वा मध्यमत्वम्। किञ्च अस्य परमेश्वरस्य तृतीयो घृतपृष्ठः घृतमित्युदकनाम तेनतत्कार्यं शरीरमुच्यते तदेवपृष्ठं स्पर्शनीयं सर्वस्यस्पर्शकं वा यस्य स तादृशः। यद्वाप्रदीप्तपृष्ठः पृष्ठशब्दः कृत्स्नशरीरोपलक्षकः प्रकाशितशरीराभिमानीत्यर्थः, नत्वयं सूक्ष्मशरीराभिमानि सूत्रात्मवत् स्पर्शनाविषयोभवति, अत्र एषु मध्ये विश्पतिं विशां प्रजानां पति मुपलक्षणमेतत् सर्वस्यपतिमित्यर्थः "सर्वस्यपतिः सर्वस्येशानः" इतिश्रुतेः सप्तपुत्रं सप्तलोकाः पुत्रायस्य तादृशं स्वमायया सृष्टसर्वलोकमित्यर्थः अपश्यं पश्येयम् साक्षात्करोमीत्यर्थः। अयमर्थः-स्वाधीनमायो जगत्कारणभूतः परमेश्वर एकः ततउत्पन्नौ स्थूल सूक्ष्मशरीराभिमानिनौ द्वौ विराट्सूत्रात्मानौ, तेषुमध्ये द्वयोः साक्षात्कारेण मोक्षाभावात् सृष्ट्यादिकारणं परमेश्वरं ज्ञेयत्वेन प्रसिद्धं श्रवणमननादिसाधनेन साक्षात्करोमीत्यर्थः॥ १॥

अनुवाद--समस्त प्रपंचको उत्पन्न करनेवाले और उत्पादित प्रपंचको पालन करनेवाले और अपने स्वरूपहीमें फिर लीन करनेवाले इस परमेश्वरका भ्राता याने उसका अंशायमान सूत्रात्मा सर्वत्र मध्यमें वर्तमान है. क्योंकी वह सकल जगतको धारण करता है. और वह व्यापक है. श्रुति कहती है की--वायुवत् सर्वत्र वर्तमान इस सूत्रात्मासें यह लोक परलोक और सकल भूत ग्रथित है। अथवा वक्ष्यमाण विराट्की अपेक्षासें भी यह सूत्रात्मा मध्यम हो सकता है.। एवं इस परमेश्वरका तृतीय (अंशायमान स्वरूप) घृतपृष्ठ-सब भौतिक शरीरको स्पर्श करनेवाला अथवा स्पर्श करने योग्य है, याने समग्र देहाभिमानको प्रकाशित करनेवाला है (जिस को की "विराट्" ऐसा कहते हैं) यह (विराट्) सूक्ष्मदेहाभिमानी सूत्रात्माकी तरह स्पर्शका अविषय नहि है किंतु प्रसिद्धतया

देहाभिमानको प्रकाशित करनेवाला है. - इन तीनोंमें जोकी सचराचर जगतका नियन्ता है, श्रुतिभी " सबका पति सबका ईश्वर ", इत्यादि वचनोंसें उसीका नियन्तृत्व सिद्ध करती है, और सात लोकोंके पिता याने अपनी मायाहींसें जिसने सर्व लोकोंकी उत्पत्ति की है ऐसे परमेश्वरको में साक्षात् अपरोक्ष करता हुं. यह तात्पर्य हुवाकी-स्वाधीन मायाशक्तिवाला जगत्का कारणभूत परमेश्वर एकही है. उसके स्वरूपसें स्थूल और सूक्ष्मशरीरके अभिमानी विराट् और सूत्रात्मा दोनो उत्पन्न हुवे. अब इन् तीनोंमेंसे विराट् और सूत्रात्माके साक्षात्कार होने पर मुक्ति नहि होती. इस लिये प्रपंचकी उत्पत्ति स्थिति ओर लयका कारण और शास्त्रमें जिसको जाननेंसे पुरुषार्थसिद्धि बतलाइ है ऐसे कारणभूत परमेश्वरका श्रवणमनननिदिध्यासनादि साधनोंसे साक्षात्कार में करताहुं. ॥ १ ॥

९. २ ३ १४ सप्तयुञ्जन्तिरथमेकं चक्रमेकोअश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभिंचक्रमजरमनर्वंयत्रेमाविश्वाभुवनाधितस्थुः ॥२॥

एकचक्रं एकरथाङ्गोपेतं, यद्यपि त्रीणि चक्राणि तथापि तेषामेकरूपत्वादेकचक्रमित्युच्यते, रथं रंहणस्वभावं सूर्यस्य सम्बन्धिनं सप्त एतत्संख्याका अश्वा युञ्जन्ति अनुबध्नन्ति वहन्त्यहोरात्रनिर्वाहाय । किं वस्तुतः सप्त ? नेत्याह-एकोऽश्वः सप्तनामा, एकएव सप्ताभिधानः सप्तधा नमनप्रकारोवा, एकएव वायुः सप्त रूपाणि धृत्वा वहतीत्यर्थः । वाय्वधीनत्वादन्तरिक्षसंचारस्य एकचक्रमित्युक्तम् । कीदृशं तदित्यत्र आह त्रिनाभि भूतभविष्यवर्तमानाख्यास्त्रयःकाला स्त्रिनाभयः तद्विशिष्टम्, पुनःकीदृशम् ? अजरममरणधर्मकं मनर्वमशिथिलं, पुनस्तदेव विशेष्यते-यत्रयस्मिँश्चक्रे इमा विश्वा भुवना इमानि प्रसिद्धानि सर्वाणि भूतजातानि अधि आश्रित्य तस्थुस्तिष्ठन्ति । ईदृशस्यकालस्य कारणभूतपरमेश्वरज्ञानेन मोक्षसद्भावाज्ज्ञानमोक्षाक्षरप्रशंसोक्ता ॥ २ ॥

अनुवाद=एक चक्रवाला और सात घोडे जिसमें नियुक्त होते है ऐसा जो सूर्यका रथ है, यद्यपि भूत भविष्य वर्तमान तीन काल होनेसे तीन चक्र कहना चाहीये परंतु काल सामान्य एक होनेसें "एक चक्र" एसा कहा है, उसी तरहसें " सात अश्व " यह अर्थ अभिप्रेत नहि है किंतु सप्तनामक एकही वायु उसका संचारक होनेसे, सप्त अश्व नियुक्त होते है ऐसा कहा है। क्योंकी अन्तरिक्षमें विहार करनासो वायुके अधीन है.। यानेवायु एक ही होने परभी

सत्र स्वरूप धारणकरके जिस (रथ)को चलाता है. और पूर्वोक्त जो भूत भविष्य वर्तमान काल वे जिस रथके चक्रके नाभिस्थानापन्न है। और उत्पत्ति नाशादिकसें रहित होकर जो चक्र बहुत मजबूत है। और जिस चक्रमें यह प्रसिद्ध समग्र भूतसमूह आश्रय करके रहते है, ऐसे यह काल चक्रवाले रथका नियामक परमेश्वर के अपरोक्ष ज्ञानहीसें मुक्ति होती है. इस वजहसे श्रवणादि साधनों करके उस परमेश्वरके साक्षात्कारमें तत्पर में होता हुं. (इस तरहसें पूर्व मंत्रसें संबन्ध है.) ॥ २ ॥

१०. २ ३ १४ कोर्ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्को विद्वांसमुप गात्प्रष्टुमेतत् ॥४॥

एवं प्रपञ्चस्यकालायत्ततां प्रतिपाद्य तस्यकारणभूतस्य परमेश्वरस्याविषयत्वमाह-कोददर्श कोद्रष्टुं शक्नुयात्, कदा! प्रथमंसृष्टेःपूर्वं अव्याकृतावस्थायामित्यर्थः। किं? जायमानं प्रथमभावविकारमापद्य मुत्पद्यमानं प्रपञ्चमित्यर्थः। दुर्ज्ञेयत्वेहेतुमाह-यद्यस्मात् अस्थन्वन्तमस्थिमन्तं, शरीरमुपलक्षणमेतत्, कार्यभावमापन्नमित्यर्थः, अनस्था अस्थिरहिता अशरीरा सांख्यप्रसिद्धाप्रकृतिः वेदान्तप्रसिद्धा ईश्वराश्रयामाया बिभर्ति गर्भवदन्तर्धारयति, अव्याकृतावस्थायां अनस्थोऽशरीरः परमेश्वरो बिभर्ति. यदा केवलः परमेश्वरो मायाशबलितः सन् इदं जगन्निर्मितवान्, उत्पत्तिसमये देहादिसहितस्य कस्यचिदभावात् को ददर्श? तदानीं मनो नित्य आत्मा च नित्यस्तत्संयोगात्कश्चिदात्मा जानातीतिचेत्सोऽपिनसंभवत्यतआह-भूम्याःसंबन्धि पार्थिवं स्थूलशरीरं, असुः प्राणस्तदुपलक्षितं सूक्ष्मशरीरं, असृक् शोणितं सप्तधातूपलक्षकं, यद्यपिशरीरं पंचभूतात्मकं तथापि भूतद्वयप्रत्यक्षत्वात्तदपेक्षयोक्तम्। आत्मा तैः संबद्धश्चेतनः क्वस्वित् कुत्रास्ते न कश्चिदस्तीत्यर्थः। "नान्यत्किञ्चनमिषत्" (ऐ. १. १. १.) इतिश्रुतेः। विद्वांसं जगत्कारणविषयज्ञानवन्त मन्यंगुर्वादिकं एतत्कारणं प्रष्टुं कः शिष्योऽल्पमतिरुपगात् उपगच्छति। तादृशोदेहेन्द्रियसंघातरूप आत्मा तस्मिन्समयेकुत्रास्ति प्रष्टामतिवक्ताचोभावपिनस्तइत्यर्थः। " नतु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तंयत्पश्येत् " इतिश्रुतेः। यद्वा प्रथमं प्रथमभाविनं जगतःकारणभूतं को ददर्श कः साक्षात्करोति। जायमा-

नमस्यन्वन्तं प्रानुप मनस्थिकः. परमेश्वरः शरीरमशरीरो यघस्माद्भिर्मर्ति द्रष्टुरपित स्कार्यत्वादिति भावः ॥ ४ ॥

अनुवाद-उस तरहसें प्रपंचकी कालाधीनता प्रतिपादन करके प्रपंचका कारणभूत परमेश्वर (ज्ञानका) अविषय है ऐसा कहते है- सृष्टिके पूर्वमें याने अव्याकृतावस्थामें भावविकाररूपसें प्रथम उत्पन्न होनेवाले प्रपंचको देखनेके लिये कौन समर्थ हो सक्ता है? क्योंकी भावविकारात्मक इस प्रपंचको शरीर (आकार) रहित जो सांख्याभिमत प्रकृति किंवा वेदान्त प्रसिद्ध जो माया सो गर्भवत् अपनी भीतर धारण करती है. और अव्याकृताव स्थामें शरीर (आकार) रहित परमेश्वर सो धारण करता है. याने परमेश्वर जबकी केवल मायोपाधिक होकर इस प्रपंचका उत्पादक हुवा तो उस उत्पत्ति समयके प्राक्कालमें देहेन्द्रियादिसंघातसहित कोइभी न होनेसें इस (प्रपंच) को कौन देख सक्ता है? कथंचित् ऐसा कहा जायकी मन नित्य है और आत्माभी नित्य है, उन दोनोका नित्य संबन्धवान् कोइ आत्मा जानता होगा, तो यह कहेनाभी यथार्थ नहिं है. क्योंकी-पार्थिवविकार जो स्थूलशरीर और तदन्तर्गत जो प्राणादिसहित सूक्ष्मशरीर और शोणितादिक सप्तधातु इनसें संबन्ध रखनेवाला कोइभी चेतन उस समयमें है नहिं. श्रुतिभी (ऐः १-१-१.) "व्याकृत भेदवान् पदार्थ है नहिं" ऐसा कहती है। यानें विद्वान् जोकी जगत्‌के कारणरूप परमेश्वरको जाननेवाला गुरु वगैरह है उनको इस प्रपंचके कारणको पूछनेके लिये अल्प प्रज्ञावाला कौन शिष्य उपसदना वीधिसें प्राप्त करसक्ता है, ऐसा देहेन्द्रियादिसंघातविशिष्ट कोइ आत्मा है नहि. जबकी प्रष्टा और प्रतिवक्ता दोनों नहिं है तब कौन पूछे और किससे पूछे. यहतात्पर्य है. श्रुतिभी कहती हैंकी "दूसरा कोइ पदार्थ है नहिं की जिसको परमेश्वरसें व्यतिरिक्त समझें" अथवा ऐसाभी व्याख्यान हो सक्ता है-सबकी पहिले रहेनेवाले पुराणपुरुष परमेश्वरको कौन (साधारण) साक्षात्कार करसक्ता है. क्योंकी उत्पन्न होने वाले भूत भौतिक शरीरधारी सावयव है, और परमेश्वर निरवयव अशरीर है तो उसको कौन अपरोक्षकरसके, याने जितनें द्रष्टृत्वके अभिमानी है वे सब उनके बनाये भये कार्य है. इससें उसको कोइ (सत्वर मंद अधिकारी) अपरोक्ष करसक्ता नहिं. ॥ ४ ॥

११. २ ३ १४ पाकः पृच्छामि मनसा विजानन्देवानामेनानिहितापदानि।
वत्सेबष्कयेधि सप्ततन्तून्वितत्निरेकवयओतवाउ ॥५॥

पाकः पक्तव्योऽपक्वमतिरहं मनसाऽसंस्कृतेनाविजानन्नतिगहनं तत्त्वं विशेषेणज्ञातुमशक्नुवन् पृच्छामि प्रश्नं करोमि। अज्ञाने कारणमाह–एना एनानि पदानि संदेहास्पदानि तत्त्वानि देवानां निहिता निहितानि तानिदेवानामपिगूढानी-त्यर्थः, यद्वा देवानां पदानितत्त्वानि निधिवद्गोपयित्वा स्थापितानि। अत पृच्छामि ज्ञानोपयोगायेति शेषः। तानिकानीत्युच्यते–वत्से सर्वस्यनिवासभूते बष्कये, वट् इति सत्यनाम तत्कपतीति बष्कयः तस्मिन्नादित्ये, अधि अधिकं सप्ततन्तून् तायमानान् सप्तसोमसंस्थान्कवयोमेधाविनो यजमाना ओतवै जगद्रूपतिर्यक्तन्तून् वेतुं वितत्निरे वितन्वान्ति ॥ ५ ॥

अनुवाद–अपक्वबुद्धिवाला और संस्काररहित मन होनेसें अत्यन्त गहन तत्त्वको यथार्थ समझनेको अशक्त ऐसा में (आपसें पूर्वमन्त्रोक्त) प्रश्न पुछताहुं. अज्ञानमें कारण बतातेहै–देवोंकोभी जो (गहनतत्त्व) संदिग्ध हैं अथवा वे देवोंके तत्त्व याने दिव्य अलौकिक होनेसें निधिवत् खजानाकी तरह गुप्त करके रक्खे गयेहै, इसलिये उनतत्त्वोंमें ज्ञानका उपयोग होने के लिये (आपसें) पूछताहुं. । वे तत्त्व कौनसें ? तो कहते है की-समस्त प्रपंचका निवास-रूप और सत्य त्रिकालाबाधित जिस आदित्यके लक्ष्यार्थभूत परमेश्वरमें अधिक-रूपसें विस्तारको पाये भये सप्त लोकरूप तन्तूओको बुद्धिमान् लोक विस्तृत समझतेहै. यानें उसी परमेश्वरस्वरूप अधिष्ठानमें यह सर्व प्रपचको कल्पित समझते है. ऐसे गहनतत्त्वको में पूछता हु.

१२. २ ३ १५ अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्रकवीन्पृच्छामि विद्मने न विद्वान्।
वियस्तस्तम्भषळिमारजांस्यजस्य रूपेकिमपि स्विदेकम्॥ ६॥

अचिकित्वान् देवतातत्त्वमजानन् अहं चिकितुषः विशेषेणतत्त्वम् जानतः कवीन्क्रान्तदर्शिनः अधिगतपरमार्थान् अत्र अस्मिंस्तत्त्वविषये पृच्छामि, किमर्थम्? विद्मने वेदनाय परमार्थज्ञानाय. किंजानन्नेवपराभवायार्थं? नेत्याह–विद्वान्न पृच्छामि अपितु अज्ञानादेव, यः परमेश्वरः वितस्तम्भ स्तम्भितवान्। " अथ य आत्मा

सेतुर्विधृतिरेषांलोकानामसंभेदाय." इति श्रुतेः।(छां. ८-४-१) किम्? इमा इमानिषड्रजांसि लोकान् "लोकारजांस्युच्यन्ते" इति निरुक्तम् । यद्यपिलोकाः सप्त तथापि सत्यलोकस्य सर्वेषांकर्मिणां साधारणत्वाभावात्षडित्युक्तम्। ननु षडेवोक्ताः सप्तमः किमिति ननिर्दिष्टः? इत्युच्यते—अजस्य जननादिरहितस्य चतुर्मुखस्यब्रह्मण : रूपे स्वरूपे एकं, सत्यलोकाख्यंपुनरावृत्तिरहितंस्थानं किमपि स्वित्? किंस्विदेव? तत्र केनाप्यधिगन्तुंशक्यमित्यर्थः। कैश्चिदेवोपासकैरर्चिरादि मार्गेण गन्तव्यत्वादितिभाव:। यद्वाषड्जांसि विलक्षणाः षड्ऋतवः तानि यः स्तम्भयतत्त्वं अजस्य गमनशीलस्य जन्मरहितस्य वादित्यस्यरूपे रूप्यमाणे दृश्यमाने मण्डले एकमद्वितीयं किमपिस्वित्? किंस्वित्? यत्किञ्चिदवाङ्मनसगम्यंतत्त्वमस्ति तत्पृच्छामि "यएषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषोदृश्यते" इत्यादि (छां. १-६-६) श्रुतिप्रतिपादितंतत्त्वम्। अथवाषडिमानि रजासि त्रिविधान्भूलोकाँश्च यः तस्तम्भ, "तिस्रोभूमीर्धारयन् त्रीँरुतद्यौ" रितिनिगमः (ऋ. सं. २-७-७) तस्याजस्य परब्रह्मणोरूपे नानाविकारमाजिजगति किमपि स्विदेकमेकात्मकमस्तीति प्रश्नः। अविशेषमस्ति नाममात्रमेकरूपमस्तीत्युत्तरविवक्षया प्रश्नः" अस्तीत्येवोपलब्धव्यमि" तिश्रुतेः॥ ६॥

अनुवाद—दिव्य तत्त्वसे अज्ञात मैं क्रान्तदर्शी यथार्थ तत्त्वके विज्ञानवाले शिष्टोंसें पारमार्थिक ज्ञानके लिये पूछता हुं, तो क्या जानते हुवे पराजयादिक के अर्थ पूछते हो? नहि. केवल मैं अज्ञात होनेहीसे पूछताहुं. की जिस परमेश्वरनें इन् छ लोकोंको स्तम्भित-नियमित कर रख्खेहैं. श्रुतिभी कहती है की "जो आत्मा इन् लोकोंके असंभेद-असांकर्य के लिये सेतुभूत है याने सबको धाँरण कर रहा है"। यद्यपि पूर्व मन्त्रमें सप्त "लोक कहेंहैं तथापि सत्य लोक सकल कर्मठोंको गम्य न होनेंमे "छ लोक" ऐसा कहाहै। तथापि सप्तमलोकका निर्देश क्यों न किया? तो कहतेंहैं की जन्मादिरहित चतुर्मुख जो हिरण्यगर्भ उनके स्वरूपमें एक सत्यलोकात्मक पुनरावृत्तिरहित स्थान कोइ अनिर्वचनीय है. वह स्थान प्रायः किसीका गम्य नहि है. यानें सिर्फ उपासक लोक अर्चिरादि मार्गसें वहां जातेंहै. औरकिसीसे जाया जाता नहिं. इसमें उस सत्य लोकका निर्देश न करके अवशिष्ट छ लोकोंका प्रदर्शन कियाहै. अथवा छ जो विलक्षण ऋतु है उन् ऋतुओंको जो परमेश्वर नियमानुसार प्रवृत्त कररहा

है, अज याने सर्वत्र गतिमान् अथवा जन्मादिविकाररहित उस आदित्य (जोको पूर्व मन्त्रमें लक्ष्यार्थरूपसें कहा गया है उस) के दृश्यमान मंडलमें सजातीय विजातीय और स्वगत इन् भेदत्रयसें शून्य; वाणी और मनका अगोचर तत्त्व कौनसा है सो में पूछता हुं. "जो यह हिरण्यस्वरूप पुरुप आदित्य के अन्तर्गत दिख पडता है." ऐसा श्रुतिभी कहती है. अथवा छ जो यह लोक है याने जिन्मे भूरादि त्रिलोकी प्रधान है, वैसें लोकोंको जो नियमित रखता है उस परब्रह्मके स्वरूपभूत नानाविधविकारसहित इस प्रपंचमें एकात्मक तत्त्व कौनसा है? "विकारोनामधेयं" नामरूप सब विकारभूत होनेसे मिथ्या है "अविनाशि अचल और अधिष्ठानरूप तत्त्व तो एकही है" उत्तर के अभिप्रायसें प्रश्न है. "केवल सत्स्वरूप है ऐसा उपलब्ध करना चाहीये" यह श्रुतिभी इस मन्त्रके गूढ उत्तररूप अर्थके साथ संगति पातीहै ॥ ६ ॥

१३ २ ३ १७ स्त्रियः सतीस्ताँउमेपुंसआहुःपश्यदक्षण्वान्नविचेतदन्धः ।
कविर्यःपुत्रः सईमाचिकेतयस्ताविजानात्सपितुष्पितासत् ॥१६॥

या इदानींस्त्रियः सतीः स्त्रीत्वंप्राप्ता आहुर्लौकिकाः तानुउ तानेव मे मह्यं पुंसः पुरुपानाहुः प्रतिपादयन्ति तत्त्वज्ञाः। कथमन्यस्यान्यभावः? उच्यते एकस्यैवनिरस्तसमस्तोपाधिकस्यात्मनः तद्देहावस्थानमात्रेण तत्तव्यपदेशोपपत्तेः । श्रूयतेहि–"त्वंस्त्री त्वंपुमानसि त्वं कुमार उतवा कुमारी" इत्यादि (श्वे० ४-३) स्त्रीत्वंपुंस्त्वंचोभयमपि वस्तुतोनास्तीत्युक्तं भवति । स्मृतिरपितदभावंबोधयति "नैवस्त्रीनपुमानेपनैवचायं नपुंसकः॥ यद्यच्छरीरमादत्ते तेनतेनसचोद्यते" इति। अमुम् परमात्मानमक्षण्वान् ज्ञानदृष्टयुपेतः कश्चिन् महान् पश्यत् जानाति, अन्धः अतथारूपः स्थूलदृष्टिर्न विचेतत् नविचेतयति न जानाति । किञ्चपुत्रो वयसाऽल्पोऽपि यः कविः क्रान्तप्रज्ञोज्ञानीस्यात् ईम् इममर्थं सविचिकेत जानाति। एवमुक्तलक्षणस्य परमात्मनस्ता तानि स्त्रीत्वपुंस्त्वादीनि योविजानात् औपाधिकानि जानीयात् स पितुः स्त्रोत्पादकस्यापि ज्ञानरहितस्य पितासत् पितृवत् पूज्यो भवति ॥१६॥

अनुवाद–जिनको इस कालमें लोक "स्त्री" ऐसा कहते है वे स्त्रीयों मेरे (समान अधिकारीके) लिये पुरुपरूपभी है ऐसा तत्त्वज्ञलोक प्रतिपादन करते है।

अन्य पदार्थको अन्य कैसे समझना ? याने स्त्रीयोंको पुरुषो कैसें समझि जांय ? तो कहतें है की एकही जो परमात्मा समस्त औपाधिक भेद मात्रसे रहितहै उसी परमात्माको तत्तद् शरीरमें अवस्थित होनेंसें तत्तद् (स्त्रीत्वपुंस्त्वादिक) व्यवहार उपपन्न होता है. श्वेताश्वतरउपनिषद् (४–३) में कहाहै की तुमही (परमात्माही) स्त्री हो, तुमही पुरुष हो. तुमही कुमार हो, तुमही कुमारी हो. याने स्त्रीत्व पुंस्त्वादिक जो उपाधिगत धर्म है सो निरुपाधिक शुद्ध आत्मचैतन्य में वास्तविक नहि है. “ परमात्मा पुरुष नहि है, स्त्री नहि है, नपुंसक नहि है. जिस शरीररूप उपाधिको धारण करता है, उसी उपाधि (स्त्रीत्वपुंस्त्वादिक) रूपसें व्यवहारका विषय वह बनताहै” ऐसा स्मृतिमेंभी कहा है. इसी परमात्माको ज्ञानदृष्टिवाला कोइ महाशय यथार्थ अपरोक्ष करसक्ता है. और जो उससें विपरीत है याने स्थूलदृष्टिवाला है सो इस परमेश्वरको नहि जानसक्ता. और पुत्र होते हुवेभी अर्थात् जो अल्पावस्थावाला होते हुवेभी अपरोक्ष ज्ञान संपन्न हो चुका है सो इस अर्थको यथार्थ जानसक्ता है याने इस ज्ञानमें अवस्था कोइ नियामक नहि है. एवं इस परमात्मा के उपाधियोंको (स्त्रीत्वादिकको) जो (उपाधिरूपसें) यथार्थ जानताहै वह अपने उत्पादक पिता, की जो ज्ञानहीन है, उनकाभी पितृवत् परमपूज्य है. ॥ १६ ॥

१४ २ ३ १७ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति ॥२०॥

अत्र लौकिकपक्षद्वयदृष्टान्तेन जीवपरमात्मानौ स्तूयेते । यथा लोके द्वौ सुपर्णौ शोभनगमनौ सयुजा समानयोगौ सखायौ समानख्यानौ समान वृक्ष परिषस्वजाते एकमेव वृक्षं परिषस्वजाते आश्रयतः तयोरन्य एक पिप्पलं पक्व फलं स्वाद्वत्ति स्वादुतरमत्ति, अपरोऽनश्नन्नभिचाकशीति अभिपश्यति तद्वद् द्वौ सुपर्णस्थानीयौ क्षेत्रज्ञपरमात्मानौ सयुजा समानयोगौ, योगोनाम सम्बन्धः सचतादात्म्यलक्षणः, सएव आत्मा परमात्मनः स्वरूपं यस्य जीवात्मनः एवमेकस्वरूपावित्यर्थः । ननु सम्बन्धोद्विष्ठः सच पक्षिणोरेव भेदमपेक्षते अतः कथमैकात्म्यमिति चेन्न औपाधिकभेदं वास्तवाभेदं चापेक्ष्य प्रवृत्त , अतएव सखायौ समानख्यानौ नान्यख्यानौ । नन्वेकस्य यादृशंख्यानं तादृश

मेवान्यस्येति व्युत्पत्त्या भेदः स्फुटं प्रतिभाति कथं तादात्म्य मुच्यत इति न वक्तव्यम्। नात्र परस्परं दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकभावः अपितु यस्य यादृशंख्यानं स्फुरण परमात्मनः तदेवख्यानमितरस्यापि जीवात्मन इति सखायावित्युच्यते, एकरूपम‌ाशावित्यर्थः। अत उपपन्न मैकात्म्यम्, अनेन वास्तवभेदोऽपि निरस्तः। समानं वृक्षं परिषस्वजाते इत्यत्र यथा आश्रयान्तराभावा दुभयोरेकाश्रयत्वमभ्युपगन्तव्यम् तद्वत्सयुजा सखाया इत्युभयत्राप्येकयोगख्याने आश्रयणीये, वृश्च्यत इति वृक्षो देहः, सचोभयोः समान एकएव, जीवस्यभोगार्थत्वात् परमात्मना सृष्टैर्महाभूतैरारब्धतया चस्योपलब्धिस्थानत्वाच्चो भयोरपिसमानः, तादृशं समानं वृक्षं परिषस्वजाते परिष्वजत आश्रयतः, नच जीवस्य वस्तुत ईश्वरत्वे कथं जीवबुद्ध्या संसार शोकाविति वाच्यम्, तयोर्मोहकृतत्वात् तथा चाथर्वणिका अनुमन्त्रमाम्नाय अस्य संदेहनिवर्तकमुत्तरंमन्त्र मेवमामनन्ति "समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो अनीशया शोचति मुह्यमानः। जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमान मितिवीतशोकः" इति (श्वे ४–७) अस्यायमर्थः—एकएव शरीरे पूर्णः पुरुषः परमात्मा निमग्नो निगूढःसन् स्वयमपीश्वरोऽप्यनीशत्वबुद्ध्या मुह्यमानो मूढःसन् शोचति संसारे अहंकर्ता सुखी दुःखीति जननमरणेऽनुभवति, यदातुजुष्टं नित्यतृप्तमनं संसार शोकातीतमीशं परमेश्वरं पश्यति स्वानन्यतया साक्षात्करोति तदा वीतशोकः देहाद्व्यतिरिक्तः स्वस्वरूपसाक्षात्कारेण गततापत्रय.सन् अस्य महिमानमिति, निरस्त समस्तोपाधिकस्य परमेश्वरस्य महिमानं सार्वात्म्यसर्वज्ञत्वादि महिमानमिति एति प्राप्नोति, नचतद्भावादन्यत्र तन्महिमा प्राप्यते अतस्तद्रूपो भवतीत्यर्थः, तस्माद्वस्तुत एकएव, भेदस्तु मोहकृत इति प्रसिद्धम्। अनुभवदशाया लौकिकबुद्ध्या भेद मभ्युपेत्योच्यते—तयोरन्यो जीवात्मा पिप्पलं कर्मफलं स्वादु स्वादुभूत नाजि भुङ्क्ते, यस्य यदुपार्जितं तत्तस्य स्वादु भवति, अन्यः परमात्मा अनश्नन् आप्तकामत्वेना भुञ्जानः स्पृहाया अभावात् "आप्तकामस्य का स्पृहा" इतिस्मृतेः। तस्माद वास्तविकभेदमुपजीव्य तयोरन्य इत्युक्तम्। वस्तुतस्त्वनीशया शोचति मुह्यमान इत्युक्तत्वादभेद एव, तादृशः परमात्मा अभिचाकशीति स्वात्मन्यध्यस्त जगत्साक्षित्वेनेक्षते ॥ २० ॥

अनुवाद—इस मन्त्रमें लौकिक दोनों पक्ष लेकर जीवात्मा और परमात्मा स्तुति किये जाते है. जैसें लोकमें उत्तम गमनवाले समानसम्बन्धवाले

समान अभिव्यक्तिवाले दो (पक्षी) एकही वृक्षमें आश्रित होतें हैं, उन् (दोनों) मेंसे एक (पक्षी), परिपक्व (होनेसे) स्वादिष्ट फलका उपभोग करता है, और अन्य (पक्षी) उपभोग न करता हुवा समीपसें देखता रहता है. (सिद्धान्त) तैसेंही पक्षिस्थानापन्न जीवात्मा और परमात्मा समानसम्बन्धवालें हैं. यहां जीव परमात्माका सम्बन्ध पक्षिओंकी तरह संयोगादिक नहिं है किन्तु तादात्म्य (अभेद) सम्बन्ध है. याने जीवात्मा परमेश्वरसें अभिन्न है और परमात्मा जीवात्मासें अभिन्न है. दोनों एक स्वरूपही है. (पूर्वपक्ष) ननुसम्बन्ध दोपदार्थमें रहता है तो यहांपरभी पक्षिद्वयरूप दृष्टान्त होनेसें पक्षिद्वयगतभेद सिद्ध होता है तो तादात्म्य कैसे कहतें है ? (समाधान) अन्तःकरणादिक उपाधियोंका स्वीकार करके जीवात्मामें भेद प्रतीत होता है, तथापि वास्तविक (निरुपाधिक) तो अभेद (तादात्म्य) ही है. इसीलिये कहतें है की "सखायौ" समान प्रकाशवालें है. (पूर्वपक्ष) ननु एक (आत्मा) का जैसा प्रकाश है तैसाही अन्य (परमात्मा) का भी प्रकाश है, ऐसा कहनेसें भेद स्फुट सिद्ध होता है (जैसें "चन्द्रकी तरहमुख" ऐसा कहनेसें चन्द्र और मुखका भेद स्पष्ट अवगत होताहै तैसेंही "आत्मा और परमात्मा समान प्रकाशवालें है" ऐसा कहनेसें भी भेद स्फुट प्रतीत होता है) तो तादात्म्य कैसें कहाजाय ? (समाधान) यहां परस्पर वैसा दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकभाव नहिं है किन्तु जैसा परमेश्वरका स्फुरण है वैसाही याने वही स्फुरण जीवात्माकाभी है. अर्थात् एकरूपप्रकाशवाले है (जैसें दीपक दो होनेसें भेद प्रतीत होनेपर भी प्रकाशस्वरूप सामान्य एकही है तैसें यह भी दोनो अधिकारीयोंको भिन्न प्रतीत होनेपर भी वास्तविक अभिन्नही है.) इससें वास्तविक भेद निरस्त हुवा। (प्रकृतम्) "समान वृक्षका आश्रय करतें है" इस जगे जैसें दूसरा आश्रय न होनेसें दोनों (पक्षि) एकाश्रयक है तैसें ही "समानसम्बन्ध वाले और समानप्रकाशवाले" ऐसा कहनेसें एकही सम्बन्ध (तादात्म्य) और प्रकाशवाले है ऐसा मानना चाहीये. (जैसें वृक्ष छेदन भेदन करने योग्य है तैसें देह भी छेदन भेदन क्रियाकी योग्यता वाला होनेसें वह भी वृक्ष कहाजाता है) वृक्षस्थानापन्न देहभी दोनोंका समान है. जीवके भोगार्थ शरीर है और परमात्माने रचे हुवे पंचमहाभूतोंसें बना है और परमेश्वरका उपलब्धि (प्राप्ति) स्थान है. इस लिये यह देहभी "वृक्ष स्थानापन्न होकर दोनोका आश्रयभूत है" ऐसा कहा जाता है.

जीवात्मा वस्तुतया ईश्वररूप होनेपरभी उसमें जीवबुद्धिसें संसरण और शोकादिक जो होतें है सो मोहमूलक है. श्वेताश्वतर उपनिषद् (४-७) में कहा है की शरीरमें पुराणपुरुष परमात्मा गुप्त रहा है और स्वयं ईश्वर होतेहुवेभी अनीश्वरत्व बुद्धिसे मूढ बनकर शोक करता है याने संसारमें मैं कर्ता मैं सुखी मैं दुःखी ऐसा भ्रान्त होकर जन्ममरण अनुभवता है। और जिस समयमें नित्य तृप्त संसारशोकादिकसेंरहित परमेश्वरको स्वकीयरूपसें अभिन्न समझता है यानें साक्षात् करलेता है। उस समयमें शोक रहित बनकर याने देहादिकसें भिन्न होकर स्वरूपाभिन्न होनेंसें आध्यात्मिकादि त्रिविधतापोंसें रहित होकर समस्त उपाधि रहित परमेश्वरके सर्वात्मता सर्वज्ञतादिक महिमाको (जीवात्मा) प्राप्त होता है, याने उस परमेश्वरसें अभिन्न न होकर उस् (परमेश्वर) का महिमा प्राप्त नहि होसक्ता इससें वह (जीवात्मा) ईश्वररूप होनेपरभी भ्रान्तिमें जीवभावापन्न हुवा था, परंतु भ्रमापनयन करके तद्रूप होजाता है अर्थात् वास्तविक एकही होनेपरभी भेदप्रतीति मोह मूलक है यह सिद्ध हुवा। अनुभव दशामें लौकिकबुद्धिसें भेद स्वीकार करके कहतें हैं की—उन् दोनोंमेंसें एक (जीवात्मा) स्वादिष्ट कर्मफलका उपभोग करता है, और यह उपपन्नभी है की जिसनें जो उपलब्धकीया हो सो उसको स्वादुतर होता है, और अन्य जो परमात्मा है सो नित्यतृप्त होनसें स्पृहारहित होकर उस फलका उपभोग न करता हुवा स्वरूपमें अभ्यस्त सचराचर प्रपंचको साक्षिभूत होकर देखरहा है। इससें कल्पितभेदका अंगीकार करके "उन दोनोंमेंसें एक" ऐसा कहा है, और वास्तविकतो—" अनीश्वरत्वभ्रमसें मूढ होकर (वहि) शोचता है " ऐसा कहनेंसें अभेद स्फुट पाया जाता है ॥२०॥

१५. २-३ १८ यत्रासुपर्णाअमृतस्यभागमनिमेषविदथाभिस्वरन्ति।

इनोविश्वस्यभुवनस्यगोपाःसमाधीरः पाकमत्राविवेश ॥ २१ ॥

यत्र यस्मिन्नात्मनि सुपर्णा शोभनपतनानि स्वस्वविषयग्रहणाय गमन कुशलानीन्द्रियाणि चक्षुरादीनि अमृतस्य भागम्, अत्र विषयावच्छिन्न चैतन्यममृत मित्युच्यते, तस्य भाग भजनीय स्वस्वाशमनिमेष निमेषरहित मनारत विदथा वेदनेन वृत्त्यवच्छिन्नचैतन्येनावरुद्धान्याभिस्वरान्ति अभिप्रयन्ति आवरणापगमनेन स्फोरयन्ति। किञ्च यस्मिन्न स्वाम्यस्य देहस्य विश्वस्य भुवनस्य गोपा गोपायिता

रक्षिता, यद्वा विश्वस्य भुवनस्य भूतजातस्य स्वामी अस्य देहस्य गोपा, अनेन तत्त्वंपदार्थयोरेकत्वं प्रतिपादितं भवति। स परमेश्वरो धीरः समाधिनिष्ठः सर्वदाऽविक्रियः मा मां पाकं परिपक्वमनस्कं यागदानादिनाऽपगतरजस्तमस्कत्वेन दर्पणवदतिनिर्मलसत्त्वोद्रिक्तमनस्कं मा आविवेश, उक्तरूपे चित्ते तादृशं वस्तु स्फुरतीत्यर्थः। यद्वा अपरिपक्वमना अहं पूर्वमज्ञानदशायां मदन्य ईश्वरोऽस्तीति अविद्वान् ततः परमस्ति कश्चित् सर्वज्ञः सर्वेश्वरः सत्यज्ञानादिलक्षण इति निश्चित्य पश्चाद्गुरुशास्त्राभ्यां स एवाहं अस्मीतिमत्वा एवपारंपर्येणावगत्य असंभावनाविपरीत भावने व्युदस्य भावनया साक्षात्कृत्य परिपूर्णः परमात्मा अभूवमित्यर्थ। अयमेव समाधीरः पाकमत्राविवेश इत्यनेनोच्यते। नन्वनवच्छिन्नस्य परमात्मनः सर्वत्र व्याप्तत्वात्प्राप्तिरेव नोपपद्यते? सम्प्रत्यत्र प्राप्तिर्द्विविधा, प्राप्तप्राप्तिरप्राप्तप्राप्तिश्चेति, प्राप्तस्यापि कण्ठेचामीकरन्यायेनावरणाज्ञानहानद्वारेण प्राप्तिरुपपद्यते ॥ २१ ॥

अनुवाद—जिस परमात्मामें स्वस्वविषय ग्रहण करनेमें निपुण चक्षुरादिक इन्द्रियाँ अमृत (इष्टविषयरूप स्वकीय अंश) को अनिमेषवृत्तिसें अर्थात् निरन्तर प्रमाणावच्छिन्न चैतन्यसे अभिन्न होकर आवरणाभिभव करके स्फूर्तिकोपाती है. और जो परमात्मा इस् शरीरका नियामक है, और ब्रह्माण्डका रक्षक है, अथवा समग्र भूतभौतिक समूहका जो स्वामी है, और इस् शरीरका रक्षक है, (इससें तत् और त्व पदार्थकी एकता सिद्ध होती है) वही परमेश्वर समाधिनिष्ठ याने सर्वदा निर्विकार होते हुवे, यागदानादिकसें रजोगुण तमोगुण रहित बनकर दर्पणवत् अत्यन्त निर्मल सत्वगुणकी (विशेष) अभिव्यक्तिवाले मेरे मनमें (सतत) आविष्ट है, यानें निर्मल चित्तमें वैसा तत्व स्फुरित होता है। अथवा संस्कारहीन मनवाला मैं पहिले अज्ञानदशामें मुझसें अन्य किसी ईश्वरको मानता नहिं था. उसके बाद (संस्कार होनेंसे) कोइ सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सत्यज्ञानानन्दरूप परमेश्वर है ऐसा परोक्ष ज्ञान संपादन करके गुरुशास्त्रादिकका परिचय होनेसे वह ईश्वर मैंही हु ऐसा परंपरासें असंभावना विपरीत भावनाको दूर करके सद्भावनाद्वारा अपरोक्ष अनुभव करनेंसें मैं परिपूर्ण परमेश्वर हो चुका हुं, यही अर्थ "समाधिनिष्ठ वह ईश्वर मेरे चित्तमे आविष्ट है" वहा (पूर्वमें) कहा गया है. ननु देशकालादिसे अपरिच्छिन्न परमेश्वरकी प्राप्ति कैसे उपपन्न हो सक्ती है? (समाधान) अप्राप्त प्राप्ति और प्राप्त प्राप्ति ऐसे दो तरहकी प्राप्ति है. उसमें

सें यहां कण्ठमें रहतें हुवेभी विस्मृत अलंकार की स्मृति होनेसें जैसे प्राप्तित्व-व्यपदेश होताहै तैसें यह नित्य प्राप्त परमेश्वरकीभी प्राप्ति उपपन्न है. ॥२१॥

१६ २ ३ १८ यस्मिन्वृक्षेमध्वदः सुपर्णानिविशंते सुवतेचाधिविश्वे ।
तस्येदाहुःपिप्पलंस्वाद्वग्रेतन्नोन्नशद्यःपितरंनवेद ॥२२॥

यस्मिन् परमात्मनि वृक्षे वृक्षवद्गमनादिरहिते अविक्रिये सुपर्णाः शोभन गमनानीन्द्रियाणि मध्वदः मधुनो ज्ञानस्य अत्रीणि तद्ज्ञानेन ज्ञानभाञ्जि इत्यर्थः, निविशन्ते स्वापकाले स्वस्वविषयेभ्यः प्रतिनिवृत्तानि आत्मनि वृत्त्यालीयन्ते, पुनः प्रबोधकाले अधिविश्वे विश्वस्योपरि सुवते च उद्यन्ति स्वस्वविषयान् लभन्त इत्यर्थः, तस्यपरमात्मनः पिप्पलं पालकं संसारत उद्धारकं स्वादु आस्वादनीयममृतत्वलक्षणं ज्ञानं, यत्फलास्वादने पुनः क्षुत्तृष्णाशोकमोहजरामरणादयो न भवन्ति तद्धिस्वादुतमम्, इतरस्वर्गादिफलानि पुनर्जननाद्यापादकत्वादापातस्वादूनि, तत्फलमग्रे स्वरूपज्ञानोत्तरकालमाहुः, य पुमान् पितरं पालकं ज्ञानफलं तत्फलाधारमात्मानं वा न वेद न जानाति गुरुशास्त्रात्स तत्फलं नोन्नशत् न प्राप्नोति, अत आत्मानं यो वेद सएव तन्मोक्षफलं प्राप्नोतीत्यर्थः। यद्वा "चर्मवदाकाश" मित्यादि श्रुतिर्ज्ञाना दन्योपायस्या मृतत्वप्राप्तिंनिवारयति। "ब्रह्मवेदब्रह्मैवभवति" त्यादिकानुज्ञा प्राप्तिमाह तस्मादीदृशं परमेश्वरं विदित्वा मुक्तो भूयासमित्यर्थ ॥२२॥

अनुवाद—वृक्षवत गतिरहित निश्चल निर्विकार जिस परमेश्वरमें सुंदर, गमनवाली इन्द्रियाँ ज्ञानका उपभोग करके निद्राके समयमें अपनें अपनें विषयोंसें निवृत्त होकर (परमेश्वरमें) वृत्ति सहित लीन होतीं हैं, और जाग्रत्कालमें प्रपञ्चान्तर्गत पदार्थों (विषयों) को ग्रहण करतीं हैं, उस् परमेश्वरसम्बन्धि अमृतत्व रूप ज्ञान जोकी आस्वादके योग्य होकर संसारसें उद्धार करनेवाला है और जिस ज्ञानफल मोक्षके आस्वाद लेनेंसें फिरसें भूखप्यास शोकमोह जरामृत्यु वगैरहसें (अधिकारी) रहित होजाता है, इससें जो फल परम स्वादिष्ट है, नहि की स्वर्गादिककी तरह पुनः पुनर्जन्ममरणादिक देनेंसें आपात (उपरसें) स्वादिष्ट है, वह फल स्वरूपज्ञान होनेके बाद होसका है. जो पुरुष पितृवत् पालन करने वाला उस ज्ञानफलको अथवा उस फलके आधारभूत परमात्माको गुरूंदेशसें और शास्त्रावगाहन करके नहीं जानता सो (उस् फलको) प्राप्त हो सका नहिं,

यानें जो परमात्माका अपरोक्षतया अनुभव करता है वही इस मोक्षरूप फलको उपलब्ध कर सक्ता है. अथवा "जिस समयमें लोक आकाशको चर्म की तरह लपेटलेंगे तबही आत्मज्ञानके सिवायभी मोक्ष प्राप्त कर सकेंगे" यह श्रुति अमृतत्व प्राप्ति के ज्ञानातिरिक्त उपायान्तरको निवारित करती है. "ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्मही बनता है" यह श्रुतिभी ज्ञानहीसें मोक्ष प्राप्तिको बतलाती है. इसलिये परमेश्वरका यथार्थ ज्ञान संपादन करकेही में मुक्त होजाउं. (ऐसा अधिकारिका कथन है) ॥ २२ ॥

१७ २ ३-१९- अनच्छयेतुरगातुजीवमेजद्ध्रुवमध्य आपस्त्यानाम्।

जीवोमृतस्यचरतिस्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येनासयोनिः ॥२०॥

अनेन देहस्यासारता जीवस्य नित्यत्वंच प्रतिपाद्यते । इदंशरीरं जीवावस्थाया मनत् प्राणनंकुर्वत् जीवं जीवनवत् तुरगातु स्वव्यापाराय तूर्णगमनं सदेजत् कंपमानंसत् शये शेते वर्तते, पश्चात्प्राणापगमनानन्तर मुक्तविलक्षणंसत् ध्रुवमविचलितंसत् पस्त्यानां गृहाणां मध्ये अशेतेत्याशेतेच स्थाणुवात्तिष्ठति । जीवस्य वैलक्षण्यमाह—मृतस्यशरीरस्यसंबन्धी जीवः मर्त्येन मरणधर्मकेनशरीरेण सयोनिः पूर्वं समानोत्पत्तिस्थानं, यद्यपि जीवस्य न जन्मास्ति तथापि वपुषस्तत्सद्भावात् तत्सम्बन्धेनोपचर्यते तदेवाह—अमर्त्य. अमरणस्वभाव "जीवापेतंवावकिलम्रियते" इतिश्रुते (छा ६-११-३) उक्तस्वभावोजीव स्वधाभिश्चरति, पुत्रैः स्वधाकारपूर्वकं दत्तैरन्नैश्चरति वर्ततइत्यर्थः ॥ २० ॥

अनुवाद—इस मन्त्रसे शरीरकी असारता और जीवकी नित्यता बतलाते है— यह शरीर जीव सहित होनेंसे श्वासोच्छ्वास लेता है. जीवनवाला कहाजाताहै. अपने व्यापारके लिये सत्वर गतिवाला होताहै. चञ्चल होकर रहता है. और प्राणोत्क्रमण (मरण) होनेके बाद पूर्वोक्त प्रकारसे विपरीत बनकर अपने स्वभावसिद्ध गुणवाला याने जड होनेंसे अचल होकर गृहोंकी मध्यमें स्थाणु (कटा हुवा और शाखापत्रादि रहित वृक्ष) की तरह रहता है. और "जीव उससें विलक्षण है" ऐसा कहते है—मृत शरीरके साथ (आपाततः) संबन्धवाला जीवात्मा मरण जन्म धर्मवाले शरीरके साथ समान उत्पत्ति स्थान

वाचां होते हुवेभी स्वयं असमर्थ है याने देहादिगत जन्मादि विकारसें रहित है. श्रुतिभी कहती है की "जीवभिन्न सकल पदार्थ नष्ट होते है जीवात्मा नष्ट होता नहिं" याने जीवात्मा जन्म मरण रहित होते हुवे भी शरीरसंबद्ध होनेसें शरीरगत विकारका आरोप पात्र उपचारसें बनता है. ऐसा यह जीवात्मा (अपनें) पुत्रोंनें "स्वधा" शब्दोच्चार पूर्वक दीये हुव अन्नादिकको स्वीकार करके विचरता है—रहता है. ॥ ३० ॥

१८. २ ३ २० यईचकारनसोअस्यवेदयईददर्शहिरुगिन्नुतस्मात् ।

समातुर्योनापरिवीतोअन्तर्बहुप्रजानिर्ऋतिमाविवेश ॥३२॥

अत्र गर्भवासक्लेशपूर्वकजननप्रतिपादनेन तत्परिहारायात्माज्ञातव्य इत्यर्थोऽप्रतिपाद्यते, य पुमान् पुत्रार्थीईएन गर्भं चकार करोति विक्षिपति वा तत्कारणभूतस्यरेतसो विक्षेपद्वारेण न स पुमानस्यतत्त्ववेद कर्मणिषष्ठीवा एनंगर्भं न जानाति, कथंभूतः कथवा केनप्रयोजनेनेति सर्वात्मना न जानातीत्यर्थ.। यश्चमातुरुदरस्थं ददर्श उदरवृद्ध्यन्यथानुपपत्त्याऽनुमानेन वा दर्शयति स तस्माद्द्रष्टु. सकाशात् सहिरुगिन्नुहि रुगित्यन्तर्हितनाम इच्छन्दः एवकारार्थ. नु निश्चये अत्यन्तमन्तर्हित एवखलु । यद्वा यः संसारावस्थायामिमेनं कृषिवाणिज्यवेदाध्ययनादिकं चकार सोऽस्यएतत्त्ववेद लोकान्तरे जन्मान्तरे वा, तथा यईमेनं ददर्श गिरिनदीसमुद्रबन्ध्वादिकं ददर्श जीवसमये तस्माद्द्रष्टाद्धिरुगिन्नु पृथगेव, अत्रानुभूतं सर्वे न जन्मान्तरे लोकान्तरे वाऽनुभवतीत्यर्थः, सतादृशो मातुर्जनन्याः योना योनौ अन्तः परिवीतः उल्बजरायुभ्या परितोवेष्टित. सन् बहुप्रजाः बहुजन्मभाक् अथवा उत्पन्नः सन् स्वयमपि अपत्योत्पादनेन बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश, एव गर्भदुःख मनुभवन् निर्ऋत्यभिधान प्रदुःखमनुभवति यावत्स्वरूपभूतात्मज्ञान, अतस्तत्परिहारायात्माज्ञातव्य इत्युक्त भवति. ॥ ३२ ॥

अनुवाद—इस मन्त्रमें प्राणिमात्रका जन्म गर्भवासके क्लेशोंका अनुभव पूर्वक होनेसें उस महादुःखकी आत्यन्तिक निवृत्तिके लिये आत्मज्ञान संपादन करना अत्यन्त आवश्यक है सो प्रतिपादन करतें है—जो पुरुष (गर्भाशयमें) गर्भ धारण कराताहै सो उस गर्भके स्वरूपको समझसक्ता नहि याने उस गर्भाशयमें

प्रविष्ट होनेवालेप्राणीको जो दुःख होता है उसको किसी हालतसें जान नहि सक्ता. और जो प्राणी अपनी माताके उदरमें स्थितहोकर माताके उदरकी वृद्धिरूप चिह्नसें अनुमानद्वारा (माताके) गर्भिणीत्वको सूचित करता है सो भी बहारके लोक जोकी देखनेवाले (अनुमान करनेवाले) हैं उनसें अत्यन्त गुप्तही है याने गर्भाशयकी भीतर होनेवाले दुःखातिषयको अन्तःस्थित प्राणी बहारके जनसमूहको निरूपित करसक्ता नहिं. अथवा जो पुरुष संसारमें खेतीरोजगार वेदशास्त्राध्ययनादिक करता हुवा हमेशां अपनें कार्यमें तत्पर रहता है सो गर्भगत प्राणीके दुःखोंको किसी लोकमें या किसीजन्ममें हरगीज नहि जानसक्ता, और जो प्राणी गर्भाशयके बहार निकलकर पर्वतें नदीयाँ समुद्रें स्नेही संबन्धी इष्टमित्रोंका जीवदशामें अनुभव करता है सो इस स्थलमें अनुभूत विषयोंमेंका सर्व विषय किसी जन्ममें यातो किसी लोकमें पा सक्ता नहि. (क्योंकी विषय वर्ग सब दैवाधीन होनेसें सकल समयमें सकल विषय नहि पाया जाता) तो वह प्राणी माताके गर्भाशयमें आन्त्र और रुधिरमलमूत्रादिकसें लपेटाहुवा अनेक जन्म धारण करनेवाला बनता है. अथवा स्वयं उत्पन्न होकरके फिर स्वयंही प्रजोत्पत्तिमें तत्पर होकर अनेक संतानवाला बनता हुवा " निर्ऋति " नामक नरक (दुःख) को अनुभव तावत्काल पर्यन्त किया करता है की यावत्काल पर्यन्त स्वरूपभूत आत्माका अपरोक्षानुभव नहि करसक्ता. इस लिये जन्म मरणादि और गर्भवासादिक महादुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्तिके लिये आत्मज्ञान संपादनकरनां यह परमावश्यकहै. ॥ ३२ ॥

१९. २ ३ २१ सप्तार्धगर्भाभुवनस्यरेतोविष्णोस्तिष्ठन्तिप्रदिशाविधर्मणि।

तेधीतिभिर्मनसातेविपश्चितःपरिभुवःपरिभवान्तिविश्वतः३६॥

सप्तार्धगर्भाः सप्त महदहङ्कारौ पञ्चतन्मात्राणीति मिलित्वा सप्तसंख्यानितत्त्वानिअर्धगर्भाः, अविकृतरूपाः विकाराश्रयायाः मूलप्रकृतेः प्रकृतिविकृतेः उदासीनस्यात्मनश्चोत्पन्नत्वादर्धांशेन प्रकृत्याकारेण परिणामादर्धगर्भाः पुरुषांशस्याविक्रियत्वादित्यभिप्रायः, अतएव तेषामप्रकृतिविकृतित्वं, यस्मादेवंतस्माद्भुवनस्य रेतः कारणं कारणभूतानि तान्येव विष्णोर्व्याप्तस्य पुरुषस्य विधर्मणि प्रदिशाप्रदेशेन तिष्ठन्ति। किञ्च ते धीतिभिः प्रज्ञाभिः मनसा जगदुपकारः कर्तव्य इति बुद्ध्या

च विश्वतः सर्वतः विश्वं परिभवन्ति परितो भावयन्ति कृत्स्नं जगद्व्याप्नुवन्तीत्यर्थः। यस्मादेवं तस्मात् ते त एव विपश्चितोबुद्धियुक्ताः परिभुवः सर्वत्र व्याप्ताश्च ॥ ३६॥

अनुवाद—महत्तत्व अहंकार पंचतन्मात्रायें यहसब मिलकर सप्ततत्त्व अविकृतरूपहैं, क्योंकी—विकारोंकी आश्रयभूत मूलप्रकृति और निर्विकार उदासीन आत्मासे यह सप्त तत्त्व उत्पन्न हुवेहैं. इसनें अर्धे अंशसें प्रपंचाकारेण परिणत हुवेहैं. और अर्धे अंश (पुरुषांश सच्चिदानन्दरूप) सें अविकृतहै. इसीलिये उनतत्त्वोंको पंडितलोक "प्रकृतिविकृति" शब्दसें व्यवहार करते हैं. तो यह सात तत्त्व जोकी ब्रह्माण्डके रेतोवत् कारणभूतहै, वे व्यापक पुरुषके जगद्धारणरूप व्यापारमें तत्पर हैं, और बुद्धिपूर्वक जगदुपकार करना चाहिये इस हेतुसें समग्र विश्वको अपनें स्वरूपसें व्याप्तकर रहेहैं- इसी उद्देशसें वे महदादिक व्याप्त हो रहेहैं. ॥ ३६ ॥

२० २ ३-२१ नविजानामियदिवेदमस्मिनिण्यःसनद्धोमनसाचरामि ।
यदामागन्प्रथमजाऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवेभागमस्याः ॥३७॥

अहंयदिवेदं यदपीदंविश्वमास्मि कृत्स्नःप्रपञ्चोऽप्यहमेवास्मि, नामरूपांशमपरमार्थंत्यक्त्वा सर्वत्रानुगतोऽस्मि, योयंसच्चिदानन्दाकारोऽस्ति सोहमस्मीति न विजानामि, विविच्य नाज्ञासिषं, परं शास्त्रजनितमिदमहमस्मीतिविज्ञानं न जातम् अविवेकी अहमित्यर्थः। कार्यकारणयोरभेदात् कृत्स्नप्रपञ्चस्यापि ब्रह्मानन्यत्वेन ब्रह्मैकत्वावगमे प्रपञ्चजातमपि स्वस्वरूपमेव भवति "इदंसर्वं यदयमात्मा. ब्रह्मैवेदं सर्वं" (मुं. २–२–११) आत्मैवेदं सर्वं "सईक्षतबहुस्यां प्रजायेये" त्यादिश्रुतिभ्यां एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञानात् "तदनन्यत्वमारंभणशब्दादिभ्य" (ब्र. सू २-१-१४) इत्याद्युपपत्तिभ्यश्च प्रपञ्चस्य ब्रह्मानन्यत्वंसिद्धं. यद्वा इवशब्दः उपमार्थः यदिव यत्परोक्षज्ञानं सर्वैकात्म्यरूपमानुभविकमस्ति तदिव तद्वदेवाहमस्मि, इदं सर्वमहमस्मीति ज्ञानं मे जातं मास्त्वेतद्दार्ष्टान्तिकभूतमानुभविकं सार्वात्म्यं यदस्ति तन्नविजानामि नप्राप्तोऽस्मि, शास्त्रजनितं सार्वात्म्यं जातं नत्वानुभविक मित्यर्थः। तत्र कारणमाह—यतोऽहं निण्यः अन्तर्हितः मूढचित्तः चित्तप्रत्यक्प्रवणाभावेन परिच्छिन्नइत्यर्थः, तत्रोपपत्तिमाह—सन्नद्धः अविद्याकामकर्मभिः सम्यग्बद्धोवेष्टितः अतएव मनसायुक्तः भावनासहिष्णुना

बहिर्मुखेन विक्षिप्तेनचेतसायुक्त सचरामि संसारे। अथवा मनसा सन्नद्ध चरानि इन्द्रियपरवेश एवसन् संसारे दुःखमनुभवामि, न सार्वात्म्य जानामीति परिदेवते, यास्कोऽपीमं परिदेवनार्थत्वेनोदाजहार"अथापि परिदेवना कस्माचिद्भावात् न विजानामि यदिवेदमस्मी"ति, बहिर्मुखचेतस· स्वरूपापरिज्ञानजनितं दुःखम-यत्र श्रूयते–पराक विश्वानि व्यतृणत् स्वयमूस्तस्मात्पराक् पश्यति नान्तरात्मन्निति (कठ २-१-१) तर्हि कदैतद्भवतीत्याह–यदामाआगन् आगमिष्यति तदा किं? तदुच्यते ऋतस्य परमार्थस्य परस्य ब्रह्मण प्रथमजा प्रथमोत्पन्न चित्तप्रत्यक् प्रवणजनितोऽनुभाव सयदा मा मा प्राप्नोति आदित् अनन्तरमेवाऽयत्र गनेन अस्या वाच ऐकात्म्यप्रतिपादिकाया उपनिषद्वाच यदिवेदमस्मीत्युक्ताया वा भाग भजनीय शब्दब्रह्मणा व्याप्तव्य पर ब्रह्मपद मश्नुवे प्राप्नोमि, चित्तस्य बहिर्मुखता परित्यज्यान्तर्मुखतैव दुःसपादा, सायदास्यात् तदानीमेव स्वरूप द्रष्टु सुशकमभवति पश्चाद्विलम्बाभावात्, यथा गिरिशिखरात्पतन् पाषाणोऽविलम्बेन पतति तद्वाचेच प्रत्यङ्मुखत्वस्य दुःशकत्वमिति तत्रैवश्रूयते "कश्चिद्धीर प्रत्यगात्मानमैच्छदावृत चक्षुरमृतत्वमिच्छन्नि" ति ॥ ३७ ॥

अनुवाद–यद्यपि समग्र प्रपञ्च मेंहीहु, कल्पित जो नामरूप उनको छोडकर सद्रूपसें सर्वत्र अनुगत मेंही हु, सच्चिदानन्दरूप में हु, तथापि विवेकपूर्वक-में जान सक्ता नहि, याने शास्त्रजनित जो "यह सकल प्रपञ्च मेंही हु", ऐसा ज्ञान सो मुझे (अपरोक्ष) हुवा नहिं, इससें में अविवेकीहु, कार्य और कारणका अभेद होनेसें कारणीभूत ब्रह्मसें कार्यभूत प्रपच अभिन्न है याने प्रपच सब स्वरूप भूतही है, 'यह सकल प्रपच आत्मस्वरूप है, यह सब ब्रह्मही है, यह सर्व आत्माही है, उसने ईक्षण किया की में बहुत स्वरूप होउ, प्रजारूपसें प्रकट होउ" इत्यादिक श्रुतिओंसें एक विज्ञानपूर्वक सर्व विज्ञानकी प्रतिज्ञा करनेसें प्रपच ब्रह्मसें अभिन्न है. ब्रह्मसूत्रमेंभी (२ १ १४) "आरम्भण शब्दादिकों के प्रयोगसें प्रपच ब्रह्माभिन्न है" ऐसा सिद्ध किया है जबकी मन्त्रगत "इव" शब्द उपमार्थक है तब ऐसा अर्थ होता है, "सकल प्रपच एक ब्रह्मस्वरूप है" यह जो अनुभवसिद्ध परोक्षज्ञान है वैसाही में हु. "यह सब मेंहीहु" ऐसा ज्ञान मुझे हुवा परतु सिद्धान्तभूत अनुभवसिद्ध सर्वात्मता जो है सो में नहि जानसक्ता याने शास्त्रजन्य परोक्षज्ञान होनेपरभी सार्वात्म्यका अपरोक्षानुभव हुवा नहिं

क्योंकी अविद्याकामकर्मादिकोंमें मजबूत बंधा हुवा हुं. और इसीलिये असंभावना विपरीतभावनाधीन बना हुवा विक्षिप्त चित्तसें में युक्त होकर संसारमें दुःखानुभव कर रहा हुं लेकिन सार्वात्म्य भावको में पाता नहिं, ऐसा (कोइ अधिकारी) खेद कर रहा है. यास्कनेंभी इसमंत्रको खेदसूचनाहीमें प्रतिपादित किया है. "में सकल प्रपंचसें अभिन्न होनेपरभी मेरे यथार्थ स्वरूपको अपरोक्ष अनुभव कर सक्ता नहिं" इत्यादि. बहिर्मुख चित्तवाले प्राणिको स्वरूपअज्ञानजनित दुःख उपनिषदोंमें सुनने में आता है " परमेश्वरने (मनःसहित) इन्द्रियाँ पराग्वृत्तिवाली निर्मितकी है जिससें लोक पराक् (बाह्य) पदार्थका अनुभव कर सक्ते है परंतु प्रत्यक्पदार्थ अन्तरात्माका ज्ञानसंपादन कर सक्ते नहिं" यह प्रत्यक्पदार्थ दुर्लभ होनेपर भी अन्तःकरण जिस समयमें प्रत्यक्पदार्थकी ही उपलब्धिमें प्रवणहोगा तब इस सर्वोत्मताप्रतिपादकउपनिषद्वाणीके लक्ष्यार्थभूत ब्रह्मपदको में प्राप्त कर सकुंगा. याने चित्तकी बहिर्मुखता-विषय लाम्पट्य छोडाकर दुर्घट जोकी अन्तर्मुखता है सो जिसकालमें हो सकेगी तबही स्वरूप साक्षात्कार विनाविलंबसें हो सकेगा। जैसें पर्वतके शिखरसें गिरनेवाला पथ्थर बिना बिलंबसें भूमिपर पहोंचता है तैंसेंही चित्तकी अन्तर्मुखता होनेकेबाद त्वरितही अपरोक्षानुभव हो सकेगा. "कोइ वीरपुरुष जन्म मरणसेरहित होनेको चाहता हुवा मन सहित इन्द्रियोंको विषयोंसें विमुख बनाकर आत्मसाक्षात्कार कर लेता है" ॥ ३७ ॥

२१. २ ३ २१ अपाङ्प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥३८॥

अमर्त्यः अमरणधर्मायमात्मा मर्त्येनमरणधर्मणा भूतात्मना देहेन सयोनिः, समानस्थानत्रयपरिच्छेदको देहोऽस्ति तत्रसर्वत्र सोऽयमपितिष्ठतित्यर्थ, यद्वा स समानोत्पत्तिः सहवासेन; स्वस्मिन्नुत्पत्तिरुपचर्यते, एवंभूतःसन् स्वधया अन्नोपलक्षिततद्भोगेनगृभीत, यद्वा स्वधाशब्देनान्नमयं शरीरं लक्ष्यते, तेनगृहीतः सन्नपाङेति अशुभंकर्मकृत्वाऽधोगच्छति, प्राङेति ऊर्ध्वं स्वर्गादिलोक प्राप्नोति, परमात्मैवसूक्ष्मशरीरोपाधिकःसन् नानाविधंकर्मकृत्वा तद्भोगाय जीवसंज्ञा लब्ध्वा शरीरत्रयेणसंबद्धो लोकान्तरेषुसंचरति। स्थूलसूक्ष्मोभयशरीरपरिग्रहेण लोके गुणत्रयान्वितःसन् परिभ्रमति, तथाचश्रूयते " गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता कृतस्य-

तस्थिवसचोपभोक्ता, सविश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः संचरतिस्वकर्मभिः" इति। इदानीमुभयप्राधान्येनाह ते तौ भूतात्मकर्त्रात्मानौ शश्वन्ता अविभागेन सर्वदावर्तमानौ, यद्वासूक्ष्मशरीरपक्षे सर्वदासहवासउपपद्यते, स्थूलशरीरपक्षेऽपि सात्विकजातेः तत्कारणाना भूतसूक्ष्माणा सद्भावात् तत्रशरीरसम्बन्ध उपपद्यते। विषूचीना इहलोके सर्वत्रगमनौ, वियन्तातत्फलोपभोगाय सर्वत्र लोकान्तरेषु गच्छन्त्यौवर्तेते, तत्रनराः अन्यंमूलात्मानं निचिक्युः नितरां विशेषेण पश्यन्ति जानन्ति, अन्यमपरं देहवच्छायातिरिक्तंननिचिक्युः न जानन्ति, केचन पामरा देहव्यतिरिक्तं न जानन्ति, केचन विवेकिनः कर्तृभोक्तृत्वोपेतो देहातिरिक्तः कश्चिदस्तीत्यनुमिमते, न केऽपि देहत्रयव्यतिरिक्तमात्मानं जानन्ति, अतोदुर्लभमात्मज्ञानमित्यर्थ.॥३८॥

अनुवाद—जन्ममरणादिकसें रहित यह आत्मा मरणधर्मवाले भौतिक देहकेसाथ समान निवासवाला हुवाहै- यानें देशकालवस्तुसें परिच्छिन्न देहमें अवस्थित होनेंसें स्वयमपि तादृशधर्मवान् प्रतीत होता है, अथवा देहके साथ सहवास करनेसें देहादिगत जन्ममरणादिकवान् उपचारसें (आत्मा) कहाजाताहै, ऐसा यह आत्मा तत्तद्भोगोंसें ग्रहीत होताहुवा अथवा "स्वधा" शब्दोपलक्षित अन्नमय शरीरसें ग्रहीत बनाहुवा अनुचित कर्म करके अधोगतिको प्राप्त होता है. योग्य कर्म करके ऊर्ध्वगति स्वर्गादि लोकको प्राप्त होता है, यानें परमात्मा स्वयंही सूक्ष्मशरीररूप उपाधिको स्वीकारकरनेके बाद अनेक तरहके कर्म करके उनकर्मोंके भोगके लिये "जीव" सज्ञाको धारण करता हुवा स्थूलसूक्ष्मकारण यह देहत्रयसें सबद्ध होकर लोकान्तरमें पर्यटन कर रहा है. और स्थूलसूक्ष्म दोनों शरीरका परिग्रह करके लोकमें सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण इनसें युक्त होकर परिभ्रमण कर रहाहै, श्रुतिमेंभी कहाहैकी "गुणत्रयके साथ वर्तमान होता हुवा और फल सहित कर्म करता हुवा और किये हुवे कर्मके फलोंकोभोगनेवाला वह जीवात्मा विश्वरूप होनेपरभी गुणत्रयाधीन बनकर प्राण और इन्द्रियादिकका अधिपति नियामक होनेपरभी तीनगुणके तीनतरहके मार्गपर अपने कर्मोंसें ससरणको पाताहै"। (अब जीवात्मा और परमात्माको उद्देश करके कहतें हैं) भूतात्मा (देह) कर्त्रात्मा (जीवात्मा) दोनों विनाविभागसें सर्वदा वर्तमान है. यानें एक रूपही है. अथवा सूक्ष्मशरीर पक्षमें हमेशा (दोनोका) सहवास उप-

पन्न होसक्ताहै, और स्थूलसूक्ष्मशरीरपक्षमेंभी सात्विक जातिका और उस (जाति) के कारणभूत सुक्ष्म भूतोंके सद्भाव (विद्यमानता) सें वहांरभी शरीर संबन्ध उपपन्न हो सक्ताहै. वह देह और जीवात्मा इसलोकमें सर्वत्र तत्तत्फलोप-भोगकेलिये गमनवाले बनतेहैं. उनमेंमें लोक देहको जान सकेंहैं. और जीवात्मा कीजो देहादिव्यतिरिक्त है उसको नहिं जानसक्ते. याने कोइ पामर लोक आत्माको देहातिरिक्त नहिं समझ सके किंतु देह यही आत्मा है ऐसा मान रहें है, कोइ विवेकीलोक कर्तृत्वभोक्तृत्वधर्मवान् आत्मा है और वह देहेन्द्रिया दिसंघातसें अतिरिक्त है ऐसा मानतें है, अनुमान करतेंहैं. लेकिन् कोइभी देह-त्रयकासाक्षी आत्मा है, और निर्लेपहै, कूटस्थ है, ऐसा अपरोक्षकरसक्ते नहिं. इस लिये आत्मज्ञान अत्यन्त दुर्लभहै ऐसा इस मन्त्रमें बतलायाहै. ॥३८॥

२२. २ ३ २१ ऋचोअक्षरे परमेव्योमन्यास्मिन्देवाअधिविश्वेनिषेदुः।

यस्तन्नवेद किमृचाकरिष्यति यइत्तद्विदुस्तइमे समासते॥३९॥

पूर्वमन्त्रे देहात्मजीवात्मानावुक्तौ तयोरन्यस्यजीवात्मनः पारमार्थिकंरूपंयद स्तितदत्रोच्यते-ऋचोअक्षरे, अत्रऋक्शब्देन ऋक्प्रधानभूताः सांगापरविद्यात्मका-श्चत्वारोवेदाउच्यन्ते, ऋगादीनामपरविद्यात्वंमुण्डकेश्रूयते (मु. २-४-५) "द्वे विद्ये वेदितव्ये" इतिप्रतिज्ञाय "तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद" इत्या-दिना. तस्याः सम्बन्धिन्यक्षरे अदृश्यादिगुणके क्षरणरहिते अनश्वरे नित्ये सर्वत्रव्यासे ब्रह्मणि, अक्षरशब्दस्य ब्रह्मवाचकत्वम् " एतद्वैतदक्षरस्यप्रशासनेगार्गि " यथातद-क्षरमधिगम्यते " येनाक्षरंपुरुषंवेदसत्य " मित्यादिश्रुतिप्रसिद्धम् (बृ ३-८-९) ऋगक्षरयोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावः सम्बन्ध सर्वैर्वेदैः खलु ब्रह्माधिगम्यते "तंत्वौप-निषद पुरुषं पृच्छामि " इत्यादि (बृ. ३-९-२६) श्रुतेः। ननूपनिषद्भागानातथास्तु इतरेषातुकथंब्रह्मविषयत्वमित्युच्यते—यद्यपीतरभागानायागादिविषयत्वं तथापिबुद्धि-शुद्ध्युत्पादनद्वारा वेदनसाधनत्वेन ब्रह्मविषयाभविष्यन्ति " तमेतंवेदानुवचनेन ब्राह्मणाविविदिषन्ति" इत्यादिश्रुते। तदेव विशेष्यते-परमेउत्कृष्टे निरतिशये व्योमन् व्योमनि व्योमसदृशे, अलेपत्वनीरूपत्वव्यापित्वादिसादृश्येन व्योमेत्युक्तम। यद्वा विशेषेणसर्वस्यरक्षके निरधिष्ठानोभ्रमः कस्यचिदस्ति साध्यस्तस्य सर्वस्याधिष्ठानत्वे-नाक्षकत्वाच्चादृशेतत्त्वे सर्वमध्यस्तमित्यर्थः। पुनस्तदेवविशेष्यते—यस्मिन्परमात्मनि

विश्वे सर्वे देवा अधिनिषेदुः निषीदन्ति आश्रित्यतिष्ठन्ति तस्मिन्, यद्वाउक्तलक्षणे वस्तुनि ऋगुपलक्षिताः सर्वेसाङ्गावेदाः पर्यवसिता इत्यर्थः, यः योमर्त्यः तच्चादृशं देवादीनां स्वरूपलाभास्पदंकृत्स्नैर्वेदैस्तात्पर्यं प्रतिपाद्यं यद्वस्तुनवेद नजानाति समर्त्यः ऋचापूर्वोक्तेमन्त्रगादिशब्दजालेन किंकरिष्यति, वेदनसाधनेन वेदेन वेद्यमविदित्वाकिंसाधयतीत्यर्थः प्रयोजनाभावात्सर्वस्यापिवेदस्यवैफल्यादितिभावः, अथवा योऽक्षरमविदित्वाकर्मणा कर्ताभवति यागादीननुतिष्ठति तेनकिञ्चिदपि कर्म कृतं नभवतीत्यर्थः। येइत् येएव तत्तत्त्वं विदुर्जानन्ति तइमे समासते तएवेमेज्ञातार समासते सम्यक्तिष्ठन्ति अपुनरावृत्त्यास्वस्वरूपेऽवस्थानं समासनम्, यद्वा येविदुरित् येजानन्त्येव नानुतिष्ठन्ति इच्छन्दोऽवधारणे, तइमे तएवसमासते गवामयनादिसहस्रसंवत्सरसत्रपर्यन्तानि सहोपयन्ति, सहार्थेसमशब्दः, सत्रादधिकाना यागानामभावात् तेषामपिफलमेतज्ज्ञानेनैवप्राप्तंभवतीत्यर्थः कर्तृणाबहुत्वाद्बहुवचननिर्देशः।

अपरे प्रकारान्तरेण प्रतिपादयन्ति-ऋचोऽक्षरे ऋगुपलक्षितसर्ववेदसम्बन्धिन्यक्षरे प्रणवरूपेॐकारे अविनाशिनि सर्ववेदेपुव्याप्तेवा, प्रणवस्यसर्ववेदसारत्वं ब्राह्मणेश्रूयते "तान्वेदानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयोवर्णाअजायन्ताकारउकारोमकारइति तानेकधासमभरत् तदेतदो३ मिती" ति। परमेनिरतिशये, नहि प्रणवादधिकंकिञ्चिन्मन्त्रजातमस्ति, त्रिकालातीतस्यब्रह्मणः प्रतिपादकत्वात् "यच्चान्य त्रिकालातीत तदप्योंकारएव"(मा० १-१) "ओमिति ब्रह्मेति"। वेदानाप्रणवस्यस्थान प्रतिनिधिभाव. सम्बन्ध. "यऋचोऽधीते" इत्याद्युपक्रम्य "यः प्रणवमधीते स सर्वमधीते ओमिति प्रतिपद्यते" 'एतद्वैयजुस्त्रयींविद्याप्रत्येषावागेतत्परमक्षर"मित्यादिश्रुतेः। यस्मिन्निश्वेसर्वेदेवा अधिनिषेदुः, प्रणवस्य सर्वमन्त्रात्मकत्वात् मन्त्रेषु सर्वदेवताना निवासात् सर्वदेवनिवासत्वम्, ब्रह्माधिष्ठानत्वाद्ब्रह्मणि सर्वदेवाना निवासात्, शिष्टमवशिष्टम्, अपरेत्वन्यथावर्णयन्ति ऋचः ऋगर्चनीयो जीव. तस्यसम्बन्धिन्यक्षरे अविनाशे व्याप्ते वा परमात्मनीत्यर्थः। अतएवजीवापेक्षयापरमे उत्कृष्टे निरुपाधिके व्योमन् विशेषेण सर्वाधिष्ठानत्वेन रक्षके व्योमसदृशे वा यस्मिन्परमात्मनि देवागमनवन्तो व्यवहरन्तो वा इन्द्रियसंज्ञका विश्वेसर्वेऽपि अधिनिषेदुः *निषदन्ति, आश्रित्यवर्तन्ते, यस्तन्नवेद, नजानाति,* उपाध्यंशपरित्यागेन तदेव स्वरूपमिति न पश्यति स्थूलेजनः किमृचा करिष्यति, केवलेन जीवभावेन

किंफलं प्राप्स्यतिजननमरणादिक्लेशस्यात्यागादितिभावः, यइत् तद्विदुस्तइत्यादि- सिद्धम् ॥ ३९ ॥

अनुवाद.—पूर्व मन्त्रमें भूतात्मा और जीवात्माका निरूपण किया, उनमेंसे जीवात्माका पारमार्थिक स्वरूप जोहै सो कहेतें है—ऋगादि वेदमें प्रतिपादित अतीन्द्रियत्वादिकधर्मवाले अविनाशि सर्वव्यापक समस्त विशेषोंसेरहित परम उत्कृष्ट आकाशवत् अलेपत्वनीरूपत्वादि धर्मवाले अथवा अच्छीतरहसें सबके रक्षण करनेवाले सकल प्रपञ्चके अधिष्ठानरूप जिस् परमेश्वरमें सकल देव आश्रित होकर वर्तमान है. यहां मूलमन्त्रमें " ऋक " शब्दसें ऋग्वेदादिक सकल वेद अङ्ग सहित उपलक्षित होतें है. मुण्डकोपनिषद्में ऋग्वेदादिक " अपरविद्या" शब्दसें कहे गये हैं–" दोविद्या अभ्यस्त करनी चाहिये परा और अपरा " ऐसा उपक्रम करके " इसमें " अपरविद्या ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद " इत्यादिकसें ऋग्वेदादिक सब अपरविद्या शब्द वाच्य है। और इस मन्त्रमें "अक्षर" शब्द ब्रह्मका वाचक है. याज्ञवल्क्य कहतें हैं की–"हेगार्गि इस अक्षरके प्रशासनमें (हुकुममें) सूर्यचन्द्र अधीन हो रहें है", (बृ० ३–८–९) और "वह परा विद्या है की जिससें उस अक्षर (ब्रह्म) की प्राप्ति होती है " " जिससें त्रिकालाबाधित जिस पुराण पुरुषरूप अक्षर (ब्रह्म) को (अधिकारी) जानता है" इत्यादि श्रुतिमें अक्षर शब्द ब्रह्मवाचक बतलाया है. ऋग्वेद और अक्षरका प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है "मैं (आपसें) उपनिषदसें (वेदसें) जाननेयोग्य पुरुषका स्वरूप पूछताहुं" इत्यादिक श्रुतिसें सिद्ध हैकी सर्व वेदोंसें परब्रह्महीका अधिगम होताहै. ननु (शंका) उपनिषद्भाग परब्रह्मका प्रतिपादक भलै हो लेकीन् इतर वेदभाग ब्रह्मविषयक नहि हो सक्ता ? (समाधान) यद्यपि इतरवेदभाग (कर्मकाण्डादिक) यज्ञादि विषयक है परतु वह निष्काम होनेसें अन्तःकरणको शुद्ध बनाकर ब्रह्म ज्ञानकी योग्यता संपादन करदेता है इसर्से वह (कर्मकाण्डादि) भाग भी ब्रह्म विषयक कहा जाता हैं, श्रुतिभी " ब्राह्मणलोक वेदप्रदर्शित प्रकारसें याने यज्ञदा- नादिकसें उस परमेश्वरको जाननेको चाहतें हैं." ऐसा कहती है. जिस परमेश्वरमें साङ्गवेद पर्यवसितहै याने जिस परमेश्वरके साक्षात्परंपरयावा प्रतिपादनहीमें परायण है, ऐसे परमात्मा की जिसके लाभसें ब्रह्मादिक देवभी स्वरूप लाभ मान रहें है और वेदोंका रहस्यरूप जो परमेश्वर है उसको नहि जाननेवाला किंवा जाननेके

लिये यत्नभी नहि करनेवाला मनुष्य ऋगादिक वेदवर्गसें क्या लाभ लेसकेगा याने ज्ञानसाधनभूत वेदसें ज्ञेयका ज्ञान प्राप्त न करके किस कार्यको वह (मनुष्य) सिद्ध करेगा, निष्प्रयोजन होनेसें उसके लिये तो वह वेद निष्फलही है. अथवा जो मनुष्य अक्षर ब्रह्म को न जानकर यागादिक कर्मका अनुष्ठान करता है वह (अखंड) फलको प्राप्त न होनेसें किसी कर्मका करनेवाला नहि हो सक्ता, याने किया हुवा कर्म स्वर्गादिफलदायक होनेपरभी अविनाशिपदप्रद न होनेसें परिश्रमरूपही है. और जो मनुष्य उस तत्त्वको यथार्थ जानतें हैं वे सम्यग् ज्ञानवाले होकर पुनरावृत्तिरहित जो स्वस्वरूप है उसमें अवस्थित (स्थिर) होजातें हैं. अथवा जो मनुष्य केवल जानतेंही है और अनुष्ठान नहि करतें वे स्वरूपलाभापन्न होनेसें यागादिकको विना किये उनके फलको पातें हैं. केइ पण्डित लोक इस मन्त्रका ऐसा व्याख्यान करतें हैकी ऋक् उपलक्षित सकल वेद का सम्बन्धि अक्षर अविनाशि अथवा व्यापक निरतिशय ऐसे जिस प्रणवमें समग्र देव आश्रित हैं "वह प्रजापति उन वेदोमें पर्यालोचनात्मक तपश्चरण करनें लगे. उनमेंसे अकार उकार और मकार यह तीन वर्ण प्रकट हुवे. उन तीनोंको सहोच्चारण करनेंसे "ॐ" ऐसा (प्रणवरूप) होता है" त्रिकालातीत परब्रह्मका प्रतिपादक होनेसें प्रणवाधिक कोइ मन्त्र हैं नहि. "जो कुछ कालत्रयातीत है वह सब प्रणवही है" "ॐ यह ब्रह्म है" इत्यादिक श्रुतिमें प्रणवको ब्रह्मस्वरूप प्रतिपादन किया है. वेद यह स्थान है और प्रणव परमेश्वरकी प्रतिमा कहा जाता है. "जो प्रणवका स्वाध्याय करता है सो सबका स्वाध्याय करनेके फलको पाता है" इत्यादिक श्रुतिसें प्रणव परब्रह्मरूपही है यही प्रणव सकल देवोंका निवासरूपभी है क्योंकी सकल मन्त्रात्मक प्रणव है और मन्त्रोंमें सकल देवका निवास है, इस लिये परंपरा संबन्धसें सर्व देवके निवासभूत यह प्रणव है. परब्रह्मसें अभिन्न होनेसें और समग्र देवोंका अधिष्ठान ब्रह्म होनेंसेभी यह प्रणव देवोंके निवासरूप है. दूसरे प्रण्डितलोक अन्यथा वर्णन करतें है.

ऋचासें प्रतिपादन करनें योग्य जो जीवात्मा उसके संबन्धी अक्षर याने अविनाशि अथवा व्यापक जीवकी अपेक्षासें उत्कृष्ट निरुपाधिक सर्वाधिष्ठान होनेंसे सर्वका रक्षक अथवा आकाशवत् असंगत्वनिर्लेपत्वादिधर्मयुक्त जिन परमेश्वरमें व्यवहार विषयक देवशब्दवाच्य समस्त इन्द्रियां आश्रय करके वर्त-

मानहैं. जो ऐसा जानता नहिं याने उपाधिरूप अंशका अनादर करके निरुपाधिक स्वरूपको यथार्थ जो नहिं समझ सक्ता सो स्थूलबुद्धिवाला मनुष्य केवल जीवभावसें व्यवहार करता हुवा ऋचासें क्या करसकेगा- किस् फलको पावेगा ? क्योंकी यथार्थ अपरोक्ष ज्ञानके विना जन्ममरणादिक क्लेशोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो सक्ती नहिं और उसके सिवाय निरतिशय सुखभी पायाजाता नहिं, तो जो ऋगादिकका पठनपाठन जन्मादिक्लेशका निवर्तक नहि होसक्ता सो खाली परिश्रम रूपहै, ऐसा कहागया ॥ ३९ ॥

२३. २ ३ २३ इन्द्रंमित्रंवरुणमग्निमाहुरथोदिव्यः ससुपर्णोगरुत्मान्।
एकं सद्विप्राबहुधावदन्त्यग्निंयमंमातरिश्वानमाहुः ॥४६॥

अमुमादित्यमैश्वर्यविशिष्टमिन्द्रमाहुः, तथामित्रं प्रमीतेर्मरणान्त्रातारमहरभिमानिनमेतन्नामकं देवमाहुः, वरुणंपापस्यनिवारकं रात्र्यभिमानिनं देवमाहुः, तथाग्नि मङ्गनादिगुणविशिष्ट मेतन्नामकमाहुः, अथो अविचार्यमेव दिव्यो दिविभवः सुपर्णः सुपतनोगरुत्मान् गरणवान् पक्षवान् वैतन्नामकोयः पक्ष्यस्ति सोऽप्ययमेव, कथमेकस्य नानात्वमिति उच्यते-अमुमेवादित्यमेकमेव वस्तुतः सन्तं विप्रामेधाविनः देवतातत्त्वविदो बहुधावदन्ति, तत्तत्कारणेनेन्द्राद्यात्मानं वदन्ति "एकैववा महानात्मा देवता ससूर्य इत्याचक्षते" इत्युक्तत्वात्, किञ्च तमेव वृष्ट्यादिकारणं वैद्युताग्निं यमं नियन्तारं मातरिश्वान मन्तरिक्षेश्वसन्तंवायुमाहुः सूर्यस्य ब्रह्मणोऽ नन्यत्वेन सार्वात्म्यमुक्तंभवति ॥ ४६ ॥

अनुवाद-इस् आदित्य शब्दके लक्ष्यार्थभूत परमेश्वरको समस्त ऐश्वर्य विशिष्ट " इन्द्र " ऐसा विद्वान् लोक कहतेहै. और इसी परमेश्वरको मरणसें बचानेवाला दिवसाभिमानी " मित्र " नामकदेव कहतेहैं. और इसीपरमात्माको पापोंका निवारक रात्र्यभिमानी देव " वरुण " ऐसा कहतेहै. और इसी परमेश्वरहीको गमनादिगुणविशिष्ट " अग्नि " देव ऐसाभी कहतेहै. दिव्यस्वरूप सुंदर पक्षवाला उत्तमगतिवाला अथवा " सुपर्ण " ऐसा नामवाला जो कोइ पक्षी है सोभी यह परमेश्वर हीहै. ननु (शंका) परमात्मा एक होनेपरभी नाना (अनेक) रूपवाला कैसे कहाजाताहै ? (समाधान) आदित्य शब्दके लक्ष्यार्थ भूत इसी परमेश्वरको वास्तविक एक होनेपरभी देवतातत्त्वको जाननेवाले पण्डित-

लोक "नाना" (अनेकरूपवाला.) कहतेहैं. यानें तत्तत्कार्यका स्वयं कारणरूप होनेसे इसी परमात्माहीको इन्द्रादि स्वरूप कहतेहै. अन्यस्थलमें कहाहैकी "यह आत्मा महान् है और एकही देवताहै तथापि इसको (कार्यकारणके अभेदहोनेसे) सूर्य, अग्नि, वरुण, इत्यादि रूपात्मक कहतेहै" और इसी परमात्माको वृष्ट्यादिकका कारणभूत "वैद्युताग्नि" (बीजली) ऐसा कहतेहै. सकल विश्वका नियन्ता अन्तरिक्षमें विहार करनेवाला "महावायु" भी इसी परमात्माको कहतेहैं. इसमन्त्रमें आदित्यकी ब्रह्मसें अभिन्नता बताकर लक्ष्यार्थरूपसें सर्वात्मता बतलाइहै ॥ ४६ ॥

२४. ३, २ १ ॐम् इन्द्रत्वावृषभंवयंसुतेसोमेहवामहे।

सपाहि मध्वो अन्धसः ९.॥

इदं सर्वं जगत्साक्षाद्दर्शयतीतीन्द्रः तत्संबुद्धौ हे इन्द्र! वृषभं कामानां वर्षकं त्वाम् सुते ग्रावभिरभिषुते सोमे वयं हवामहे, सोमपानार्थमाह्वयामः सत्वं मध्वः मदकरमन्धसः अन्नलक्षणं सोमं पाहि पिब.. अथवा इदं ब्रह्म साक्षात्पश्यतीतीन्द्रः तत्सम्बुद्धौ हे इन्द्र ! ॥१॥

अनुवाद—इस सकल प्रपञ्चको साक्षात् (हस्तामलकवत्) बतलानेवाले; यानें अधिष्ठानसाक्षात्कार कराके उस (अधिष्ठानमें कल्पित नामरूपात्मक प्रपंचका मिथ्यात्व यथार्थ अनुभव करानेवाले अथवा इस प्रपंचको (कार्यकारणके अभेदद्वारा) ब्रह्मस्वरूप समझनेसें सम्यग् ज्ञानवाले हे इन्द्र ! (इन्द्र शब्दके लक्ष्यार्थ भूत हे उत्तमाधिकार संपन्न !) आपको आत्मसुख (निजानन्द) रूप अलभ्य लाभदायक समझके (इस यज्ञमें) पत्थरसें सिद्धकिये हुवे सोमरसके पानके लिये निमन्त्रित करतेहैं. (इस निष्कामयज्ञसें अन्तःकरणकी शुद्धि होनेपर आपके यहां आगमनसें सोमरससें आपका सत्काररूप शुश्रूषण करके हम ज्ञान संपादन करें) वह आप मदवाले यानें अहंताममतादि धर्मोंसें व्याप्त सोमशब्दित अन्नोपलक्षित इस देहको यानें आत्मामें अविद्याद्वारा अध्यस्त इस देहेन्द्रियादि संघातको उपभोग (स्वीकार) करें. अर्थात् आवरणको हटाकर कल्पित पदार्थोंका बाधपूर्वक स्वरूप लाभका अधिकारी हम को आप बनावें. इस मन्त्रमें प्रयुक्त इन्द्र शब्दका विशेष विशदीकरण ऐतरेयोपनिषद (१-३-१४) में किया है उसी अभिप्रायसें यहां लक्ष्यरूप अर्थ गृहीत किया है. ॥ १ ॥

२५. ३ ४।१० तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १० ॥

यः सवितादेवोनोऽस्माकंधियः कर्माणि धर्मादिविषयावाबुद्धीः प्रचोदयात् प्रेरयेत् तत्तस्य सर्वासु श्रुतिषु प्रसिद्धस्य देवस्य द्योतमानस्य सवितुः सर्वान्तर्यामितया प्रेरकस्य जगत्स्रष्टुः परमेश्वरस्य आत्मभूतं वरेण्यं सर्वैरुपास्यतया ज्ञेयतया च संभजनीयं भर्गः अविद्यातत्कार्ययोर्भर्जनाद्भर्गः स्वयंज्योतिः परब्रह्मात्मकं तेजोधीमहि "तद्योऽहंसोऽसौ योऽसौ सोऽहमिति" वयंध्यायेम। यद्वा तदिति भर्गोविशेषणम्, सवितुर्देवस्य तत्तादृशं भर्गोधीमहि " किंतदित्यपेक्षायामाह—यइतिलिङ्गव्यत्ययः, यद्भर्गोधियः प्रचोदयादिति तद्ध्यायेमेति समन्वयः । यद्वा तदिति भर्गोविशेषणं, सवितु र्देवस्य तत्तादृशं भर्गो धीमहि किंतदपेक्षायामाह यद्भर्गोधियः प्रचोदयात् इति तद्ध्यायेमेति समन्वयः, यद्वा यः सवितासूर्यः धियः कर्माणि प्रचोदयात् प्रेरयति, तस्य सवितुः सर्वस्यप्रसवितुर्देवस्यद्यो-तमानस्य सूर्यस्य तत्सर्वैर्दृश्यमानतया प्रसिद्धं वरेण्यं सर्वैः संभजनीयंभर्गः पापानांतापकं तेजोमण्डलं धीमहि ध्येयतया मनसा धारयेम । यद्वा "भर्गः" शब्देनान्नमभिधीयते, य सवितादेवोधियः प्रचोदयति, तस्यप्रसादाद्भर्गोऽन्नादिलक्षणंफलंधीमहि धारयामः तस्याधारभूता भवेमेत्यर्थः

अस्यमन्त्रस्य शाङ्करभाष्यम्। अथ सर्वदेवात्मनः सर्वशक्तेः सर्वावभासकतेजोमयस्यपरमात्मनः सर्वात्मकत्वद्योतनार्थं सर्वात्मकत्वप्रतिपादकगायत्री महामन्त्रस्योपासनप्रकारः प्रकाश्यते—तत्र गायत्रीप्रणवादिसप्तव्याहृत्युपेता शिरःसमेता सर्ववेदसारमितिवदन्ति । एवंविशिष्टा गायत्री प्राणायामैरुपास्या, सप्रणवव्याहृतित्रयोपेता प्रणवान्ता गायत्री जपादिभिरुपास्या, तत्रशुद्धगायत्री प्रत्यग्ब्रह्मैक्यबोधिका धियोयोनः प्रचोदयादिति, नोऽस्माकंविशेषबुद्धीः यः प्रचोदयात् प्रेरयेत् इति सर्वबुद्धिसंज्ञान्तःकरणप्रकाशकः सर्वसाक्षी प्रत्यगात्मेत्युच्यते, तस्य प्रचोदयाच्छब्दनिर्दिष्टस्यात्मनः स्वरूपभूतंपरंब्रह्म तत्सवितुरित्यादिपदैर्निर्दिश्यते, तत्र ओंतत्सदितिनिर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः इति तच्छब्देन प्रत्यग्भूतं स्वतः सिद्धं परंब्रह्मोच्यते, सवितुरिति सृष्टिस्थितिलयलक्षणकस्य सर्वप्रपञ्चस्य समस्तद्वैतविभ्रमस्याधिष्ठानं लक्ष्यते । वरेण्यमिति सर्ववरणीयं निरतिशयानन्दरूपम्।

र्भगइत्यादिद्योपभर्जनात्मकज्ञानैकविषयत्वम् । देवस्येति सर्वद्योतनात्मकाखण्डचिदेकरसम् । "सवितुर्देवस्य" इत्यत्र षष्ठ्यर्थो राहोः शिर इतिवदौपचारिकः, बुद्ध्यादिसर्वदृश्यसाक्षिलक्षणं यन्मेस्वरूपं तत्सर्वाधिष्ठानभूतं परमानन्दं निरस्तसमस्तानर्थरूपं स्वप्रकाशचिदात्मकं ब्रह्मेत्येवंधीमहिध्यायेम । एवंमति सइ ब्रह्मणा स्वाविवर्तजडप्रपञ्चेन रज्जुसर्पन्यायेनापवादसामानाधिकरण्यरूपमेकत्वं सोऽहमितिन्यायेन सर्वसाक्षिप्रत्यगात्मनो ब्रह्मणासह तादात्म्यरूपमेकत्वं भवतीति सर्वात्मकब्रह्मबोधकोयं गायत्रीमन्त्रः संपद्यते । सप्तव्याहृतीनामयमर्थः—भूरिति सन्मात्रमुच्यते, भुव इति सर्वं भावयति प्रकाशयतीति व्युत्पत्त्या चिद्रूपमुच्यते, सुव्रियत इति व्युत्पत्त्या स्वरिति सुष्ठुसर्वैर्व्रियमाणसुखस्वरूपमुच्यते। महइति महीयते पूज्यतइति व्युत्पत्त्या सर्वातिशयत्वमुच्यते। जनइति जनयतीतिजनः सकलकारणत्वमुच्यते। तपइति सर्वतेजोरूपत्वम्। सत्यमिति सर्वबाधरहितम्। एतदुक्तम्भवति—सप्तलोकेसद्रूपतदोंकारवाच्यब्रह्मैव, आत्मनोऽस्य सच्चिद्रूपस्यपावादिरि। अथ भूरादयः सर्वेलोका ओंकारवाच्यब्रह्मात्मकाः न तद्व्यतिरिक्तं किंचिदस्तीति। व्याहृतयोऽपि सर्वात्मकब्रह्मबोधिकाः, गायत्रीशिरसोऽप्ययमेवार्थः—आपइत्याप्नोतीतिव्युत्पत्त्या व्यापित्वमुच्यते. ज्योतिरितिप्रकाशरूपत्वम्, रसइतिसर्वातिशयत्वम्, अमृतमिति मरणादिसंसारनिर्मुक्तत्वम्, सर्वव्यापिसर्वप्रकाशकसर्वोत्कृष्टनित्यमुक्तमात्मरूपं सच्चिदानन्दात्मकं यदोंकारवाच्यं ब्रह्म तदहमस्मीति गायत्रीमन्त्रस्यार्थः। गुहाशयगमकुताशनोऽहं कर्त्रैदमंशाख्यप्रहविहुंसत्॥ विलीयतेनेदमहंभवानितिप्रकारस्तुविनिश्चितेऽत्र। यदस्ति यद्भाति तदात्मरूपं नान्यत्ततोभातिनचान्यदस्ति॥ स्वभावसंवित्प्रतिभाति केवला ग्राह्यंग्रहीतेतिमृषैवकल्पना ॥१०॥ इतिश्रीमच्छंकरभगवत्‍कृतौ गायत्रीभाष्यं समाप्तम् ॥ ॐ तत्सत् ॥

अनुवाद—जो सविता देव हमारे कर्मोंको अथवा धर्म अर्थ काम और मोक्षविषयक बुद्धिको प्रेरणा करताहै, सकल श्रुतियोंमें प्रसिद्ध सर्वान्तर्यामि होनेसे नियन्ता, सचराचरविश्वकी सृष्टि करनेवाले देदीप्यमान परमेश्वरका आत्मभूत और सबोंका उपास्य और ज्ञेय होनेसे मननीय भजन करने योग्य, अज्ञान और तत्कार्यकानिवर्तक स्वयंज्योतिः परब्रह्मात्मक तेजको हम (लोक) ध्यानकरतेहैं, यानें "जो वह तेज हैसो मैं हुं, और जो मैं हुं सो वह तेज है" ऐसा अभेद चिन्तन करतेहैं. अथवा देदीप्यमान उस् सविता देवका वैसा तेजका

हम ध्यान करतेहैंकी जो तेज हमारी बुद्धिको धर्मार्थकाम और मोक्षमें तत्पर करे. अथवा जो सवितादेव बुद्धिको सुकृत के तरफ प्रेरणा करतेहैं, समस्त लोकोंका अपरोक्ष, और सर्वका भजनीय, पापोंको दूर करनेवाला, जगत्के उत्पादक श्री सूर्यके तेजोमण्डलका हमलोक चिन्तन करतेहैं. अथवा जो सवितादेव बुद्धिको प्रेरणा करताहै, उसकी कृपासें अन्नादिरूप भोगोंको हमलोक प्राप्त होतेहैं.

इसमन्त्रका शाङ्करभाष्य—अब सर्वदेवात्मक सर्व शक्तिमान् समप्रविषयोंका अस्ति भाति और प्रियरूपसे प्रकाशकरनेवाला तेजोमय परमेश्वरकी सर्वस्वरूपता द्योतनकरनेकेलिये सर्वात्मकताप्रतिपादक " गायत्री " महान् मन्त्रका उपासनाप्रकार प्रकाशित करतेहै—सकलवेदोंमें प्रणवादिक सप्तव्याहृति और "आपोज्योति" इत्यादि शिरःसहित केवल गायत्रीहीको सर्व वेदका साररूप विद्वान्लोक कहतेहैं, यानें शिरःसहित ॐकारपूर्वक व्याहृतिसप्तकसमेत गायत्रीमन्त्रही सिर्फ वेदोंमें सारभूतहै, इसलिये वह उपास्यहै. यह शुद्ध गायत्री प्रत्यग्ब्रह्मका बोध करानेवालीहै. (धियो योनः प्रचोदयात्) " हमारी बुद्धिको जो देव प्रेरणा करें " ऐसा कहनेसें सकलबुद्धिसंज्ञक अन्तःकरणका प्रकाशकरनेवाला सर्वका साक्षी प्रत्यगात्मा उपलक्षित होताहै। " प्रचोदयात् " शब्दनिर्दिष्ट जो आत्माका स्वरूप परब्रह्म सो " तत्सवितुः" इत्यादिशब्दोंसे उपलक्षित होताहै. इसमें " तत् " शब्दसें प्रत्यग्भूत स्वतःसिद्ध परब्रह्म अवगत होताहै. श्रीमद्भगवद्गीतामें कहाहैकी " ॐ तत्सत् " यह परब्रह्मका निर्देशहै, और वह त्रिप्रकारका है. " सवितुः " इस पदसें उत्पत्तिस्थितिप्रलयवान् समग्रप्रपञ्चात्मक द्वैत भ्रमका अधिष्ठान उपलक्षित होताहै. " वरेण्यम् " इस पदसें सर्वोको प्राप्तकरनें योग्य निर्विशेष आनन्द स्वरूप उपलक्षित होताहै. " भर्ग " इस पदसें अविद्यातत्कार्यका निवर्तक ज्ञानस्वरूप उपलक्षित होताहै. " देवस्य " इस पदसें सर्वका प्रकाशकरनेवाला एकरस अखण्ड चैतन्य उपलक्षित होताहै. यद्यपि इस मन्त्रमें " सविता देवका सर्वप्रकाशक तेज " ऐसा कहनेसे सवितासें तेजकी भिन्नता उपलब्ध होतीहै, क्योंकी जैसें " देवदत्तका कम्बल " ऐसा कहनेसे संबन्धप्रत्यायक षष्ठीविभक्ति के द्वारा देवदत्त और कम्बलका भेद स्फुट पाया जाताहै, वैसेंही " सविता देवका तेज" ऐसा कहनेसेभी षष्ठीविभक्तिद्वारा भेदकी प्रतीति होनेसें यह मन्त्र भेदबोधक याने द्वैतप्रतिपादक हुवा ऐसा भ्रम होताहै, तथापि

यह षष्ठीविभक्तिका प्रयोग लौकिकव्यवहारानुसारसें कियाहै, नहिंकी पारमार्थिक भेद प्रतिपादन करनेंको, जैसे लोक कहतेंहैंकी "राहुका मस्तक" पुरुषका चैतन्य "शिलाका शरीर" राहु स्वयं मस्तकरूपहीहै। क्योंकी एक अपराधी असुरका, विष्णुने जब शिरश्छेद किया तब मस्तकका नाम राहु हुवा और कबन्ध (धड) का नाम केतु हुवा, जबकी मस्तकही राहुहै तब राहुका मस्तक कैसे हो सक्ता? तथापि लोक "राहुका मस्तक ऐसा कहा करतेंहै. याने राहु और मस्तकमें भेद न होने परभी बलात् भेद कल्पित करके व्यवहार होताहै. और जैसे "पुरुषका चैतन्य" पुरुष और चैतन्य भिन्न नहोनेपरभी कल्पित भेदसें व्यवहार होताहै; "शिलाकाशरीर" इसमेंभी शिला यही शरीराकारहै, शिला अन्य पदार्थ और शरीर अन्य पदार्थ ऐसा है नहिं तथापि औपचारिक भेदसें व्यवहार होताहै. तैसें ही "सविता देवका तेज" ऐसा भेद अवास्तविक (कल्पित) है, याने अधिष्ठानात्मक परब्रह्म स्वयं तेजःस्वरूपही है, तथापि भेददृष्टिवाले लोकोंको बोध करानेके लियें भेदसें मात्र व्यवहार कियाहै, याने औपचारिक (कल्पित) भेदसें वास्तविक अद्वैत बाधित हो सक्ता नहिं. (प्रकृत प्रसंग कहतेंहै) "देहादिबुद्धिपर्यन्त सकलदृश्यका साक्षी मैं समग्र कल्पितप्रपंचका अधिष्ठान समस्त अनर्थरहित स्वप्रकाश परमानन्द चैतन्यात्मक परब्रह्महीहु" ऐसा ध्यान करतेंहैं. "सकल प्रपंचका अधिष्ठान परब्रह्म मैंहीहु." ऐसा कहनेंसें ब्रह्मके साथ स्व (ब्रह्मका) विवर्त जडप्रपंचका बाधसामानाधिकरण्यरूप एकत्व सिद्ध होताहै. जैसें रज्जुरूप अधिष्ठानका सर्पकेसाथ अविद्याद्वारा एकत्वहै तैसेंही परब्रह्मका प्रपंचकेसाथ अज्ञानद्वारा अभेदहै. और जैसें "वहीयह देवदत्तहै" इस वाक्यमें देशकालादिक उपाधिका त्याग करके शुद्ध देवदत्तरूप देहेन्द्रियादिसंघातात्मक व्यक्तिका बोध होताहै तैसेंही सर्वज्ञत्व सर्वशक्तिमत्वादिक ईशधर्म और अल्पज्ञतासुखित्वदुःखित्वादिक जीवधर्मका बाध करके "मैं प्रत्यगभिन्न निरतिशयानन्द चिदेकरस हु" ऐसा चिन्तन करनेंसें ब्रह्मात्मैक्य सिद्ध होताहै. "उस ऐक्यको बतलानेवाला यह गायत्रीमन्त्र होनेसें" सर्वात्मकताप्रतिपादक यह मन्त्रहै ऐसा कहाजाताहै. सात व्याहृतीयोंका यह अर्थहै–

"भूः" इस शब्दसें सन्मात्र यानें केवल सद्रूप कहाजाताहै.

"भुवः" इस शब्दसें सबको प्रकाशनेवाला शुद्ध चैतन्य कहाजाताहै.

" स्वः " इस शब्दसे सर्वको परमइष्ट निरतिशय सुखस्वरूप कहाजाताहै.

" महः " इस शब्दसे परमपूज्यत्वरूप अर्थ प्रतीतहोकर सर्वोत्कृष्ट पदार्थ कहाजाताहै.

" जनः " इस शब्दसे सर्वका उत्पादक यानें परमकारणरूप अर्थ कहाजाताहै.

" तपः " इस शब्दसे देदीप्यमानता याने नित्य तेजस्वितारूप अर्थ कहाजाताहै.

" सत्यम् " इस शद्बसे समग्रबाधरहित और निखिलबाधका अवधिरूप अर्थ कहाजाताहै.

इससें यह समझना चाहियेकी जो कुछ लोकमें सद्रूप है सो ओंकारका वाच्य ब्रह्महीहै. और जीवब्रह्मकी एकता प्रतिपादित होनेसें यह जीवात्माभी ब्रह्मरूप याने सच्चिदानन्द रूपहै. और यह " भू " आदि लोक (सप्तक) हैं सोभी ॐकारवाच्य परब्रह्मात्मकहीहै, उस (ब्रह्म) सें भिन्न नहि हैं. सकल व्याहृतियाँभी सर्वात्मकब्रह्मकी बोधकहैं. गायत्रीके शिरः " आपोज्योतिः " इत्यादिककाभी यही अर्थ होताहै— " आपः " कहनेसें व्यापक पदार्थ कहाजाता है, आकाशकोभी लोक व्यापक कहतेहै. इससें अतिव्याप्तिके परिहारार्थ कहतें हैंकी " ज्योतिः " सकल जडवर्गका प्रकाशक, याने आकाश स्वयं यथाकथंचि-व्यापकहोनेपरभी प्रकाशक न होनेसें वह इसमन्त्रका लक्ष्य (उपास्य) नहि है. " रसः " कहनेसें सर्वातिशयतारूप अर्थ प्रकट करतेहैं. " अमृतम् " कहनेसें जन्ममरणादिसंसारसें निर्मुक्त कहाजाताहै. इस मन्त्रका समुदित अर्थ ऐसा होता है " सर्वव्यापक, सर्वप्रकाशक, सर्वोत्कृष्ट, नित्यमुक्त, सच्चिदानन्दात्मक ॐकारवाच्य परब्रह्म परमात्मा सो में हीहुं ". गुहागत पदार्थ जैसे गुप्त होताहै तैसें यह ब्रह्मस्वरूपभी अज्ञलोकोंसें गुप्त है इसलिये गुहागत इस ब्रह्मरूप हुताशन (अग्नि) में इस सचराचर प्रपंचका होम (विलय) करके यानें कल्पित भेदोंका बाधपूर्वक, अधिष्ठानसाक्षात्कारद्वारा में (जीवात्मा) स्व (परब्रह्म) स्वरूपसें, अभिन्न याने तद्रूप हो जाउं, जो नित्य, चैतन्य है और स्वयं प्रकाशितहोकर जडवर्गको प्रकाशित करताहै सो आत्मस्वरूपहीहै. उस (आत्मस्वरूप)को छोडकर अन्य पदार्थ हैभी नहि और प्रकाशकरसकाभी नहि. नित्य ज्ञानरूप चित्कला, की जो सद्रूपेण सर्वत्र अनुस्यूत है, वही यथार्थहै. और जो "भावगृहीता" इत्यादिक

कल्पनाहै सो इस व्यवहारान्तर्गतहोनेमे मिथ्याहै. इतिश्रीमच्छङ्कराचार्य भगवान्का गायत्री भाष्यका अनुवाद संपूर्ण ॥ १० ॥

१६. ३ ५ २५ अयंपन्थाअनुवित्तःपुराणोयतोदेवाउदजायन्तविश्वे।
अतश्चिदाजनिषीष्टप्रवृद्धोमामातरममुयापत्तवेकः ॥ १ ॥

गर्भस्थो ज्ञानसंपन्नो वामदेवो महामुनिः मसिचकेनजोययोनिदे
शात्तुमातृतः ॥ १ ॥
किंतुपार्श्वादितश्चेतिज्ञात्वानुजननीविदम् दध्यौशांत्यैशचीदेवी
मदितिं त्विन्द्रमातरम् ॥ २ ॥
अदितिस्त्विन्द्रसहिता, गर्भिणीमभ्यगाद्वने अदितीन्द्रवामदेवाः
संवादमथचक्रिरे ॥ ३ ॥
इत्याद्युक्तत्वात्तेषांसंवादभूता इमा ऋचः—

पुराणः अनादिः अयंप्रत्यक्षेणोपलभ्यमानः पन्था योनिनिर्गमनरूपोमार्गः अनु आनुपूर्व्येण वित्तः सर्वैर्जायमानैर्लब्धः, यतो यस्मात्योनिमार्गात् विश्वेसर्वेदेवाउदजायन्त उत्कर्षेणोत्पन्ना भवन्ति तस्माद्योनिमार्गान्मनुष्याउत्पन्ना भवन्तीति किमुवक्तव्यम्, अतश्चिदस्माद्योनिमार्गादेवप्रवृद्धः गर्भप्रकर्षेण वृद्धिंगतो वामदेवः आजनिषीष्ट आसमन्ताज्जायतां अमुयाअमुंमातरंपत्तवेपतनाय मरणायइत्यर्थः माकः माकरोतु ॥ १ ॥

अनुवाद—वेदान्तसिद्धान्तमें पूर्ण अपरोक्ष अनुभव करनेवाले जैसे वसिष्ठव्यासादिकहैं तैसे एक "वामदेव" भीहैं, जिनोंनें गर्भमें स्थिति होनेपरभी ज्ञान संपादनकरके अपना सार्वात्म्यभाव "अहंमनुरभवंसूर्यश्च" इत्यादिकमन्त्रोंमें बतलायाहै, उन् वामदेवकी संक्षिप्त कथा कहतेहैं, "गर्भमें रहनेवाले वामदेव महामुनि ज्ञान संपादनकरके "माताके योनि प्रदेशसें में बहार नहि निकलुंगा किंतु पार्श्वभाग (कुक्षि) का विदारण करके में बहार आउंगा" ऐसा विचार करने लगे, जब माता "शची" नें इस विचारको समझकर अपनें दुःखको दूर करनेंकेलिये इन्द्रकी माता आदितिका ध्यान कीया तब अदितिभी अपनें पुत्र इन्द्रको साथलेकर उस जंगलमें आपहुंची की जहां सगर्भा "शची" शोकातुर होकर बैठीथी, वहांपर आकर आदिति इन्द्र वामदेव परस्पर प्रश्नोत्तरात्मक संवाद करनेंलगे, ऐसी आख्यायिका है वह ऋचायें कहते हैं.

यह योनिद्वारा-बहार आनेका प्रत्यक्ष उपलब्ध होनेवाला जो अनादि मार्ग है उसी मार्गसें सब देव भी बहार आते है तो मनुष्योंके लिये क्याकहना! इसलिये वृद्धिको पायेमये अथवा ज्ञानीबनेहुवेभी वामदेव इसी योनिमार्गहीसें बहार निकर्से जिससें बिचारी इस माताके मरणमें निमित्त (स्वयं) न बनें ॥१॥

२७. ३ ५ २५ नाहमतोनिरयादुर्गहैतत्तिरश्चतापार्श्वान्निर्गमाणि ।

बहूनिमेअकृताकर्त्वानियुध्यैत्वेनसंत्वेनपृच्छै ॥ २ ॥

वामदेव एवमुक्तवन्तमिन्द्रं प्रत्याह–अहमतो योनिमार्गात्र निरय न निरयाणि ननिर्गच्छानि, एतद्योनिनिर्गमनरूपंवर्त्म दुर्गहा दुर्गहं दुःखेन प्राप्यं नमाप्यं भवतीत्यर्थः, किंतु तिरश्चता तिरश्चीनादपार्श्वान्निर्गमानि निर्गच्छानि, योनिदेशादनिर्गतोहं पार्श्वभित्वा निर्गच्छानीत्यर्थः, अन्यैरकृतमिदमेवनकेवलंमयाक्रियते किन्तु अन्यैरकृता अकृतानि बहूनिकर्माणि मे कर्त्वानि कर्तव्यानिसन्ति त्वेन एकेनसपत्नेन विवदमानेन सहयुध्यै युद्धंकरवाणि. त्वेन एकेनवुभुत्सुना संपृच्छै सम्यक् पृच्छानि ॥ २ ॥

अनुवाद–पूर्वोक्त प्रकारसें कहनेवाले इन्द्रदेवको वामदेव उत्तर कहनें लगे–में इस योनिमार्गकेद्वारा बहार निकलुंगा नहिं, क्योंकी योनिनिर्गमनरूप यह मार्ग दुर्गमहै दुःखदहै, परंतु तिर्यग्भाग याने पार्श्वदेशको विदारणकरके बहार निकलुंगा. अनन्य साधारण यानें दूसरोंसे नहि होनेवाले इस एकही कार्य को में करताहुं ऐसा नहिं किंतु औरभी वैसे कार्य मुझे बहुत कर्तव्यहैं. जैसे एक सपत्न (प्रतिपक्षी) वादीके साथ में वादात्मक युद्ध करुंगा और एक ज्ञातासें-भीमें (अनन्य साधारण) प्रश्न पुछुंगा. ॥ २ ॥

२८. ३ ५ २५ परायतींमातरमन्वचष्टनानुगान्यनुगमानि ।

त्वष्टुर्गृहेअपिबत्सोममिन्द्रःशतधन्यंचम्वोःसुतस्य ॥३॥

मयिगर्भस्थेसति इन्द्रः मदीयांमातरंपरायतीं परेतांम्रियमाणामन्वचष्ट अन्वब्रवीत्, एवमपीदानीं गर्भस्थितोहं पुराणंपन्थानं नानुगानि नानुगच्छानीति न किंतु क्षिप्रमनुगमानि अनुगच्छान्येव ॥ ३ ॥

अनुवाद-इन्द्र जब मेरे तिर्यग्गमनसें माताके मरणकी सूचना करतेहैं तो गर्भस्थित में प्राचीनमार्ग योनिद्वारा निर्गमनको क्या नहिं अनुसरुंगा? किंतु अवश्य सत्वर अनुसरण करताहुं, यानें मेरी माताके मरणमें में निमित्त नहिं होउंगा. ॥ ३ ॥

२९. ३ ६ १५ अहंमनुरभवं सूर्यश्चाहंकक्षीवाँऋषिरस्मिविप्रः ।
अहंकुत्समार्जुनेयन्यृञ्जेहंकविरुशनापश्यतामा ॥ १ ॥

इदमादिमन्त्रत्रये अयंगर्भेवसन्वामदेव. उत्पन्नतत्त्वज्ञानः सन् सार्वात्म्यं स्वानुभवं मन्वादिरूपेण प्रदर्शयन्नाह-अहंवामदेव. मनुरभवं सर्वस्य मन्ता प्रजापति रस्मि, अहमेव सूर्यश्च सर्वस्यप्रेरक सविताचास्मि, विप्रो मेधावी कक्षीवान्दीर्घतमसः पुत्रः एतत्संज्ञक ऋषिरप्यहमेवास्मि, आर्जुनेयं आर्जुन्या. पुत्रः कुत्समेतन्नामक ऋषिमहमेवन्यृञ्जे नितरा. प्रसाधयामि, कवि क्रान्तदर्शी उशना एतदाख्य ऋषि रहमेवास्मि, उक्त मुपलक्षणं, परमार्थदृष्ट्या कृत्स्नमप्यहमेवास्मीत्यर्थ. । हेजनाः मा सर्वात्मकं पश्यत यूयमप्येवमेव स्वरूपमनुभवतेत्युक्त भवति ॥ १ ॥

अनुवाद-गर्भस्थित यह वामदेव तत्त्वज्ञान उदित होनेसें सर्वात्मतारूप अपने अनुभवको मन्वादिरूपसें बतलाते हुवे कहने लगे-में (वामदेव) सबका प्रजापति हु और मैंही सबका प्रेरक और प्रकाशक हुं. मेधा (बुद्धि) रूप उपाधिका स्वीकार करके विप्र शब्दका वाच्यमेंही बनाहुं. दीर्घतमा नामक ऋषिका पुत्र कक्षीवान् नामक ऋषिभी में हीहु. आर्जुनीका पुत्र कुत्स नामक ऋषिको मेंही सिद्ध करताहुं. अतिक्रान्त यानें भूतभविष्यादिकको जानने वाले उशना (भृगु) नामक ऋषिभी मेंहीहुं, (यह सब उपलक्षण है) पारमार्थिक दृष्टिसें विचार करनेपर सकल प्रपञ्चभी मेंही हुं. हे लोको! में सर्वात्मक हुं ऐसा तुमलोक देखो, और तुमलोकभी इसी तरहका स्वरूप यानें सार्वात्म्यता संपादन करो ॥ १ ॥

३०. ३ ६ १५ अहंभूमिमददामार्यायाहंवृष्टिंदाशुषेमर्त्याय ।
अहमपोअनयंवावशानाममदेवासोअनुकेतमायन् ॥ २ ॥

अहं वामदेव इन्द्रोवा आर्याय मनवे भूमिं पृथ्वीमददा दत्तवानस्मि, दाशुषेहविर्देचवते मर्त्याय मनुष्याय यजमानाय वृष्टिंसस्याभिवृद्धयर्थं वृष्टिलक्षण

मुदकं अहमेव अददां, किंच अहं वावशानाः शब्दायमाना अपः उदकानि अनयं सर्वमाविप्रादेशमगमयं, देवासो वह्न्यादयो देवाः ममकेतं मदीयं संकल्पं अन्वायन् अनुयन्ति ॥ २ ॥

अनुवाद-(एतदादिक मंत्रोंसे ज्ञानकी महत्ता बतलाते है) वामदेव अथवा इन्द्रका लक्ष्यार्थभूत मैंने मनु (प्रजापति) को भूमि दीहै. और (उसी) मैंने हविष्यप्रदान करनेवाले यजमानात्मक मनुष्योंके लिये अन्नादिकओषधियोंकी वृद्धि होनेको वृष्ट्यात्मक जलभी दीयाहै. और शब्दायमान (शब्द करते) जलको अपने स्थान (समुद्रादिक)में पहुंचानेवाला मैंहीहुं. अग्नि, वरुण, यम, कुबेरादिक सब देव मेरे संकल्पानुसार आचरण (वर्तन) कररहेहै. ॥ २ ॥

३१. २ ६ १५ अहंपुरो मन्दसानोव्यैरं नवसाकन्नवतीः शंबरस्य ।
शततमंवेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥ ३ ॥

अहं वामदेव इन्द्रोवा मन्दसानः सोमेन माद्यन् नव नवसंख्याका नवतीर्नवतिसंख्याकाश्च शंबरस्यैतन्नामकस्यासुरस्य संबन्धीनि पुरः पुराणि साकं युगपदेव व्यैरं अध्वंसयं शततमं शतसंख्यापूरणं पुरं वेश्यं दिवोदासनाम्ने प्रवेशार्हं अकरवं, सर्वताता सर्वतातौयज्ञे अतिथिग्वं अतिथीनामभिगन्तारं दिवोदासं दिवोदासनामकं राजर्षिं यद्यदा आवमपालयं तदा पुरो व्यैरमितिपूर्वेणसंबन्धः ॥ ३ ॥

अनुवाद-वामदेव अथवा इन्द्रका लक्ष्यार्थभूत मैं सोमरससे तृप्त होता हुवा ९९ नेन्यानवे दैत्योंके नगरोंका युगपत् (साथही) विध्वंसकरचुकाहु, और शततम याने १०० सौंमे नगरमे दिवोदास नामके राजर्षिको प्रवेशयोग्य करचुकाहुं. जिस समय अतिथिके पालक उस् दिवोदासराजर्षिके रक्षणमें मैं तत्पर हुवाथा उस समय पूर्वोक्त नगरोंको विध्वंस करचुकाहुं ॥ ३ ॥

३२. ३ ६ १६ गर्भेनुसन्नन्वेषामवेदमहंदेवानांजनिमानिविश्वा ।
शतंमापुरआयसीररक्षन्नधश्येनोजवसानिरदीयम् ॥ १ ॥

अत्रैष श्लोकः पठ्यते-श्येनभावंसमास्थायगर्भोयोगेन. निःसृतः। ऋषिर्गर्भे शयानःसन् ब्रूते-गर्भेनुसन्निति ॥ १ ॥ गर्भेनु गर्भएवसन् विद्यमानोहंवामदेवः एषा-

मिन्द्रादीनां देवानां विश्वा विश्वानि सर्वाणि जनिमानि जन्मानि अन्ववेदं आनुपूर्व्येणाज्ञासिषं, परमात्मनः सकाशात्सर्वेदेवाजाता इत्यवेदिषमित्यर्थः, इतः पूर्वं शतं बहूनि आयसीः अयोमयान्यभेद्यानि पुरः शरीराणि मा मामरक्षन् अपालयन् यथा हंशरीराद्व्यतिरिक्तमात्मानं न जानीयां तथामामरक्षन्नित्यर्थः, अथअधुना श्येनः श्येनवत्स्थितोहं जवसावेगेन निरदीयं शरीरान्निरगमं अनावरणमात्मानंजानन्निर्गतोस्मीत्यर्थः " पुरुषेहवा अयमादितोगर्भे " इति खंडे (ऐ. २-५) गर्भएवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाचेत्यादिना अयमर्थः सम्यक्प्रतिपादितः ॥१॥

अनुवाद–श्येन पक्षीकी तरह बहुत वेगसें योग मार्गका आश्रय करके वह वामदेव गर्भके बहारनिकलके कहतेभये—

मेरी गर्भमें स्थिति होने परभी इन इन्द्रादि देवोंके जन्मोंको में यथार्थ जानता था (हुं) यानें परमात्मरूपपरमकारणसें वे सब उत्पन्न हुवेहैं ऐसा में जानता था (हुं).

और इस गर्भवासके पहिले अनेकलोहमय अभेद्यशरीर मेरा रक्षण कर रहे थे, याने में देहेन्द्रियादि संघातसें अतिरिक्त आत्माको यथार्थ ज्ञान प्राप्त न करसकुं ऐसे में ममत्व और अहंताद्वारा लोहादिककी तरह कठिनतर दुर्भेद जो अविद्या (कारण) शरीरसें बद्ध होरहाथा, सो अब इस समय श्येनपक्षीकी तरह बडेवेगसें शरीरकोछोडकर बहारआयाहुं, यानें अविद्यासेंअनावृतआत्माको यथार्थ अवगतकरके बहारआयाहुं. ॥ १ ॥

३३. ३ ६ १६ नघासमाप्यजोपंजभाराभीमासत्वक्षसावीर्येण ।

ईर्मापुरंधिरजहादरातीरुतवातांअतरच्छूशुवानः ॥२ ॥

स गर्भःमां वामदेवं जोषं पर्याप्तं नघ नैवापजभार अपजहार गर्भेचिरस्तो मे मोहो माभूदित्यर्थः, अहंतु ई इदंगर्भस्थं दुःखं त्वक्षसा तीक्ष्णेन वीर्येण ज्ञानसामर्थ्येन अभ्यास अभ्यभवं, ईर्मा सर्वस्य प्रेरकः पुरंधिः पुरांधारकः परमात्मा अरातीः गर्भसंस्थितान् शत्रूनजहात् अत्यजत् जघान, उतापिच शूशुवानः वर्धमानः परिपूर्णः परमात्मा वातान् गर्भक्लेशकरान्वायूनतरत् अतारीत् ॥२॥

अनुवाद–उस गर्भस्थितिनें मुझको (वामदेवको) स्वरूपसें भ्रष्ट किया नहि है, यानें में गर्भस्थ था तथापि " गर्भवास जनित दुःखवान् में हुं. " ऐसा मोह मुझे हुवा नहिं. क्योंकी उस दुःखका तीक्ष्णवीर्यसें यानें ज्ञानसामर्थ्यसें अभिभव (पराभव) मेंने करादिया. सकल देहका धारण करनेवाला (अधिष्ठानात्मक) परमात्माने गर्भमें (दुःखानुभवद्वारा प्राप्त होनेवाले मोहादि) शत्रुओंका नाश करके संग छोडादिया है. और इसी परमात्मानें स्वापरोक्षज्ञान संपादन कराके क्लेश समुद्रके पार मुझे पहुंचा दीया है. ॥ २ ॥

२१. ३ ७ १४ हंसः॑शुचि॒षद्व॒सु॑रन्तरिक्ष॒सद्धोता॑वेदि॒षदति॑थिर्दुरोण॒सत् ।
नृ॒षद्व॑र॒सदृ॑त॒सद्व्यो॑म॒सद॒ब्जा गो॒जा ऋ॑त॒जा अ॑द्रि॒जा ऋ॒तम् ॥ ५ ॥

अनया सौर्यर्चा "यएषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुरि"इत्यादि (छां. १–६–६) श्रुत्योक्तो मण्डलाभिमानी देवोस्ति, यश्चसर्वप्राणि हृदि चिद्रूपः स्थितः परमात्मा, यच्च निरस्तसमस्तोपाधिकं परंब्रह्म तत्सर्वमेकमेवेति प्रतिपाद्यते. हंसः हन्तिर्गत्यर्थः सर्वत्र सर्वदागन्ता योहंसोऽसावित्यादिश्रुत्युक्त प्रकारेणैकीकृत्योपास्यः, परमात्ममंत्रप्रतिपाद्य आदित्यः सच शुचौदीप्ते द्युलोके सीदतीति शुचिषत्, "अथ यदतः परोदिवोज्योतिर्दीप्यते" इत्यादि (छां. ३-१३-७) श्रुतेः। अनेन द्युस्थान आदित्यः प्रतिपादितः, सएव मध्यस्थानो वायुरित्याह-वसुः सर्वस्य वासयितावायुः सचान्तरिक्षसत् अन्तरिक्षसंचारी, अथ तस्यैव क्षितिस्थान वैदिकाग्निरूपतामाह–होता देवानामाह्वाता होमनिष्पादकोवा, वेदिषत् वेद्यां गार्हपत्यादिरूपेणस्थितः, अतिथिरतिथिवत्सर्वदा पूज्योग्निः, दुरोणसत् दुरोणंगृहनाम तत्रपाकादिसाधनत्वेनस्थितः, अनेन लौकिकाग्न्यात्मत्वमुक्तं, नृषत् नृषुमनुष्येषुचैतन्यरूपेण सीदतीतिनृषत्, अनेन परमात्मरूपत्वमुक्तं, पुनरप्यादित्यात्मतामाह–वरसत् वरेवरणीये मंडले सीदतीति वरसत् आदित्यः "वरंवाएतत्सद्मनायस्मिन्नेषएतस्मिन्नेतपती" तिहिश्रूयते (ऐ. ब्रा. ४–२०), ऋतंसत्यं ब्रह्म यज्ञोवा तत्र सीदतीत्यृतसत् अग्निः, व्योमान्तरिक्षं तत्रसीदतीति व्योमसद्वायुः, इदानीमादित्यउच्यते, अब्जाः उदकेपुजातः उदकमध्येखल्वयं जायते, गोजाः गोपुरश्मिपुजातः, ऋतं सत्यं सर्वैर्द्रष्टृत्वेन सत्याज्जातः, नह्यसाविन्द्रादिवत्परोक्षो भवति, यद्वोदकेषु वैद्युतरूपेण वा वाडवरूपेणवाजातः, अद्रिजाः अद्र्यावुदयाचलेजातः. एवं महानुभाव

आदित्यः, ऋतं सत्यमबाध्यं सर्वाधिष्ठानं ब्रह्मतत्त्वं तद्रूपो ह्यसावेव आदित्यस्योक्त रूपत्वं "हंसः शुचिषदित्येषवैहंसः शुचिषदि"त्यादिना ब्राह्मणे समाम्नातम् ॥५॥

अनुवाद–"आदित्य के अन्तर्गत हिरण्यश्मश्रु हिरण्मय पुरुष जो दिख पडता है" इत्यादिक श्रुतिमें सूर्यमण्डलाभिमानी जो देव उपास्यतया निर्दिष्ट कियें है, और सकल प्राणिके हृदयमें अनुस्यूत प्रत्यक्चैतनरूपसें जो परमात्मा अवस्थित है याने यह दोनों सोपाधिक है, और समस्त उपाधियोंसे रहित जो परब्रह्म है वह सब (तीनो) एकहीहै ऐसा इस (सौरी) ऋचासें प्रतिपादन करतेहै- (हंस) हमेशा सर्वत्र गमनवाला और देदीप्यमान द्युलोकमें प्रतीतहोनेवाला परमात्मप्रतिपादक मन्त्रका विषयभूत यह जो आदित्य यानें तदन्तर्गत मण्डलाभिमानी देव है "सो मेंहुं और में वह है" ऐसा अभेदद्वारा वह उपास्य है. "प्रपञ्चातीत और द्युलोकमें देदीप्यमान परमात्मा" इत्यादिक श्रुतिसें सूर्यमण्डलाभिमानी देवकी प्रतीति होती है.

वही देव पारमार्थिक रूपसें निरुपाधिक होनेपरभी जैसें मण्डलरूप उपाधिका स्वीकारकरके मण्डलाभिमानी हुवें है तैसें औरभी उपाधियोंका स्वीकारकरके तत्तदभिमानी बनें है, जैसें मध्य–अन्तरिक्षमें सचार करनेसें और सबको वासित करनेसें वह वायु कहा जाताहै इसी तरह वही देव भूमिमें अवस्थित होकर "होता" ,याने इतर देवोंको निमन्त्रित करनेवाला अथवा होम करनेवाला बनता है, और यज्ञकुण्डमें "गार्हपत्य" अग्निरूपसें वही स्थित होता है, की जो अग्नि अतिथिकीतरह परमपूज्य है, गृहादिकमेंभी पाकादि निर्वर्तक अग्नि वही बनता है, मनुष्योंमें अनुस्यूत चैतन्यरूपसें रहनेवाला परमात्माभी वही है, और वही परमात्मा जो अनुस्यून चेतनात्मक है सो सूर्यमण्डलमेंभी (तदभिमानी बनकर) स्थित है "यह परम उत्तम स्थान निवास करने योग्य है की जिसमें यह (परमात्मा) निकट रहेकर प्रकाश कर रहा है" इस श्रुतिसें वह मण्डलात्मकस्थान इतरस्थानोंसें उत्कृष्ट होकर वरणीय यानें उपासनादिक उपायसें प्रापणीय अवश्य प्राप्त करनेयोग्य बतलाया गया है. और यह परमात्मा "ऋत" याने सत्यस्वरूप त्रिकालाबाधितपरब्रह्मस्वरूपका साक्षात्कारहोनेकेबाद उपलब्ध होनेसे तद्रूपही है. अथवा यज्ञमें रहनेवाला अग्निरूप है, अन्तरिक्षमें संचारकरनेवाला वायुभी यही है, और यही परमात्मा जलसें प्रकट होनेवाला

सूर्यभी है (सूर्यका जलसें प्रादुर्भाव और जलहीमें तिरोभाव होता है क्योंकी उदयके पहिले और अस्तके बाद सूर्य निम्नप्रदेश जोकी जलस्थान है, वहींपर तिरोहित हुवे ऐसा प्रतीत होता है). और किरणरूपसें वर्तमानभी यही परमात्म देव है, सत्यरूपसें यही प्रतीत होता है, याने इन्द्रादि देवोंकी तरह यह देव परोक्ष न होकर सबको चेतनरूपसें अपरोक्ष होरहा है. अथवा जलमें (मेघादिकमें) बिजलीरूपसें रहनेवाला अथवा जलात्मक समुद्रमें वाडवाग्निरूपभी यही है. अद्रिमें उदयाचलमें प्रकट होनेवाला यही सूर्यमण्डलान्तर्गत तदभिमानी देव सर्वस्वरूप है. यानें वही सब बनाहुवा उससे अतिरिक्त कुछभी नहिं है क्योंकी सर्वाधिष्ठान रूप जो परब्रह्म है वही सर्वस्वरूपसें प्रतीत होता है, तो अर्थात् सकल प्राणिके हृदयान्तर्गत अनुस्यूत चैतन्य और मण्डलाभिमानी देव और परब्रह्म परमात्मा जो निरुपाधिकहै सो सोपाधिकनिरुपाधिक सब चेतन उपाधियोंका बाध करनेसें एकही है. ॥ ५ ॥

३५. ४ ५ ११ नाहंतन्तुंनविजानाम्योतुंनयंवयन्तिसमरेतमानाः ।
कस्यस्वित्पुत्रइहवक्त्वानिपरोवदात्यवरेणपित्रा ॥ २ ॥

रूपकतया जगत्स्रष्टेर्दुर्ज्ञानत्वमनया प्रतिपादयतीत्यात्मविदोमन्यन्ते, तन्तुं तन्तून् तन्तुस्थानानि सूक्ष्माणि वियदादीन्यपञ्चीकृतानिभूतानि न विजानामि, ओतुं ओतून् पञ्चीकृतानि स्थूलानि ओतुस्थानीयान्यपिवियदादीनि न विजानामि, नच तत्कार्यं पटस्थानीयं प्रपंचं विजानामि, यं प्रपंचं समरे तंतूनामोतूनां च संगमने अतमानाः सततंचेष्टमानाः संसारिणः वयन्ति उत्पादयन्ति, तेषां भोगार्थमीश्वरः सृजतीति कर्तृत्वमुपचर्यते, इहास्मिन्विषये परः परस्ताद्बुद्धेरविषये वर्तमानानि वक्त्वानि वक्तव्यानि इमानि अवरेण अर्वाचीनेन सृष्ट्युत्तरकालमुत्पन्नेन पित्रा स्वजनकेन अनुशिष्टः सन् कस्यस्वलुपुत्रः वदाति वदेत् स्वोत्पत्तेः प्राचीनं वृत्तान्तं अजानानः, कश्चिदपिनवदेत् इत्यर्थः ॥ २ ॥

अनुवाद-तन्तु और वस्त्रका रूपक बताकरके "जगत्स्रष्टि दुर्ज्ञेयहै" ऐसा इसमन्त्रसें प्रतिपादन करते हैं.

तन्तुस्थानापन्न सूक्ष्म जो अपञ्चीकृत आकाशादिक महाभूत है उनको मैं नहि जानता, और ओतुस्थानापन्न पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतोंकोभी मैं नहि जानता,

सूक्ष्म और स्थूल भूतोंको (कारणको) जब मैं नहि जानता तब इनके कार्यरूप वस्त्रस्थानापन्न प्रपञ्चको मैं कैसे जानुं? जिस प्रपञ्चको उत्पन्नकरनेकेलिये तन्तु और ओतुका (तुरीवेमादि पटकार्यके साधनकी तरह विषय बनाकर) संगम याने प्रथन करनेको निरन्तर संसारिलोक तत्पर होरहें है. प्राणिमात्रके उपभोगार्थ परमेश्वरही प्रपञ्चोत्पत्ति करता है वैसा व्यपदेश किया जाताहै, बुद्धिके अविषयरूप इन् सूक्ष्म और स्थूल महाभूतोंको, उन् भूतोंके बाद होनेवाला प्राणी अपने पितृपितामहादिकसें शिक्षणपानेपरभी कौन जान सक्ता? और कौन कहे सक्ता? क्योंकी कोइभी लोक अपनी उत्पत्तिसें प्राचीन पदार्थोंके व्यापारका यथार्थरीतिसें अपरोक्षानुभवकरनेंको योग्य है ही नहि, तो इस् सकल प्रपंच के कारणभूत सूक्ष्म और स्थूल भूतोंको भौतिक सृष्टिके अन्तर्गत कौन प्राणी जान सकाहै? इस्सें भूत भौतिक सृष्टिकी दुर्ज्ञेयता बताकर जिस्में वह भूत भौतिक सृष्ट्यात्मक प्रपंच ओतप्रोत है उस् परमकारणभूत परमेश्वरकी परम दुर्ज्ञेयता अर्थात् सिद्ध होतीहै. ॥ २ ॥

२६. ४ ५ ११ सइत्तन्तुंसविजानात्योतुंसवक्त्वान्यृतुथावदाति।
यईंचिकेतदमृतस्यगोपाअवश्चरन्परोअन्येनपश्यन् ॥ ३ ॥

सइत् सएव तन्तुं तन्तुस्थानीयानि सूक्ष्मभूतानि विजानाति नान्यः कश्चित्, तथा ओतुं ओतुस्थानीयानिस्थूलभूतानिच सएव विजानाति, सएववक्त्वानि वक्तव्यान्युपदेष्टव्यानि, इमानि ऋतुथा कालेकाले यदायदाविद्यासंप्रदायोच्छेदः तदातदा वदाति वदेत्, कोसौ योविजानीयात् वदेच्चेत्यतआह, योवैश्वानरः विश्वनरात्मकः परमात्मा अमृतस्य अमृतत्वस्य विमोक्षणस्य गोपाः रक्षिता अवः अवस्तात् संसारदशायाचरन् अन्तःकरणोपेतोजीवात्मभावेनसंचरन् परः परस्तादविद्यायाः ऊर्ध्वं वर्तमानेनान्येन उक्तविलक्षणेन निरुपाधिकेन सच्चिदादिलक्षणेनरूपेण पश्यन् सर्वं जगत्प्रकाशयन् ईं इमानिचिकेतज्जानाति, तथाच परमात्मानंप्रकृत्य श्रूयते–(कठ. २-२-१५) "तमेवभान्तमनुभाति सर्वंतस्यभासासर्वमिदंविभाति" ॥३॥

अनुवाद–यद्यपि पूर्वमन्त्रोक्तप्रकारसें भूतभौतिक समुदाय दुर्ज्ञेयहै तथापि उसको जाननेवाला "वैश्वानर" पदवाच्य कोइ है ऐसा इस मन्त्रसें प्रतिपादन करतें है.

तन्तुस्थानापन्न सूक्ष्मभूतोंको और ओतुस्थानापन्न स्थूल महाभूतोंको वहीजान सक्ता है, और जिस जिस समयमें (ब्रह्म) विद्यासंप्रदायका उच्छेद होता है उसका जीर्णोद्धार करके वही लोकोंको फिरसें स्वकार्य तत्पर करता है की जो "वैश्वानर" पदवाच्य है याने जो परमात्मा विश्वनर समग्र प्रपञ्चसें अभिन्नहोकर सर्वानुस्यूत प्रत्यक्चेतनस्वरूप है, और अमृतत्वका रक्षक है, यानें अपनें कृपापात्रोंको जो परमेश्वर मुक्तिप्रद यानें सार्वात्म्यभाव अर्पण करता है, और स्वयं संसार दशामें अन्तःकरणोपहित चेतन "जीव" भावसें संचरण करता है, और अविद्यासें पर वर्तमान सच्चिदानन्दात्मक निरुपाधिक स्वरूपसें सचराचर प्रपञ्चको जो परमात्मा प्रकाशता है वही इस भूतभौतिक सृष्टिको जानता है, "उस परमेश्वरका सामान्य बोध होनेके बाद दूसरे पदार्थोंका बोध होता है और उसीके नित्यप्रकाशसें सब प्रपञ्च प्रकाशित होता है" इत्यादिक कठोपनिषत्की श्रुतिभी इस अर्थसें संगत होती है. ॥ ३ ॥

२७. ४ ५ ११ ध्रुवंज्योतिर्निहितंदृशयेकंमनोजविष्ठंपतयंत्स्वन्तः ।

विश्वेदेवाःसमनसःसकेताएकंक्रतुमभिवियन्तिसाधु ॥५॥

पतयत्सु गच्छत्सु प्राणिष्वन्तर्मध्ये हृदये मनोजविष्ठं मनसोप्यतिशयेन वेगयुक्तं ध्रुवं निश्चलं निर्विकल्पं, तथाच वाजसनेयकं "अनेजदेकं मनसोजवीय" इति (ई. उ. ४)। ज्योतिः ब्रह्म चैतन्यं निहितं नकेनचित् स्थापितं "योवेदनिहितं गुहायां परमेव्योमन्निति" हि श्रूयते। किमर्थं दृशये दर्शनार्थं ज्ञानेनहि सर्वंजानन्ति, अपिच दीव्यन्तीति देवाइन्द्रियाणि विश्वे सर्वेदेवाः सर्वाणीन्द्रियाणि चक्षुराद्याः समनसः मनसा सहवर्तमानाः सकेताः सतेजस्काः सन्तः एकमद्वितीयं क्रतुं सृष्ट्यादीनां कर्मणां कर्तारं विश्वनरात्मकं परमात्मानम् अभिलक्ष्य साधु सम्यक् वियन्ति विविधं गच्छन्ति देवाएववा इमं अभिवियन्ति आभिमुख्येन विविधमुपयन्ति उपासत इत्यर्थः, तथाचश्रूयते "तद्देवाज्योतिषांज्योतिरायुर्होपासतेमृतमिति" ॥५॥

अनुवाद—यही "वैश्वानरात्मक" ज्योति जंगम—चलनेवालेप्राणियोंके हृदयोंमें रहेकर मनसेंभी अत्यन्त वेगवाला है, और निरुपाधिकरूपसेंतो निश्चल है—निर्विकल्प है, "यह परमात्मस्वरूप एक ज्योति निश्चल है और मनसेंभी वेगवत्तर है" इत्यादिक श्रुतिभी "निरुपाधिक रूपसें निश्चल और सोपाधिकरूपसें

वेगवत्तर है "इत्यादिक बतलाती है. यह परमात्मज्योति यानें ब्रह्मचैतन्य हृदयरूप गुहामें निश्चलस्वरूपसें स्वयमवस्थित है, किसीनें वहांपर स्थापित किया नहिं, श्रुतिभी कहती है " हृदयरूप गुहामें रहे हुवे इस ब्रह्मचैतन्यको जो जानताहै ", इत्यादि। और यह ब्रह्मचैतन्य ज्ञानके लिये हृदयावस्थित हुवा है यद्यपि सर्वत्र अवस्थित है परंतु हृदयहोमें उपलब्धि होनेंमें " हृदयावस्थित है " ऐसा कहा जाता है। और सब चक्षुरादिकइन्द्रियाँ मनके साथ वर्तमान होकरके भेदत्रयशून्य और प्रपञ्चके निर्माणकरनेवाले इस परमात्माके चैतन्यात्मक प्रकाशको ग्रहण करके अनेक प्रकारका व्यवहार कर रहीं है, अथवा देवतालोक जिस परमेश्वरकी अनेक प्रकारसें उपासना कर रहें हैं, श्रुतिभी कहती है "देवतालोक सूर्यचन्द्रादिक ज्योतिकाभी नियामक जिस परमज्योतीरूप परमेश्वरकी उपासना कर रहें है अधिक आयुष्य और अमृत (मुक्ति) प्राप्त करनेके लिये" इत्यादि ॥ ५ ॥

३८. ४ ७ ३३ रूपंरूपंप्रतिरूपोवभूवतदस्यरूपंप्रतिचक्षणाय।
इन्द्रोमायाभिःपुरुरूपईयतेयुक्ताह्यस्यहरयःशतादश ॥१८॥

इदिपरमैश्वर्ये इत्यस्यधातो रर्थानुगमादिन्द्रः परमात्मा सचाकाशवत् सर्वगतः सदानन्दरूपः सएवोपाधिभिरन्तःकरणैः प्रतिशरीरमवच्छिन्नः सन् जीवात्मेति व्यपदिश्यते, सएव अनादिमायाशक्तिभिः वियदादिजगदात्मना विवर्तते, शब्दादिविषयहरणशीलाः इन्द्रियवृत्तयश्चतेनैव संबद्धाः, एतत्सर्वंतस्य परमात्मनोयद्वास्तवंरूपं तस्यदर्शनायेतिअयमर्थोऽनयाप्रतिपाद्यते—रूपंरूपं रूप्यत-इतिरूपं शरीरादि प्रतिशरीरंचिद्रूपः सर्वगतः परमात्मा प्रतिरूपः प्रतिबिंबरूपः सन् सर्वाणिशरीराणिबभूव प्राप्नोत्, तच्चप्राप्तं प्रतिबिंबरूपं अस्य परमात्मनः प्रतिचक्षणाय प्रतिनियताकारस्य दर्शनायभवति, सचेन्द्रः परमेश्वरः मायाभिर्मायाशक्तिभिः पुरुरूपः वियदादिभिर्बहुविधरूपैरुपेतः सन्नीयतेचेष्टते, एतदपि अस्यपरमात्मनः प्रतिचक्षणायभवति, अस्यचदशशता सहस्रसंख्याका हरयः इन्द्रियवृत्तयः युक्ताः विषयग्रहणायोद्युक्ताः सन्ति, तदपि अस्य वास्तवरूपस्य दर्शनायभवतिइति, एवं स्थूलसूक्ष्मशरीरयोर्वियदादिमहाप्रपंचस्यच तत्त्वज्ञानहेतुत्वमनया प्रत्यपादीति।१८।

अनुवाद—परमात्मा ही आकाशकी तरह सर्वव्यापक सद्रूप आनन्दरूप होतेहुवेभी अन्तःकरणरूप उपाधिके संबन्धसें प्रत्येक शरीरोंसें अवच्छिन्न (युक्त)

-"ज्यायान् पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षात् ज्यायान् दिवोज्यायानेभ्योलोकेभ्य" इति श्रुतेः" (बृहदारण्यक) ॥ ५ ॥

अनुवाद–हे परमात्मन्? आपके प्रतिमान-परिच्छेदके लिये सेंकडो द्युलोक हो तौभी आपको परिच्छिन्न करसक्ते नहिं. और आपके स्वरूपके प्रतिबिंबकेलिये सेंकडो भूलोक हो तोभी आपको व्याप्त करसक्ते नहिं. दुराचारियोंके नाशार्थ और साधुपुरुषोंके रक्षणार्थ इन्द्रादिस्वरूपको धारण करके वज्रादिशस्त्रको धारणकरनेवाले हे परमात्मन्! आपको असंख्य सूर्यभी प्रकाशित नहिं करसक्ते, कठवल्लीमें कहाहैकी–"उस् परमेश्वरको सूर्य चंन्द्र तारा विजलि अग्नि इत्यादिक प्रकाश करसक्ते नहिं." विशेष क्या कहें उत्पन्न हुवे जितने तत्त्व हैं उनमेंसे कोइभी आपको प्रकाशित नहिं करसक्ता परंतु आपके प्रकाशसे वे प्रकाशित होतेहै. द्युलोक भूलोक और तदन्तर्गतदेवमनुष्यादिक कोइभी आपको विषय करसक्ता नहिं, यानें आप सर्वोत्कृष्ट होनेसें सर्वातिरिक्तहीहैं, "पृथिवीसें अन्तरिक्षसें द्युलोकसें और इतर लोकोंसेंभी यह आत्मतत्त्व परम ज्येष्ठहै, श्रेष्ठ है" इत्यादिक बृहदारण्यक उपनिषदमेंभी कहाहै ॥ ५ ॥

४०. ७ ५ २७ यत्रज्योतिरजस्रंयस्मिँल्लोकेस्वर्हितम् ।

तस्मिन्मांधेहिपवमानामृतेलोकेअक्षितइन्द्रायेन्दोपरिस्रव ॥७ ॥

हे पवमान यत्र यस्मिन्लोके ज्योतिः सर्वतेजः अजस्रं सर्वदा अविनश्वरं वर्तते। यस्मिश्चलोके स्वरादित्याख्यं ज्योतिर्हितं निहितमस्ति तस्मिन् अमृते मरणधर्मरहिते अतएव अक्षिते अक्षीणलोके मां सोमाभिषवं कुर्वन्तं धेहि तस्मान्मामुत्तमलोकं प्रापयितुं त्वमिन्द्रायपरिस्रव ॥ ७ ॥

अनुवाद–हे पवमान? जिस् लोकमें समग्रतेज सदा अविनाशिरूपसें अवस्थितहै, और जिसूलोकमें आदित्यात्मक तेजभी निहितकियागयाहै, यानें जिस् लोकसें सूर्यभी तेजस्विताको पाये हुवेहैं, ऐसे मरणादिधर्मरहित अविनाशी लोकमें सोमाभिषवण करते हुवे मुझको तुम् पहुंचा देओ. यानें उत्तम लोक, की जहांसें वापसआना नहिं होता वैसें लोकमें मुझे पहुचानेको तुम् इन्द्रके लक्ष्यार्थभूत परमेश्वरकी प्रार्थना करो ॥ ७ ॥

४१. ७ ५ २७ यत्रा॒न॑न्दाश्च॒ मोदा॑श्च॒ मुद॑: प्र॒मुद॒ आस॑ते।
कामस्य यत्रा॒प्ताः कामा॒स्तत्र॒ माम॒मृतं॑ कृ॒धीन्द्रा॑येन्दो॒ परि॑ स्रव ॥११॥

यत्र यस्मिन् लोके आनन्दादय आसते, तेषामल्पोभेदोद्रष्टव्यः, यत्रलोके कामस्य काम्यमानस्य देवस्य सर्वेकामा आप्ताः प्राप्ताभवन्ति, तत्रमाममृतं कृधि एतत्तु त्वयाविना नघटत इति हे सोम त्वं परिस्रव ॥ ११ ॥

अनुवाद-जिस् लोकमें आनन्दप्रमोदहर्षादिक सततनिवास करते हैं, और जिस लोकमें देवोंकेभी सकल मनोरथ पूर्ण होतेहै, वहांपर मुझे अमृतस्वरूपसे याने जन्ममरणादिविकाररहित स्वरूपसे तुम् स्थापित करो, यह कार्य तुमारे सिवाय बननेकानहिं, इसी लिये हे सोम! तुम इन्द्रके लक्ष्यार्थभूत परमेश्वरको प्राप्त हो ॥ ११ ॥

४२. ७ ५ ३३ अस॑च्च॒ सच्च॑ पर॒मे व्यो॑म॒न्दक्ष॑स्य॒ जन्म॒न्नदि॑तेरु॒पस्थे॑।
अ॒ग्निर्ह॑ नः प्रथम॒जा ऋ॒तस्य॒ पूर्व॒ आयु॑नि वृष॒भश्च॑ धे॒नुः ॥७॥

असदव्याकृतं सच्चव्याकृतं "असदेवेदमग्रआसीत्" (छां ६-२-१) तत्सदासीत् तत्समभवत् " इतिश्रुतेः । सदसदात्मकं जगत्सर्वं परमेउत्तमेज्ञानसहिते व्योमन् व्योमनि कारणात्मनि जातमभूत्तदा अदितेः पृथिव्याउपस्थे उपस्थाने समीपे दक्षस्य प्रजापतेः यद्वा दक्षस्य "सत्रेधात्मानं विभजतादित्यंतृतीयंवायुं तृतीयमि" तिश्रुतेः । तृतीयस्य द्युलोकस्याधिष्ठातृत्वादादित्यस्य जन्मन् जन्मनि ततएवं सति मनुष्यस्य सृष्टिक्रमात् पूर्वं अग्निर्ह अग्निरेव ऋतस्य कर्मफलस्य भोक्तॄणां नोस्माकं प्रथमजाः प्रथमजातः समुत्पन्नः "तेजोरसोनिरवर्तताग्निरि" तिश्रवणात् । पश्चात्तत्प्रकरणे ततोमनुष्या अजायन्तेति प्रथमतएव मनुष्यसृष्टेरभिहितत्वात् अनन्तरं पूर्वे उत्तरसृष्टिमपेक्ष्य पूर्वत्वं, आयुनि काले अयमग्निरेव वृषभश्चासीत् धेनुश्चाभवत् स्त्रीपुंसवत् स्त्रीपुंसात्मकोभवदित्यर्थः ॥ ७ ॥

अनुवाद-"सदेवसौम्येदम्" "असदेव" इत्यादिक श्रुतिसिद्ध अव्याकृत और व्याकृत याने अनिर्वचनीय समग्रप्रपंच ज्ञानात्मक कारणरूप जिस् परमेश्वरमें प्रादुर्भूत हुवा उस समय पृथ्वीके समीप द्युलोकके अधिष्ठाता सूर्य आविर्भूतहुवे, और इसके बाद मनुष्यसृष्टिके पहिले कर्मफलोंको भोगनेवाले हम लोकोंसे प्रथम अग्निदेवप्रादुर्भावको प्राप्तहुवे, "तेजोरसात्मक अग्निदेव

४१. ७ ५ २७ यत्रानन्दाश्चमोदाश्चमुदःप्रमुदआसते।

कामस्ययत्राप्ताःकामास्तत्रमाममृतंकृधीन्द्रायेन्दोपरिस्रव॥११॥

यत्र यस्मिन् लोके आनन्दादय आसते, तेषामल्पोभेदोद्रष्टव्यः, यत्रलोके कामस्य काम्यमानस्य देवस्य सर्वेकामा आप्ताः प्राप्ताभवन्ति, तत्रमाममृतं कृधि एतत्तु त्वयाविना नघटत इति हे सोम त्वं परिस्रव ॥ ११ ॥

अनुवाद-जिस लोकमें आनन्दप्रमोदहर्षादिक सततनिवास करते हैं, और जिस लोकमें देवोंकेभी सकल मनोरथ पूर्ण होतेहै, वहांपर मुझे अमृतस्वरूपसे याने जन्ममरणादिविकाररहित स्वरूपसे तुम स्थापित करो, यह कार्य तुमारे सिवाय बननेकानहिं, इसी लिये हे सोम ! तुम इन्द्रके लक्ष्यार्थभूत परमेश्वरको प्राप्त हो ॥ ११ ॥

४२. ७ ५ ३३ असच्चसच्चपरमेव्योमन्दक्षस्यजन्मन्नदितेरुपस्थे।

अग्निर्हनः प्रथमजाऋतस्यपूर्वआयुनिवृषभश्चधेनुः ॥७॥

असदव्याकृतं सद्व्याकृतं "असदेवेदमग्रआसीत्" (छा ६-२-१) "तत्सदासीत् तत्समभवत्" इतिश्रुतेः। सदसदात्मकं जगत्सर्वं परमेउत्तमेज्ञानसहिते व्योमन् व्योमनि कारणात्मनि जातमभूत्तदा अदितेः पृथिव्याउपस्थे उपस्थाने समीपे दक्षस्य प्रजापतेः यद्वा दक्षस्य "सत्रेधात्मानं विभजतादित्यतृतीयंवायु तृतीयमि" तिश्रुतेः। तृतीयस्य द्युलोकस्याधिष्ठातृत्वादादित्यस्य जन्मन् जन्मनि तत्एव सति मनुष्यस्य सृष्टिक्रमात् पूर्वं अग्निर्ह अग्निरेव ऋतस्य कर्मफलस्य भोक्तृणा नोस्माकं प्रथमजाः प्रथमजातः समुत्पन्नः "तेजोरसोनिरवर्तताग्निरि" तिश्रवणात्। पश्चात्कल्पकरणे ततोमनुष्या अजायन्तेति प्रथमतएव मनुष्यसृष्टेरभिहितत्वात् अनन्तरं पूर्वे उत्तरसृष्टिमपेक्ष्य पूर्वत्वं, आयुनि काले अयमग्निरेव वृषभश्चासीत् धेनुश्चाभवत् स्त्रीपुंसवत् स्त्रीपुंसात्मकोभवदित्यर्थः ॥ ७ ॥

अनुवाद-"सदेवसौम्येदम" "असदेव" इत्यादिक श्रुतिसिद्ध अव्याकृत और व्याकृत याने अनिर्वचनीय समग्रप्रपंच ज्ञानात्मक कारणरूप जिस परमेश्वरमें प्रादुर्भूत हुआ उस समय पृथ्वीके समीप द्युलोकके अधिष्ठाता सूर्य आविर्भूतहुवे, और इसके बाद मनुष्यसृष्टिके पहिले कर्मफलोंको भोगनेवाले हम लोकोंमें प्रथम अग्निदेवप्रादुर्भावको प्राप्तहुवे, "तेजोरसात्मक अग्निदेव

प्रकट हुवे " ऐसा श्रुतिभी कहती है. उसकेबाद उसीक्रममें मनुष्यलोक उत्पन्न हुवे, उस मनुष्यसृष्टिके प्रथम प्रादुर्भावपायेहुवे अग्निदेवकेलक्ष्यार्थ परमेश्वर वृषभ धेनु स्त्रीपुरुष इत्यादिक सर्व स्वरूप हुवे ॥ ७ ॥

४३. ७ ७ १६ संयद्वयंयवसादोजनानामहंयवादउर्वज्रेअन्तः ।

अत्रायुक्तोवसातारमिच्छादथोअयुक्तंयुनजद्ववन्वान् ॥ ९ ॥

अनया ऋषिरिन्द्रप्रसादलब्धं स्वस्य सार्वात्म्यं प्रकाशयति–जनानांलोकानांमध्ये ये यवसादः तृणस्याचारः पशवः ते वयमिति सं सम्यक जानीहि, ये च यवादः यवोपलक्षितस्यान्नस्याचारो मनुष्यास्तेपिवयमिति संजानीहि । वस्तुतस्तु उर्वज्रेविस्तीर्णे अजिरेंगणे हार्दाकाशरूपे यत् अंतः अंतर्यामिरूपं ब्रह्म तदहमस्मि-अत्रास्मिन हार्दाकाशे युक्तः समाहितोभवानिन्द्रः अवसातारं आत्मनः संभक्तारं इच्छात् इच्छति आत्मसाक्षात्कर्तुं । अथो अपिच अयुक्तं अयोगिनं ववन्वान् ववन्वतं अतिशयेन विषयान् सेवमानं पुरुषं युनजत् युनक्ति संसारे शापानुग्रहसमर्थो भवद्रूपोहमेवास्मीति भावः ॥ ९ ॥

अनुवाद–इस मन्त्रसें परमेश्वरकी कृपाद्वारा होनेवाला अपना सार्वात्म्यभाव प्रतिपादित करतें है–लोकोंकीमध्यमें जो घांस खानेवाले पशुलोक हैं, वे हमही है, याने उनका हमारा वास्तविक भेद नहिं है. ऐसा जानो. और जो लोक यवादिक अन्न खातें हैं वे मनुष्यभी हमही है, याने प्रत्येक भिन्न भिन्न देहादिरूप उपाधिकेद्वारा भेदप्रतीतिहोनेपरभी निरुपाधिक तात्विक स्वरूप वो एकही है ऐसा जानो. वास्तविक रीतिसें इस हृदयाकाशमें अन्तर्यामिरूप परब्रह्म (भागत्याग लक्षणासें) मेंही हुं. । इस हृदयाकाशमें अवस्थित जीवात्मा अपने नियामक बिम्बस्थानापन्न परमेश्वरका साक्षात्कारको चाहता है. और अत्यन्त विषयलंपट अयोगि याने अजितेन्द्रिय पुरुषोंको दंड देनेवाला याने संसारमें निग्रहानुग्रह करनेंमें समर्थ प्रत्यकुचेतनात्मक परमेश्वर मेंही हुं ॥ ९ ॥

४४. ७ ७ १६ अत्रेदुमेमंससेसत्यमुक्तंद्विपाच्चयच्चतुष्पात्संसृजानि ।

स्त्रीभिर्योअत्रवृषणंपृतन्यादयुद्धोअस्यविभजानिवेदः ॥१०॥

भे मम अत्रास्मिन्स्तोत्रेउक्तं मयाकथितं सत्यमित् यथाभूतमेव मंससे त्वं जानीहि अर्थवादरूपेण नैतदध्यारोपितमित्यर्थः । किंच द्विपाच्च मनुष्यादिकं च

चतुष्पाच पश्वादिकंच यत्स्थावरजंगमात्मकं जगत्संसृजामि' अहमुत्पादयामीति अत्रास्मिञ्जगति स्त्रीभीः स्त्रीसदृशैर्बलादिहीनैः पुरुषैः सह यः शूरंमन्योजनः पूर्णं अभिलषितस्य वर्धितारं मां परित्यज्येतिशेषः। एतैर्न्यान् युद्धं कर्तुमिच्छति, अहं अस्येदृशस्य स्वभूतं वेदोधनं अयुद्धः तेन पुरुषेणायोद्धा सन् बलादपहृत्य विभजामि स्तोतृभ्यो यष्टृभ्यश्च ददामीत्यर्थः॥ १०॥ १६॥

अनुवाद-इसके पूर्वमन्त्रमें कहा हुवा वृत्तान्त यथार्थवादात्मक है, अर्थवादरूपसें अध्यारोपित नहिं है, में (परमात्मा) मनुष्यादिक और पश्वादिक स्थावरजंगमात्मक सकल विश्वको उत्पन्न करता हुं, इस जगत्में स्त्रीयोंके तुल्य अल्पपराक्रमादिरहित पुरुषोंकेसाथ अपनेंको शूरमाननेवाला याने शूरत्वाभिमानी (पुरुष) सकल कामोंको पूर्ण करनेवाले मुझको छोडकरके युद्ध करनेको चाहता है, यानें स्वयं निर्बलहोनेपरभी बलप्रद परमेश्वरका अनुसन्धान न करके (वागादि) युद्ध करनेको जो चाहता है उसका सर्वस्व बलात्कारसें लेकरके स्तुति करनेवाले और ईश्वरयजन करनेवाले अधिकारियोंको में अर्पण करदेताहुं॥१०॥

२५. ७ ७ १७ यस्यानक्षादुहिताजात्वासकस्ताँविद्वाँअभिमन्यातेअन्धाम्।
कतरोमेनिंप्रतितंमुंचातेयईवहातेयईवावरेयात्॥११॥

यस्येन्द्रस्य मम कारणरूपेणावस्थितस्य अनक्षा अक्षिवर्जिता दर्शनहीना अचेतनेत्यर्थः दुहिता प्रकृत्याख्या जातु कदाचित् आस-महाप्रलये मय्येव लीना सती सर्वत्र वर्तते। तां प्रकृतिं विद्वान् मय्येवलीनां जानन् मत्तोन्योदेवःको भवति नकोपीत्यर्थः। अपिच अंधां दर्शनहीनामचेतनां तां अभिमन्याते आत्मन्याश्रयप्रदानेन कोदेवोभिपूजयति, यद्वा क्षीरोदकवत् घटाकाशवच्च मया सहैकीभूतां तां आभिमुख्येन कोजानाति अहमेव सर्वज्ञः स्वात्मन्याश्रयप्रदानेनाभिपूजयामि मया सहैकीभूतां तां तत्त्वतोहमेव जानामि नान्यइति। किञ्च कतरोदेवः मेनिं वज्रं प्रसिद्धं वृत्रादिशत्रुं प्रतिमुचाते मुंचति, स्वयमेव प्रश्नमुत्थाप्येदानीं प्रतिब्रूते-योदेवईमेनं शत्रुं वहाते वहति अपिवा यईमेनं वरेयात् वारयितुमिच्छति सचाहमेव नान्योमत्सदृशोस्तीत्यर्थः॥ ११॥

अनुवाद-कारणरूपसें सर्वत्र अवस्थित परमात्मस्वरूप जो मे हुं उसकी (मेरी) दुहिता वशवर्तिनी अचेतन प्रकृति है सो महाप्रलयमें मेरे स्वरूपहीमें लीन होती है, उस प्रकृतिको "मेरी भीतर लीन होतीहै" ऐसा जाननेवाला मुझसें अन्य दुसरा कोइ है नहिं यानें प्रकृतिको अपने स्वरूपमें अन्तर्गत समझनेवाला आत्मज्ञ कहाजाता है, और "ब्रह्मवेद ब्रह्मैवभवति" इस् नियमसें वह आत्मज्ञ परब्रह्मरूपसें अवस्थित होताहै। और अचेतन उस प्रकृतिको निज स्वरूपमें आश्रय देकर कौन देव सत्कार करसकताहै? अथवा नीर और क्षीरकी तरह और घटआकाशकी तरह किंवा घटाकाशमहाकाशकी तरह मेरे स्वरूपसें एकीभावको पाइ हुइ इस् प्रकृतिको (उससें संबन्ध होनेपरभी निर्लेपरूपसें) कोन जानसकताहै? यानें में ही सर्वज्ञ जो परमेश्वर हुं सो निज स्वरूपमें आश्रय देकर उसको तात्त्विकरूपसें जानताहुं, दूसरा (अज्ञ) जान सक्तानहिं. और मुझसे अतिरिक्त कौन देव वृत्रादिक शत्रु (कामादिक) को नाश करनेके लिये (विवेकरूप) वज्रको लेकर उपयोग करसकताहै? स्वयंही प्रश्न करके उत्तर देते हैं की— जो देव इन (कामादिक) शत्रुओंको वहन करताहै अथवा निवारण करताहै सो मैंही हुं. मेरे सिवाय दूसरेकी वैसी शक्ति नहिं. ॥ ११ ॥

४६. ७ ७ १७ कियतीयोषामर्यतोवधूयोःपरिप्रीतापन्यसावार्येण।

भद्रावधूर्भवतियत्सुपेशाःस्वयंसामित्रंवनुतेजनेचित् ॥१२॥

कियती किंपरिमाणा योषा स्त्रीजातिः मर्यतो मनुष्यसंबंधिनो भोगानाचरतः वधूयोः स्त्रीकामस्य सर्वात्मकस्यान्तर्यामिरूपेणावस्थितस्येन्द्रस्य परिप्रीता अनुरक्ता वशवर्तिनीत्यर्थः। कीदृशस्य वार्येण वरणीयेन पन्यसा स्तोत्रेण स्तुतस्य सतइतिशेषः। अपिच यत् या वधूः भद्रा कल्याणी सुपेशाः शोभनरूपा च भवति सा द्रौपदीदमयन्त्यादिका वधूः स्वयमात्मनैव जने चित् जनमध्येऽवस्थितमपि मित्रं प्रियमर्जुननलादिकं पतिं वनुते याचते स्वयंवरधर्मेण प्रार्थयते, सच प्रीयमाणो वरजनोऽहमेवेत्यभिप्रायः। "रूपंरूपंप्रतिरूपो बभूवेति" (ऋ. सं. ४-७ ३३) मन्त्रलिंगात्सर्वात्मकत्वादिति ॥१२॥

अनुवाद–मनुष्यसम्बन्धि भोगोंका निष्पक्षपातसें उपभोग करनेवाले और वरणीयपरमयोग्य स्तोत्रसें स्तुत्य याने स्तुति किये जाते सर्वात्मक और अन्तर्यामि स्वरूपसें सर्वत्र अवस्थित इस् परमेश्वरको स्त्रीविषयक अभिलाष जब हुवा तब उनको वशवर्तिनी याने उनके अधीन रहनेवाली और उनके उपर परम अनुरक्त होती हुइ कितनी स्त्रीयाँ उपलब्ध होतींहै ? जो स्त्री परमकल्याणवाली होकर सौन्दर्यवाली हो, जैसे द्रौपदी दमयन्ती सीता इत्यादिक स्वयंखुद जनसमूहमें बैठे हुवे अर्जुन नल श्रीरामचन्द्र इत्यादिक को प्रियपति बनानेको स्वयंवर धर्मसें प्रार्थना कररहीहैं, यानें उन् पुरुषोंमें वैसा शोभनांश जो है सो मैंही हुं- श्रीकृष्ण भी कहेतें हैंकी "यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेववा, तत्तदेवावगच्छत्वंममतेजोंऽशसंभवम्" लोकमें जितनें पदार्थ सकलप्रकारसें उत्कृष्टतरहै वे मेरे दिव्यतेजके अंशवालेंहैं ऐसा तुम जानो. तो द्रौपद्यादिकको वरणीय और प्रेमपात्र जो अंश देहेन्द्रियादिसंघातमे प्रतीत हुवा वह अंश में ही हुं. यह इस मन्त्रका भावहै. (ऋ. सं. ४-७-२३) श्रुतिनेभी कहाहै की "प्रत्येक पदार्थोंमें अनुस्यूत बनके यह (परमात्मा) रहाहै याने सर्वात्मक सर्वस्वरूप है॥१२॥

२७. ७ ७ १९ सातेजीवातुरुततस्यंविद्धिमास्मैतादृगपगूहःसमर्ये।
आविःस्वःकृणुतेगूहतेबुसंसपादुरस्यनिर्णिजोनमुच्यते॥२४

अत्रान्तरात्मनेन्द्रः स्तूयते–हे अन्तरात्मन् तेतव सा तादृशी आदित्यात्मिका देवता जीवातुः जीविका जीवनहेतुः, उतापिच तस्यादित्यस्य च एतादृक् ईदृशं स्वरूपं समर्ये, संग्रामवाची समर्यशब्दोऽत्र यज्ञवाची, यज्ञे विद्धि जानीहि, स्तुत्यत्वेनेतिशेषः। मास्मापगूहः माखल्वपह्नुणोः। किञ्च निर्णिजः सर्वस्य शोधयितुरस्यादित्यस्य सपादुः तच्च पादनं गमनं रश्मिद्वारेण गत्वा स्वः सर्वं त्रैलोक्यं आविष्कृणुते प्रकाशीकरोति। बुसमुदकं गूहते संवृणोति आदत्ते इत्यर्थः। अह्नै प्रयोजनद्वयायादित्येन निर्वेदनात् श्रमेणवा गमनं न मुच्यते नकदाचित्परित्यज्यत इत्यर्थः॥ २४॥

अनुवाद–इस् मन्त्रमें अन्तरात्मस्वरूपसे इन्द्रकी स्तुति करतेंहै–हे अन्तरात्मन् ? आदित्यस्वरूप देवता सो तुमारे जीवनमें हेतुभूत है. सूर्यके उस स्वरूपको यज्ञमें तुम स्तुति करने योग्य समझो, उस सूर्यका अपवारण अन्तर्धान

मत करो, जो सूर्य रश्मिद्वारा त्रिलोकीमें गमन करके सकल पदार्थोंको प्रकाशित करतेहैं, और अपनें किरणोद्वारा जलको ग्रहण करतें हैं, सूर्य इन दोनो प्रयोजनके लिये याने-प्रकाश और जलग्रहण करनेके लिये परिश्रमपूर्वक गमन करतें हैं, किसी समयभी अपनी सतत गतिको छोडतें नहिं ॥ २४ ॥

४८. ८ १ २० यत्तेयमं वैवस्वतं मनोजगाम दूरकम् ।
तत्त आवर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १ ॥

यत्तेयममिति द्वादशर्चं षोडशं सूक्तं आनुष्टुभं बन्ध्वादयऋषयः सुबन्धुदेहान्निर्गतस्येन्द्रियवर्गसहितस्य मनसः पुनस्तस्मिन्प्रवेशनार्थमिदं सूक्तं दृष्ट्वाऽपश्यन् इत्यादि.

पुरुषस्य म्रियमाणस्य मनोनाम महद्भूतं बहुधा विशिर्णंभवति, तस्यपुनः संभरणमत्रोच्यते-हे म्रियमाण पुरुष तेतवमनोवैवस्वतं विवस्वतः पुत्रं यमं दूरकं अत्यन्तं दूरं यथाभवति तथा जगाम; ते तव तन्मन आवर्तयामसि आवर्तयामः किमर्थं इह क्षयाय इह लोके निवासाय जीवसे चिरकालजीवनाय ॥ १ ॥

अनुवाद.-बन्ध्वादिक तीन भाइ थे उनमेंसें सुबन्धुनामक भ्राता के स्थूल शरीरमेंसे इन्द्रिसमुदायसहित मन उपलक्षित लिंगशरीर निकलकरके परलोकमे जब चला गया तब दूसरे भाइओंने आत्माको अविनाशी और विभु समझके उसी मृत शरीरमे वापस बुलाया है सो कथा अग्रिम मन्त्रोंसें कहतें हैं—हे म्रियमाण मरनेवाले पुरुष? तुमारा मन सूर्यके पुत्र यमराजके पास अत्यन्तदूर पहुंचा हो तो उस मनको इस् लोकमे चिरकाल पर्यन्त निवास करनेको याने जीवन भोगनेको (हंम) बुलातें है. ॥१ ॥

४९. ८ १ २० यत्ते दिवं यत्पृथिवींमनोजगाम दूरकम् ।
तत्त आवर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ २ ॥

हे सुबन्धो यन्मनोदिवंजगाम, यच्च पृथिवीं दूरकं, दूरकमिति क्रियाविशेषणं, तदिह निवासाय जीवनाय चावर्तयामः ॥ २ ॥

अनुवाद.-हे सुबन्धो? अगर तुमारा मन स्वर्गमें अथवा पृथ्वीमें दूर गया हो तोभी इसी जगापर निवासके लिये और चिरकाल जीवन धारण करनेको हम बुलातें है ॥२॥

५०. ८ १ २० यत्तेभूमिंचतुर्भृष्टिं मनोजगामदूरकम् ।

तत्तआवर्तयामसीहक्षयायजीवसे ॥ ३ ॥

हे सुबन्धो यन्मनोभूमिं चतुर्भृष्टिं चतुर्दिक्षु भ्रंशो यस्याः सा ता जगाम तदावर्तयामः ॥ ३ ॥

अनुवाद–हे सुबन्धोः अगर तुमारा मन सकल दिशापर्यन्त पृथ्वीमें गया हो तोभी उसको वापस बुलाते है. ॥ ३ ॥

५१. ८ १ २० यत्तेचतस्रःप्रदिशोमनोजगामदूरकम् ।

तत्तआवर्तयामसीहक्षयायजीवसे ॥ ४ ॥

हे सुबन्धो, यत्तेमनः प्रदिशः प्रकृष्टामहादिशः चतस्रोजगाम, तदावर्तयामः ४॥

अनुवाद–हे सुबन्धो ? अगर तुमारा मन पूर्वपश्चिमादिक महादिशा-ओंमें गयाहो तो उसको हम यहा वापस जीवनार्थ बुलातेंहैं ॥ ४ ॥

५२. ८ १ २० यत्तेसमुद्रमर्णवंमनोजगामदूरकम् ।

तत्तआवर्तयामसीहक्षयायजीवसे ॥ ५ ॥

हे सुबन्धो, यत्तेमनः अर्णवंउदकं तद्वन्तं समुद्रं मेघं वा जगाम तदिति गतं५।

अनुवाद–हे सुबन्धो ? अगर तुमारा मन जलवाले पदार्थ समुद्र अथवा मेघ मंडलमें गया होतो उसको हम इस् जगे निवासार्थ वापस बुलातेंहैं ॥ ५ ॥

५३. ८ १ २० यत्तेमरीचीः प्रवतो मनोजगाम दूरकम् ।

तत्तआवर्तयामसीहक्षयायजीवसे ॥ ६ ॥

हे सुबन्धो यत्तेमन प्रवत॰ प्रगच्छन्तीर्मरीचीर्दीप्तीर्जगाम तदितिगत ॥६ ॥

अनुवाद–हे सुबन्धो ? अगर तुमारा मन सर्वत्र व्याप्त होनेवाली कान्तिमें गयाहो तो तुमको इस् जगे वापस हम बुलाते है. ॥ ६ ॥

५४. ८ १ २१ यत्तेअपोयदोपधीर्मनोजगामं दूरकम् ।

तत्तआवर्तयामसीहक्षयायजीवसे ॥ ७ ॥

अनुवाद-हे सुबन्धो ? अगर तुमारा मन जलमें या ओषधिमें दूर गया हो तो उस मनको हम यहां निवासकेलिये वापस बुलातें हैं.॥७॥

५५. ८ १ २१ यत्तेसूर्यंयदुपसंमनोजगामंदूरकम् ।

तत्तआवर्तयामसीहक्षयायजीवसे ॥८ ॥

अनुवाद-हे सुबन्धो ? अगर तुमारा मन सूर्यमें अथवा प्रातःकालादि समयमें दूर गया हो तो हम उसको वापस बुलातें हैं. ॥ ८ ॥

५६. ८ १ २१. यत्तेपर्वतान्बृहतोमनोजगामंदूरकम् ।

तत्तआवर्तयामसीहक्षयायजीवसे ॥ ९ ॥

अनुवाद-हे सुबन्धो ? अगर तुमारा मन बडे; बडे पर्वत हिमालयादिकमें दूर गया हो तो उसको हम वापस बुलातें हैं. ९ ॥

५७. ८ १ २१ यत्तेविश्वमिदंजगन्मनोजगामंदूरकम् ।

तत्तआवर्तयामसीहक्षयायजीवसे ॥ १० ॥

अनुवाद-हे सुबन्धो ? अगर तुमारा मन इस् समग्र जगतमें कहींभी गया हो तो उसको हम बुलातें हैं.॥ १० ॥

५८. ८ १ २१ यत्तेपराःपरावतोमनोजगामंदूरकम् ः

तत्तआवर्तयामसीहक्षयायजीवसे ॥ ११ ॥

हे सुबन्धो यत्ते मनः पराः परावतः अत्यन्तं दूरदेशात् जगाम तदिति गतं ॥ ११ ॥

अनुवाद-हे सुबन्धो ? अगर तुमारा मन अत्यन्त दूर देशमें गया हो तो उसको हम वापस बुलातें हैं. ॥ ११

५९. ८ १ २१ यत्तेभूतंचभव्यंचमनोजगामदूरकम् ।

तत्तआवर्तयामसीहक्षयायजीवसे ॥ १२ ॥

हे सुबन्धो यत्ते मनोभूतंचभव्यंचेत्यनेन भूतभव्यात्मकव्यतिरेकेण कस्य-चिदभावाद्वर्तमानस्य पृथगेवाभिधानात् कृत्स्नंप्रपंचमुक्तं भवति, तत्र सर्वत्र गतं मनो जीवनाय निवासायचावर्तयामः ॥ १२ ॥

अनुवाद-हे सुबन्धो? अगर तुमारा मन भूत भविष्यत् और वर्तमान कालमें अवस्थित प्रपञ्चके किसी पदार्थमें गयाहो तो उसको हम जीवनार्थ इस् लोकमें निवास करनेको वापस बुलाते है. ॥ १२ ॥

६०. ८ २ २४ सर्वेनन्दन्तियशसागतेनसभासाहेनसख्यासखायः

किल्बिषस्पृत्पितुषणिर्ह्येषामरंहितोभवतिवाजिनाय ॥१० ॥

अध्यात्मरीत्या रावणभाष्यं-यशसापरमात्मना आगतेन प्राप्तेन सर्वे-जीवाः नन्दंति, परमानन्दं प्राप्नुवन्ति. यथा नृपशुपक्षिप्रभृतयः सर्वेजीवाः सुषुप्ति-समये परमसुखिनो भवन्ति तद्वदात्मप्राप्तावित्यर्थः। किंभूतेन यशसा सभासाहेन समांस्तेजोरूपानर्थप्रकाशकान् चक्षुरादीन्सहते आक्रमतेसतथा। पुनः कथंभूतेन सख्याउपकारकेणापि विषयभोगनिमित्तत्वेनेत्यर्थ। किंभूताः जीवाः सखायः समान-ज्ञानाः सदृशसुखानुभवाः अथैषांजीवानां मध्ये यःपितुषणिः पितुरित्यन्ननाम पितुः सुनोति सपितुषणिः केवलमुदरंभरः सकिल्बिषस्पृक् दुःखभागी भवति। हि यस्मात् कारणात् अरमत्यर्थं वाजिनाय इन्द्रियवीर्याय हितः तत्परोभवति. अथैतदुक्तं भवति सुखशब्दव्यपदेश्यं आत्मसुखमेव सुखं, इन्द्रियसुखंतु दुःखपक्षान्तर्भूतमि-त्यर्थः ॥ १० ॥

अनुवाद-इस् मन्त्रका अध्यात्मविषयक रावणभाष्य-" न तस्य प्रति-मास्ति यस्य नाम महद्यशः " उस् परमेश्वरका परिमाण-परिच्छेद है नहिं, के जिसका नाम " महत् " " यशः " ऐसा है, इस् वेद वाक्यके अनुसार "यशस् शब्दका अर्थ परमेश्वर होताहै. जैसें मनुष्य पशु पक्षी इत्यादिक प्राणी सुषुप्ति अवस्थामें परम सुखी होतें हैं तैसें ही इस् " यशः " शब्दवाच्य परमेश्वरसें

तादात्म्यअभेदपाकरके निरतिशय आनन्दको अनुभवतें हैं, की जो परमात्मा (" गृहीता वाग् गृहीतं चक्षुः " (बृ. २-१-१७) उस् सुषुप्तिके समयमें वागादिक इन्द्रियें अपने कारणमें लीन होनेमें उस् समय आत्मा स्वयं एकही अवशिष्ट रहता है इत्यादिक श्रुतिसें) तेजो रूप और अर्थ पदार्थको प्रकाश करनेवाले चक्षुरादिक करणोंका आक्रमण करनेवाला याने नियन्ता है. और स्वयं अपनी चैतन्य शक्तिकी सहायता देकरके तत्तदिन्द्रियद्वारा जीवात्माके विषय भोगमें उपकारक बनता है. और वहजीवभी उस् परमेश्वरके समान ज्ञानवाले याने तुल्यसुखानुभव वाले है. इन् जीवोंकी मध्यमें कोइ जीव अगर उदरंभर याने सिर्फ अपने पेटभरनेंहीमें सावध हो तो वह दुःखभागी बनता है. क्योंकी उदरपोषणहीमें तत्पर जो जीवहै सो इन्द्रियोंको प्रबल बनानेमें मुस्तेइद है, और इन्द्रियवर्ग प्रबल होनेंसें विषय लंपट होकर अधः पातको पाताहै. यानें निरतिशय निर्विशेष अखंडित जो आत्मसुख है वही सत्य सुख है और इतर वैषयिकइन्द्रिय व्यापार जन्य जो सुखहै सो सुखाभास होकरके दुःखरूपहीहै ॥१०॥

६१. ८ ३ १ ॐम्देवानांनुवयंजानाम्प्रवोचामाविपन्यया ।
उक्थेषुशस्यमानेषुयःपश्यादुत्तरेयुगे ॥ ॥ १ ॥

अदितिर्दाक्षायण्यनेन सूक्तेन स्वयं यथादित्यानजनयत् तद्ब्रवीति, बृहस्पतिऋषिपक्षे सऋषिः अदितेः सकाशात् आदित्योत्पत्तिप्रकारमाह, वयंदेवाना मादित्याना जाना जन्मानि प्रवोचाम प्रकथयाम, विपन्यया विस्पष्टया वाचा, वयमिति वोचामेति चोभयत्र पूजार्थं बहुवचन । अथैकवदाह योदेवानांगण. पूर्वेयुगे उत्पन्नोपि उक्थेषु शस्यमानेषु यागे शस्त्रेष्वनुष्ठीयमानेषु उत्तरे युगे वर्तमानं स्तुवन्तं स्तोतारं पश्यात् पश्यति अनेकेष्वपि युगेषु गतेषु कर्मसु स्तूयमानोवर्तत इत्यर्थः ॥ १ ॥

अनुवाद–दाक्षायणी अदितिनें जैसें आदित्य–देवोंको प्रकट किये सो इन् मन्त्रोंसे कहतीहै. बृहस्पति ऋषिके पक्षमें वह ऋषि अदितिसें आदित्यप्रादुर्भावका प्रकार कहते हैं. हम देवोंका जन्म स्पष्टवाणीसें कहते है की–जो देवसमुदाय पूर्व युगमें आविर्भूत होनेपरभी यज्ञयागादिकर्मे शस्त्रानुष्ठान प्रवृत्त होता हैं तब उत्तर युगमें वर्तमान अपनी स्तुति करनेवाले को देखता है, यानें

अनेक युग व्यतीत होजानेपरभी कर्मके प्रसंगमें जो देवगण स्तूयमान होता है उस् देव गणका प्रादुर्भाव हम कहतेहैं. ॥ १ ॥

६२ ८ २ १ ब्रह्मणस्पतिरेतासंकर्मारइवाधमत् ।
देवानांपूर्व्येयुगेऽसतःसदजायत ॥ २ ॥

ब्रह्मणोऽन्नस्य पतिरदितिः एताएतानि देवाना जन्मानि कर्मार इव सयथा भस्त्रया अभिमुपधमति प्रज्वलनार्थम् एव समधमत् उदपादयदित्यर्थ. । देवाना पूर्व्ये युगे आदिसृष्टावित्यर्थः तेषामुपादानकारणादसतो नामरूपवर्जितत्वेना-सत्समानाद्ब्रह्मणः सकाशात् सत् नामरूपविशिष्ट देवादिकमजायत प्रादुरभूत् । "असद्वाइदमग्र आसीत्ततोवैसदजायते" तिहिश्रुतिः (तैत्तिरीय २-७)—न सदा-त्मकस्य प्रपंचस्यासत् कारणत्वं युक्तमितिवाच्यं, छंदोगैः "कथमसतः सज्जायेत" इत्यसत्कारणत्वमाक्षिप्य "सदेवसोम्येदमग्रआसीदित्यवधारितत्वात्" (छा. ६-२-२, ६-२-१) । तर्हि असत्कारणप्रतिपादकवाक्याना कागतिरिति चेत् तेषाम-व्याकृतत्वाभिप्रायत्वात् "तद्धेदंतर्ह्यव्याकृतमासीदि" त्यादिश्रुतेः। (बृ. उ० १-४-७) यद्येवं तर्ह्यदितेः सकाशात्कथं देवाद्युत्पत्तिः ? वायोरग्निरित्यादिवत् अधिष्ठानसकाशादुत्पत्तेः. यद्वादेवाना कारणभूतं सदसतोर्ब्रह्मणः सकाशादुत्पन्न मिति योजनादुक्तन्यायोस्मिन्पक्षेपिसमानएव ॥ २ ॥

अनुवाद—लोहकार जैसें भस्त्रा धमनीद्वारा अग्निको धमन करके (अपनें कारणमें विशेष रूपसें) अभिव्यक्त करताहै तैसेही अन्नपालन करने-वाली अदितिनेभी आदिसृष्टिमें देवोंका प्रादुर्भाव किया । व्यवहारका अविषय होनेंसे असद्रूप उपादान कारण जो ब्रह्महै उससें सत् याने व्यवहारके विषयभूत नामरूपविशिष्ट देवादिकसमुदाय प्रादुर्भावको प्राप्त हुवा. श्रुतिभी कहती हैकी "सृष्टिके प्रथम भागमें यहसब असद्रूपहीथा" उससें "सत्" का प्रादुर्भाव हुवा है । छान्दोग्यमें कहा हैकि "असत् पदार्थसें सत्पदार्थका प्रादुर्भाव कैसे होसका ?" ऐसा कहेकरके असत् पदार्थका कारणभाव बाधित करके "सदेवसौम्येदमग्र आसीत्" हे सौम्य ? यह प्रथम सद्रूपहीथा, ऐसा सद्रूप पदार्थको कारण बतानेंसे व्यवहारसमयमें सत्त्वरूपसें प्रतीयमान यह प्रपञ्च असत्कारणक नहि हैं, याने असत् कोइ कारणसें यह जगत् प्रादुर्भावको पाया

हुवा नहिं। अगर ऐसा कहा जायकी पूर्वोक्त मन्त्र " असद्वा इदमग्र " इसकी क्या गति होगी ? यानें एक वाक्यमें " असत् " को कारण बतलाया है और " सदेवसौम्येदमग्र " इस् वाक्यमें " सत् " को कारण कहाहै तो यह वेद वाक्यका परस्पर विरोध कैसे उद्धृत होगा ? तो समाधान यहहैकी इस वाक्यमें " असत् " पद अव्याकृतका वाचकहै. श्रुतिभी कहती हैकी "तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत् सृष्टिके प्रथम समयमें सकल विश्व अव्याकृत रूपहीथा " यानें यह समस्त प्रपञ्च सत् कारणक होनेपरभी नामरूपसें अव्याकृत रूपही में था ऐसा कहनेसें " असत् " और " सत् " को कारणतामें जो विरोध बतायाथा सो अकिंचित्करहै यानें सो विरोध है ही नहिं। अगर ऐसा कहा जायकी जब सद्धेतुक प्रपंच है तब अदितिसें सकल देवगणका प्रादुर्भाव कैसें हुवा ? तो समाधान ऐसा हैकी जैसें सकल प्रपंचका परम कारण परमात्मा है तथापि " आकाशसें वायु और वायुसे तेज और तेजसें जल इत्यादिक सृष्टि बताइहै तैसे परम कारण " सत् " है तथापि गौण कारण अदिति है ऐसा समझनेंसें व्याख्यान निर्दोष है. अथवा देवोंका कारणभूत जो " सत् " व्य-वहार विषयक पदार्थ है सो " असत्" यानें व्यवहारागोचर परब्रह्मसें प्रादुर्भूत हुवा ऐसा कहेनेमेंभी निर्दोष है. ॥ २ ॥

६३. ८ ३ १ देवानांयुगेप्रथमेसतःसदजायत ।

तदाशाअन्वजायन्ततदुत्तानपदस्परि ॥ ३ ॥

पूर्वार्धमुक्तं त दन्वाशादिशो जायन्त, तत्परि तदान्वित्यर्थः उत्तानपदः उत्तानमूर्ध्ववितानं पद्यन्ते इत्युत्तानपदो वृक्षाः ते अजायन्त प्रादुरभवन् ॥ ३ ॥

अनुवाद–पूर्वार्द्ध पूर्व मन्त्रकी तरह है याने अव्याकृतसें नामरूपसहित प्रपंच उत्पन्न हुवा, अदितिसें देवादिक प्रादुर्भूत होनेके बाद दिशायें उत्पन्न हुइ. और उसके बाद वृक्ष प्रादुर्भूत हुवे ॥ ३ ॥

६४. ८ ३ १ भूर्जज्ञउत्तानपदोभुवआशाअजायन्त ।

अदितेर्दक्षोअजायतदक्षाद्वदितिःपरि ॥ ४ ॥

भूरुत्तानपदोवृक्षान् जज्ञे, तथा भुवः सकाशादाशाअजायन्त, तथा अदिते र्दक्षः अजायत उत्पन्नः दक्षाद् दक्षादपि अदितिः पर्यजायत, न स्वोतनं कार्यं स्व-

स्यैव कारणमपिमवतीति विप्रतिषिद्धमइति वाच्यं, यास्काचार्यः इदमेव वाक्यमुदाहृत्य विरोधमाशंक्य पर्यहरत् तथाहि–अदितेर्दक्षोजायत दक्षाद्वा अदितिः परीतिच, तत्कथमुपपद्येत समानजन्मानौस्यातामित्यपिवा देवधर्मेणेतरेतरजन्मानौ स्यातामितरेतरप्रकृती इति ॥ ४ ॥

अनुवाद–पृथ्वीनें वृक्षोंको उत्पन्न किये. और अन्तरिक्षसें दिशायें उत्पन्न हुइ. और अदितिसें दक्ष उत्पन्न हुवे, दक्षसें अदिति उत्पन्न हुइ. यद्यपि अपनेंसें उत्पन्न होनेवाले कार्य अपना कारण नहि होता यानें जो जिसका जन्य है वही पदार्थ उसका जनक (उत्पादक) नहि होसक्ता तथापि यास्काचार्यनें इस विरोधका परिहार इस तरहसें कियाहै की दक्ष और अदिति समानजन्मवालेथे अथवा देवधर्मद्वारा परस्पर जन्मवालेथे परस्पर प्रकृतिवाले थे, यानें "दक्ष" नामक किसी व्यक्तिसें अदितिका प्रादुर्भाव हुवा और "अदिति" नामक किसी व्यक्तिसें "दक्ष उत्पन्न हुवा अथवा किसी कालमें यानें पूर्व कल्पमें अदितिसें दक्ष हुवें और इतर कल्पमें दक्षसें अदिति उत्पन्न हुइ. अथवा दक्षोपलक्षित सोपाधिक चेतन अदिति उपलक्षित सोपाधिक चेतनसें अभिव्यक्त यानें "उत्पन्न" शब्दसें व्यवहियमाण हुवा और अदिति उपलक्षित सोपाधिक चेतन दक्षोपलक्षित सोपाधिक चेतन से "उत्पत्ति" शब्दसें व्यवहारविषय हुवा ऐसा माननेंसे विरोध है नहिं. ॥ ४ ॥

६५. ८ ३ १ अदितिर्ह्यजनिष्टदक्षयादुहितातव ।
तांदेवाअन्वजायन्तभद्राअमृतबन्धवः ॥ ५ ॥

हे दक्ष या तव दुहिताभूत् सा अदितिरजनिष्ट हि पुत्रानादित्यान्। तदेवाह तांदेवाअन्वजायन्त, भद्राः स्तुत्या भजनीया अमृतबन्धवः अमरणबन्धनाः ।५।

अनुवाद–हे दक्ष ! जो तुमारी अदिति नामक पुत्री है उससें मरण रहित और भजन सेवन करनें योग्य आदित्यनामक देव प्रादुर्भूत हुवे ॥ ५ ॥

६६. ८ ३ १६ यइमाविश्वाभुवनानिजुह्वदृषिर्होतान्यसीदत्पितानः ॥
सआशिषाद्रविणमिच्छमानःप्रथमच्छदवराँआविवेश ॥१॥

यो विश्वकर्मा परमेश्वर इमा विश्वा भुवनानि जुह्वत्, प्रलयकाले पृथिव्यादीनिमान्सप्तलोकान् स्वात्मन्याहुतिप्रक्षेपवत् संहरन्, ऋषिरतीन्द्रियद्रष्टा सर्वज्ञो होता संहाररूपस्यहोमस्यकर्ता नोस्माकंपिता जनको निषसाद स्वयं स्थितवान्। अयमर्थः-प्रलयकाले प्राप्तेसति सर्वान् लोकान् संहृत्यास्माकमपि संहर्ता पुनः स्रष्टा च सन् सर्वज्ञो यः परमेश्वरः स्वयमेकएवासीत्। तथाह्रुवतेहिश्रुतयः–" आत्मावाइदमेकएवाग्र आसीत् " (ऐ. उ. १-१) " सदेवसोम्येदमग्रआसीदित्यादिकाः" (छां, ६-२-१) । सतादृशः परमेश्वरः आशिषा बहुः स्यांप्रजायेयेत्येवंरूपया पुनः पुनः सिसृक्षया द्रविणमिच्छमानः धनोपलक्षितं जगद्भोगमाकांक्षमाणः प्रथमच्छत् प्रथममुख्यं निष्प्रपंचं पारमार्थिकं रूपमावृण्वन्, अवरान् स्वसृष्टान् प्राणिहृदयप्रदेशानाविवेश आविष्टवान् जीवरूपेण। तथाचश्रूयते " सोकामयत बहुः स्यांप्रजायेयेति सतपोतप्यत सतपस्तप्त्वा इदंसर्वमसृजत यदिदंकिंच तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशदिति " (तै. उ. २-६) ॥ १ ॥

अनुवाद–जो परमात्मा समग्रब्रह्माण्डको यानें पृथिव्यादिक सप्त लोकोंको स्वस्वरूपमें आहुतिके प्रक्षेपकीतरह प्रलयकालमें लीन करता है. अतीन्द्रिय पदार्थोंके ज्ञानवाला सर्वज्ञ, संसारका संहार रूप होम (अपनें स्वरूपमें) करनेवाला हमारा (प्राणिमात्रका) जनक स्वयं सर्वदा अवस्थित हैं. यानें प्रलयकालमें सकलविश्वका संहार करके हमारा भी संहार करनेवाला और फिरसें (अपनी भीतरहीसें) सर्वको उत्पन्न करनेवाला स्वय एकही है. याने किसी की सहायता न लेकरकेभी यथास्थित विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कररहाहै। श्रुतिभी "प्रथम (सृष्टिके पूर्व) आत्मा एकहीथा" और "यह नामरूपात्मक प्रपंच भी प्रथम सद्रूपही था " इत्यादिक प्रतिपादन करती है। वैसा परमात्मा " मैं अनेक रूप होजाउ " ऐसी सृष्टि करनेकी इच्छासें धनोपलक्षित प्रपंचके भोगोंको चाहता हुवा अपने पारमार्थिक निष्प्रपंच स्वरूपको (अपनी शक्तिरूप मायासें) आवृत करके अपनी मायाद्वारा निर्माण किये हुवे प्राणी मात्रके हृदयप्रदेशमें जीव स्वरूपसें आविष्ट–प्रविष्ट हुवा। श्रुतिभी कहती हैकी–"वह परमात्माने संकल्प

किया की में अनेकरूप होजाउं. वह परमात्मा (आलोचनात्मक) तपश्चरण करनें लगा और वैसा तपश्चरण करके इस प्रपंचकी सृष्टि करनें लगा. इस प्रपंचको उत्पन्न करके उसी प्रपंचके भीतर स्वयंही अनुप्रविष्ट याने प्रतीत हुवा।" ऐसें, औरभी श्रुति इस अर्थसें संगत होती है. ॥१॥

६७. ८ ३ १६ किंस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणंकतमत्स्विंत्कथासीत्।
यतोभूमिंजनयन्विश्वकर्माविद्यामौर्णोन्महिनाविश्वचक्षाः॥२॥

पूर्वमंत्रे जगत्प्रलयकाले संहृत्य, पश्चात्सिसृक्षायां सर्वं सृष्ट्वा तत्र प्रविष्ट इत्युक्तं अत्र तस्य द्वितीयस्याधिष्ठानं जगदुपादानकारणाद्यसंभवात् सृष्टिरनुपपन्नेत्याक्षिपति। लोके हि घटं चिकीर्षु कुलालो गृहादिकं किंचित्स्थानमधिष्ठाय, मृद्रूपेणारंभकद्रव्येण चक्रादिरूपैरुपकरणैर्घटं निष्पादयति, तद्वदीश्वरस्य जगदाश्रयद्यावापृथिव्योरुत्पादनवेलायामधिष्ठानं किंस्विदासीत् किंनामाभूत् न किंचिदित्यर्थः, तथा तयोरारंभणं कतमत्स्वित्, आरभ्यते अनेन इति आरंभण उपादानकारणं तदपि कतमद्भवेत् तदपि नेत्यर्थः यद्यपि संभवेदारंभणं कथासीत् कथमभूत् किं स्वयं सदसद्वाभवेदित्यर्थः उभयमपिनोपपद्यते, सच्चेदद्वैतभंगप्रसंगः असच्चेत्सदारंभकयोर्द्यावापृथिव्यो रुपादानानर्हत्वात् "नान्यत् किंचनामिषदि" त्यादि (ऐ-१-१) श्रुतेश्चेत्यभिप्रायः। यतो यस्मादधिष्ठानादारंभणाच्च विश्वचक्षाः सर्वद्रष्टा विश्वकर्मा परमेश्वरोभूमिंजनयन् वर्तते, तथा द्यां दिवं व्यौर्णोत् व्यवृणोत् सृष्टवान्, महिना स्वमहत्त्वेन किंस्विदासीदिति ॥ २ ॥

अनुवाद—"प्रलय समयमे जगत्को प्रलीन करके फिरसें सृष्टि करनेंके प्रसंगमें सकल प्रपंचको उत्पन्न करके उसमें वह परमात्मा प्रविष्ट हुवा" ऐसा पूर्व मन्त्रमें कहा, उसमें प्रपंचरूप कार्यका अधिष्ठान क्या था? और उसका उपादान कारण कौन था? क्योंकी "अधिष्ठान और उपादानके सिवाय किसी कार्यकी रचना हो सक्ती नहिं", इत्यादिक पूर्व पक्षरूपसें इस मन्त्रमें प्रतिपादन करतें है. जैसें लोकमें घटको निर्माण करनेंकी इच्छावाला कुम्भकारादिक गृहादि किसी

स्थानमें अधिष्ठित होकरके यानें रहेकरके मृत्तिकारूप आरम्भक द्रव्योंसे दण्डचक्र-चीवरादिसाधनद्वारा घटको बनाता है, तैसेंही इस परमात्माको प्रपंचका आश्रयरूप आकाश पृथिव्यादि भूतोंको उत्पन्न करनेंके समय अधिष्ठान (गृहादि) क्या था ? (यानें कुछभी नहि था, क्योंकी आकाशादिक भूत रहे सकें वैसा गृह आकाशादिककी पहिलें कैसे हो सक्ता? जितना अन्य पदार्थ है वह सब आकाशादिक भूतोंहीसें तो उत्पत्तिको पायाभया उपलब्ध होताहै) उसी तरह आकाशादिकका आरम्भक उपादान कारण (उस समयमें) कौन था? यद्यपि उपादान कारण होसक्ताहै लेकिन सत् और असत् को छोडकरके दूसरा नहि होसक्ता, सत्को उपादान कहनेंसें अद्वैत सिद्धान्तका भग होताहै. क्योंकी "एक परमात्मा और दूसरा "सत्" रूप उपादानकारण" ऐसा कहनेंसें द्वैतसिद्धि होतीहै. और "असत्" को उपादान कहनेंसें आकाशादिक भूतोंमें "सत्त्व" प्रतीति बाधित होनी चाहिये क्योंकी सकलकार्य अपनें कारणके सजातीय होवें हैं. तो यह आकाशादिरूप कार्यभी अपना उपादान कारणभूत जो "असत्" है तदात्मक होना चाहिये और वैसा होनेंसें सद्रूप प्रतीति जो होती है सो असंगत होजायगी। और श्रुतिभी कहतीहैकी "दूसरा कुछ है नहि" यानें परमात्मा के सिवाय द्वितीय पदार्थ सदात्मक नहि है तो उस सृष्टिके समय वैसा कौन अधिष्ठान और उपादान था की जिसको स्वीकार करके सर्वद्रष्टा जगदुत्पादक परमेश्वरनें अपनें महत्त्वद्वारा आकाशादिक भूतोंको उत्पन्न किये होंय ? ॥ २ ॥

६८. ८ ३ १६ विश्वतश्चक्षुरुतविश्वतोमुखोविश्वतोबाहुरुतविश्वतस्पात् ।
संबाहुभ्यांधमतिसंपतत्रैर्द्यावाभूमीजनयन्देवएकः ॥३ ॥

अनया सर्वात्मकत्वेन कुलालादिविलक्षणत्वादधिष्ठानाद्यभावेपि स्रष्टुं शक्नोतीत्याह, विश्वतश्चक्षुः सर्वतोव्याप्तचक्षुः, उतापिच विश्वतोमुखः, तथा विश्वतोबाहुः उतापिच विश्वतस्पात् स एवंविधः परमेश्वरः स्वस्मिन् त्रैलोक्यमुत्पादयतीत्यर्थः । कथमित्युच्यते—बाहुभ्या दिवं सधमति धमतिर्गतिकर्मा सम्यक् प्रेरयति, तथा पतत्रैः गमनशीलैः पादैः पृथिवीं संधमतीत्युभयोरेवश्रवण प्राधान्याभिप्रायम्, एवं द्यावाभूमी जनयन् दिवं च पृथिवीं चोत्पादयन् देवो द्योतमानः स्वयंप्रकाशः परमेश्वर एकोऽसहाय एव वर्तते ॥ ३ ॥

अनुवाद-"कुम्भकारादिकसें विलक्षण यानें सर्वात्मक यह परमात्मा अधिष्ठान उपादानादिक किसी पदार्थकी सहायता न लेकर केभी स्वतन्त्ररूपसें प्रपंच निर्माण कर सक्ता है" ऐसा इस् मन्त्रसें प्रतिपादन करतें हैं, सर्वत्र व्याप्तदृष्टिवाला और सर्वत्र व्याप्तमुखवाला, और सर्वत्र व्याप्तबाहुवाला और सर्वत्र व्याप्तचरणवाला यह परमात्मा किसीकी सहायता न लेकर के विश्वोत्पत्ति करता है। कैसे? बाहुद्वयसे आकाशको (उत्पत्तिके लिये) प्रेरणा करता है, और चरणोंसें पृथ्वीको (उत्पत्तिके लिये) प्रेरणा करता है. आकाश और पृथिवीका नामोच्चारण, मात्र उनकी अधिक प्रसिद्धि होनेंसे किया है, तथापि तदुपलक्षित सकल प्रपंच इसी तरहसें उत्पत्तिके लिये परमात्मानें प्रेरित किया है; इस प्रकारसें आकाश पृथ्वी और तदुपलक्षित समग्र प्रपंचको उत्पन्न करनेवाला स्वयंप्रकाशी यह परमात्मदेव एकही है यानें किसीकी सहायता न ले करके वर्तमान है ॥ ३ ॥

६९. ८ ३ १६ किंस्विद्वनंकउसवृक्षआसयतोद्यावापृथिवीनिष्टतक्षुः।
मनीषिणोमनंसापृच्छतेदुतयद्ध्यतिष्ठद्भुवनानिधारयन्॥४॥

पूर्वस्यामृच्युक्तं ब्रह्मैव भूम्यादिकारणमिति, तदेवानया प्रश्नकथनव्याजेनोच्यते, लोकेहि प्रौढं प्रासादं निर्मिमाणः कस्मिंश्चित्प्रौढे वने कंचिन्महान्तं वृक्षं छित्त्वा तक्षणादिना स्तंभादिकं संपादयति, इह तु परमेश्वरप्रेरिता जगत्स्रष्टारो यतो यस्माद्वनात् यं वृक्षमादाय द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः तक्षणेन द्यावापृथिव्यौ निष्पादितवन्तः' तद्वनं किंस्वित् किंनाम स्यात् तथा क उ स वृक्ष आस कस्तादृशो महान् वृक्षोभूत् हे मनीषिणो मनस ईश्वरास्तदुभयं मनसा जिज्ञासायुक्तेन पृच्छतेदु पृच्छतैव। किंचेश्वरो भुवनानि धारयन् यत्स्थानमध्यतिष्ठत्तदपि पृच्छत एतस्य सर्वस्याप्युत्तरं ब्रह्म वनं ब्रह्म स वृक्ष आसीदित्यादिकमुत्तरं ॥ ४ ॥

अनुवाद-पूर्व मन्त्रमें परब्रह्म परमात्मा ही आकाशादिक प्रपंचका कारण कहा, वही कथा यहां प्रश्नोत्तररूपसें कही जाती है, लोकमें प्रौढ विस्तीर्ण महेल (मकान) को बनानेवाला कोइ शिल्पि किसी विस्तारवाले जंगलमें जा करके और महान् वृक्षोंको काट करके उनमेंसे स्तम्भादिक बनाता है. 'इस् ब्रह्माण्डरूप प्रासाद (महेल) बनानेंमें परमेश्वरनें जिन् शिल्पियोंको नियुक्त

किये हैं वे लोक जिस अरण्यमेंसे वृक्षादिकनको काट करके आकाशादिभूत-भौतिकसृष्टयात्मक प्रासादको बनानेमें तत्पर हुवे वह अरण्य और वह वृक्ष कौनसा होगा ? हे बुद्धिमान् लोकों ? इन दोनों बातोंको मनमें जिज्ञासा रखके (किसी योग्य पुरुषसें) पूछो. और परमात्माने ब्रह्माण्डको धारण करनेके समय जिस स्थानको अधिष्ठित (स्वीकृत) किया वह बातभी तुम (किसी योग्य पुरुषसें) पूछो. इस प्रश्नका यही उत्तर है की "परब्रह्म परमात्माही अरण्य (सदृश विस्तीर्ण होनेसें वन) है. और विश्वका अभिन्ननिमित्तोपादान होनेसें इस प्रपंचरूप प्रासाद कार्यमें वृक्षादिकरूप उपादानकारणभूतभी वही है" (तै. ब्रा. २-८-९) "आत्मैवेदं सर्वं" श्रुतिभी परमात्मासें अतिरिक्त साध्य साधन और साधकका बाधरूपसें अभाव बताती हैं. ॥ ४ ॥

७०. ८ ३ १६ यातेधामा॑निपर॒माणि॒याव॒माया॑मध्य॒माविश्वकर्मन्नु॒तेमा ।
शिक्षा॒सखि॑भ्योह॒विषि॑स्वधावः॒स्वयं॑यजस्वत॒न्वं॑वृधा॒नः ॥ ५ ॥

अनया भौवनो विश्वकर्मा जगत्कारण विश्वकर्मदेवं स्तौति–हे विश्वकर्मन् या यानि ते तव परमाणि धामानि शरीराणि सन्ति, या यानि च मध्यमानि शरीराणि सन्ति उतापि च या यानि अवमानि धामानि शरीराणि सन्ति उतापि-च तानीमानि सर्वाणि शरीराणि सखिभ्योस्मभ्यं यष्टु हविषि मयि हविर्भूतेसति शिक्ष देहि। हे स्वधावो हविर्लक्षणान्नवन्[२] स्वयमेव त्वं तन्व स्वकीयं पूर्वोक्तं त्रिविधं शरीरं वृधानो हविषा वर्धमानः सन्, अनेन धामत्रैविध्योपन्यासेन उत्तम-भूतानि देवादिशरीराणि मध्यमभूतानि मनुष्यादिशरीराणि निकृष्टभूतानि कृमि-कीटादिशरीराणि च परिगृहीतानि, किंबहुना सर्वं जगदुपात्तं भवति, उक्तव्यति-रेकेण निरवयवस्य परमेश्वरस्य विग्रहाभावात् "तदैक्षत बहुः स्या प्रजायेये" त्यादि (छा. ६-२-३) श्रुतिभ्यः परमेश्वरस्यैव देवादिभेदेन बहुभावावगमात्॥५॥

अनुवाद–भुवन सम्बन्धी (भुवनोंको बनानेवाला) विश्वकर्मा जगत्का कारणरूप विश्वकर्मदेव–परमात्माकी स्तुति करता है सो इस मन्त्रसें प्रतिपादन करते हैं–

हे विश्वकर्मन् ! जो आपके परम उत्तम शरीर है, और मध्यम कोटि-वाले जो आपके शरीर है और अवमानि यानें अधम जो आपके शरीर है, वे शरीर (आपके) सखि यानें (पवित्र प्रेमद्वारा) आश्रित बने हुवे हमको यजन करनेके लिये (आप) प्रदान करें. जैसें अग्निमें आहुतिप्रक्षेप करनेसें अग्नि और आहुतिका अभेद होताहै, तैसेही अग्निस्थानापन्न आपके महा स्वरूपमें जीवभावापन्न मेरे स्वरूपका आहुतिरूपसें प्रक्षेप करके अभेद बनाने को आप स्वीकार करो, हविष्यरूप अन्नवाले हे परमात्मन् (यज्ञादिकमें अर्पितकिये हुवे) हविष्यसें पूर्वोक्त उत्तम मध्यम और अधम स्वरूपोंकी वृद्धि करने-वाले आपस्वयंही हैं. । इन तीनो शरीरों–स्वरूपोंसें उत्तम देवशरीर, मध्यम मनुष्यशरीर और अधम कृमिकीटादिशरीर गृहीत होते है. विशेष क्या कहें सकल प्रपञ्चका ग्रहण होता है. क्योंकी निरवयव परमात्माका शरीर देव मनुष्य और कीटादिक (प्रपंच) सें अतिरिक्त हो सक्ताही नहिं. श्रुतिभी कहेती है– " उस् परमेश्वरनें ईक्षण (आत्मक संकल्प) किया की में एकही हुं, तथापि अनेक रूप हो जाउं." इत्यादिक प्रमाणोंसें परमेश्वरही देवादिक भेदसें प्रतीय-यमान होता है ॥ ५ ॥

७१. ८ ३ १६ विश्वकर्मन्हविषावावृधानः स्वयंयजस्वपृथिवीमुतद्याम् ।
मुह्यन्त्वन्येअभितोजनासइहास्माकंमघवासूरिरस्तु ॥६ ॥

हे विश्वकर्मन् विश्वविषयकर्मन् एतन्नामक परमेश्वर[२] हविषा हविर्भूतेन मया विश्वकर्मणा मया दत्तेन वा हविषा वावृधानो वर्धमानः विश्वकर्मा सर्वाणि भूतानि जुहवांचकार " सआत्मानमप्यन्ततो जुहवांचकारे " ति निरुक्तं पूर्वमुदाहृतं. स्वय-मेव पृथिवीमुतापिच द्या दिवं च स्वसृष्टे द्यावापृथिव्यौ स्वयंप्रवृद्ध. सन् यजस्व पूजय अन्ये मत्तोन्ये जनासो जना अयष्टारोऽस्मद्यागविरोधिनो वा मुह्यन्तु मुग्धा भवन्तु, अभितः सर्वत. अथ परोक्षकृत. इहास्मिन्यागेस्माकं मघवास्मत्प्रत्तेन हवि-र्लक्षणेन धनेन धनवान् ससूरिः स्वर्गादिफलस्य प्रेरकोस्तु भवतु, अत्र विश्वकर्मन् हविषा वर्धमान इत्यादि निरुक्तंद्रष्टव्य ॥ ६ ॥

अनुवाद–हे विश्वविषयककृतिवाले विश्वकर्मनामक देव ! (आपके अग्निस्थानापन्न महास्वरूपमें अपनें जीवभावापन्न स्वरूपको हविष्यद्वारा अभेद

करनेकी इच्छावाले) मेंनें अर्पण किये हुवे हविष्यसें वृद्धि (प्रीति) को प्राप्त होकरके आपने सकल भूतोंका (अपनी भीतर) होम किया है याने पारमार्थिक रूपसें सकल प्रपञ्च एतदात्मक होनेंसें इस परमेश्वरसें अभिन्नहीहै। निरुक्त (१०-१६) में भी कहा हैकी "उस परमात्माने अखिरमें अपने स्वरूपकोभी होमद्वारा सकल प्रपञ्चसें अभिन्न किया है"। हे परमात्मन्? यही आप पृथिवीको और आकाशको यानें अपनी शक्तिसें निर्मित किये हुवे (तदुपलक्षित) प्रपञ्चको स्वय (प्रीतिमान होकरके) यजन करें, याने हमको विपरीत भावनाद्वारा आपके स्वरूपसें प्रपञ्चकी भिन्नप्रतीति जो होती है उसको निवृत्त करके वास्तविक जैसा अभेद है तैसीही प्रतीति करानेको याने विपरीत भावना दूर करनेको आप कृपा करें और जो लोक हमारे इस (ज्ञान) यज्ञके विरोधी है (याने भेदभ्रमसें भरपुर अतःकरणवाले और हमारे इस अद्वैत मार्गमें विघ्नकरनेंवालें है) वे सर्वदा मुग्ध मोहाक्रान्त रहें। और जो इन्द्रदेव (के लक्ष्यार्थ आप) हमारे परोक्ष है सो हमनें आदरपूर्वक (अभेदके लिये) अर्पितकिये हुवे इस (जीव रूप) हविष्यसें संपन्न होकरके स्वर्गादिक (उपलक्षित आत्मानुभवात्मक निरतिशयानन्द) के आप प्रेरक होंय, यानें अभेदद्वारा हमको अबाधित सुख प्रतीत होनेके लिये आप स्वीकार करें ॥ ६ ॥

७२. ८ ३ १६ वाचस्पतिंविश्वकर्माणमूतयेमनोजुवंवाजेअद्याहुवेम।

सनोविश्वानिहवनानिजोषाद्विश्वशंभूरवसेसाधुकर्मा ॥ ७ ॥

वाचस्पतिं मंत्रात्मकस्य वचसः स्वामिनं विश्वकर्माणं विश्वकर्तारं मनोजुवं मनोवेगगमनं देव वाजे यज्ञे अद्यास्मिन्दिने ऊतये तर्पणाय हुवेम आह्वयाम, स देवो नोस्माकं विश्वानि सर्वाणि हवनानि जोषत् सेवता। किमर्थं? अवसे अस्माकं रक्षणाय, स विशेष्यते-विश्वशंभूः विश्वस्य सुखस्योत्पादकः साधुकर्माच ॥७॥१६॥

अनुवाद-मन्त्ररूपवाणीके स्वामी और मनके समान वेगवाले (सर्वत्र व्याप्त) जगन्नियन्ता विश्वकर्मदेवको इस (ज्ञान) यज्ञमें तृप्त होनेके लिये (हम) निमन्त्रित करतें हैं. वह विश्वकर्मा देव हमारे सकल (ज्ञानात्मक) यज्ञका उपभोग करें की जिससें हम (आत्मलाभ संपादन करके) सुरक्षित होंय। और वह विश्व कर्मा

देव सकल जगत्को सुख देनेवाला है (इससें मुझेभी निर्विशेष सुख अवश्य देगा) इससें उनको निमन्त्रित करतें हैं. ॥७॥

७३. ८ ३ १७ चक्षुषः पितामनसाहिधीरो घृतमेनेअजनन्नम्नमाने।
यदेदन्ता अददृहन्तपूर्व आदिद्धावापृथिवी अप्रथेताम् ॥१॥

चक्षुषः चक्षुरुपलक्षितस्येन्द्रियसंघातात्मकस्य शरीरस्य पिता उत्पादयिता यद्वा चक्षुः ख्यापकं तेजः तस्योत्पादयिता, मनसा नहि मत्समोस्तिकश्चिदिति बुद्ध्या हि खलु धीरो धृष्टो विश्वकर्मा प्रथमघृतमुदकमजनत् अजनयत्, "आपोवाइदमग्रे" "अपएवससर्जादा"वित्यादि श्रुतिस्मृती स्यातां, पश्चादेने द्यावापृथिव्यौ नम्नमाने तस्मिन्नुदके इतस्ततश्चलन्त्यौ यःअजनयत्, अथ यदेत् यदेवान्ताः पर्यन्तप्रदेशाः पूर्वे पुराणाः द्यावापृथिव्योः संबन्धिनः अददृहन्त दृढाअभवन् विश्वकर्मणा दृढाः संपादिता इत्यर्थः, आदित् अनन्तरमेव द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ अप्रथेतां यथा कामं प्रथिते अभूतां ॥ १ ॥

अनुवाद–चक्षुरिन्द्रियोपलक्षित सकलेन्द्रियसंघातात्मक देहका उत्पन्न करनेवाला अथवा चक्षुरिन्द्रियकी ख्याति करनेवाले तेजको उत्पन्न करनेवाला (यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्, सूर्य चन्द्र अग्नि इत्यादिक तेजस्वी देवोंमें रहाहुवा तेज हमारा-नित्य प्रकाशात्मक परमेश्वरका है ऐसा श्रीमद्भगवद्गीतामें भी कहा है) और " मेरेतुल्य दुसरा कोही नहिं " ऐसी बुद्धिसें परमधीररूपसे अवस्थित इस विश्वकर्मदेवने प्रथम जलको उत्पन्न किया " जल प्रथम सृष्टिमें उत्पन्न हुवा ", इत्यादिक श्रुतिस्मृतिभी इससें संगत होती है। उसके अनंतर उस जलमें चंचलरूपसें रहेनेवाले आकाश और पृथ्वीको जिस देवने उत्पन्न किये और उन आकाश पृथ्वीके संबन्धी जो प्राचीन प्रान्त प्रदेश है उनको जिस देवनें दृढतर बनाये और जिन (प्रदेशों) के दृढ होनेसें आकाश पृथ्वी यथेष्ट ख्यातिवाले हुवे. (वह देव एकही है. ऐसा अग्रिम मन्त्रसें संबन्ध है) ॥ १ ॥

७४. ८ ३ १७ विश्वकर्माविमना आद्विहायाधाताविधातापरमोतसंदृक्।
तेषामिष्टानिसमिषामदन्ति यत्रा सप्तऋषीन्परएकमाहुः॥२॥

विश्वकर्मा यः परमात्मा प्राणप्रकाशाभ्यामुपेतः सन् बहुकर्मा भवति सच विमनाः विभूतमनाः विहायाः वस्तुतो महान् विशेषेण सुकृतदुष्कृतफलस्यासा धाता विधाता च परमोतसन्दृक् परमश्च सन्द्रष्टेन्द्रियाणां, तेषां सप्तर्षीणां द्रष्टृणामिन्द्रियाणां इष्टानि स्वरूपाणि इषात्वेन सह संमदन्ति संमोदन्ते यत्र यस्मिन्नात्मनि, तमात्मानं सप्तर्षीन् सप्तसंख्याकेभ्यः सर्पणस्वभावेभ्यो वा परः परस्ताद्वर्तमानमिन्द्रियाद्यतीतमेकं परमात्मानमाहुस्तत्त्वविदः. अत्रविश्वकर्मा विभूतमना व्याप्तेत्यादि निरुक्तमनुसंधेयं ॥ २ ॥

अनुवाद–जो विश्वकर्मवाच्य परमात्मा प्राण और प्रकाशसे युक्त होकरके अनेक कर्मोंका कर्ता बनता है, यानें देहेन्द्रियादिसंघातको ममत्वाभिनिवेशपूर्वक स्वीकृत करके अनेक क्रियावाला होता है, पारमार्थिक स्वरूपसे (वह परमात्मा) महान् विभु होनेपरभी अन्तःकरणरूप उपाधिहीमें अभिव्यक्त होवाहै और (प्राणिमात्रके) पुण्यपापात्मक कर्मोंके फलोंको धारण करनेवाला और तत्तदधिकारीओंको (फल) देनेवाला स्वयं निरिन्द्रिय अतीन्द्रिय होनेपरभी इन्द्रियोंका द्रष्टा–साक्षीहै, और जिस परमेश्वरात्मक अधिष्ठानमें अध्यस्त कल्पित इन्द्रियवर्ग अपने अपने इष्ट स्वरूपको अन्नोपलक्षित विषयोंका (निर्विघ्न) उपभोग कररहाहै सप्तसंख्यावाले यानें चक्षुरादिक पांच और मनबुद्धि सहित होकरके सप्तसंख्यावाले अथवा चंचल स्वभाववाले उस इन्द्रिय वर्गोंसे दूर यानें अतीन्द्रिय उस परमेश्वरको तत्त्वज्ञानिलोक "एकही है" ऐसा कहते हैं.

इस अर्थमें निरुक्तभी संमत होताहै. (नि. १०–२६) ॥ २ ॥

७५. ८ ३ १७ योनःपिताजनितायोविधाताधामानिवेदभुवनानिविश्वा। योदेवानांनामधाएकएवतंसंप्रश्नंभुवनायन्त्यन्या ॥३॥

यो विश्वकर्मा नोस्माकं पिता पालयिता न केवलं पालकः किंच जनिता उत्पादकः किमनेनास्माकमुत्पादक इति संकोचेन, यो विधाता सर्वस्य जगत उत्पादकः यो विश्वकर्मा नोस्माकमुत्पन्नानि धामानि देवानां तेजःस्थानानि वेद वेत्ति, किंबहुना विश्वा विश्वानि भुवना भूतजातानि वेद वेत्ति, यश्च देवानामग्निवाय्वादीनां नामधाः नाम्नां धाता, इन्द्रादीन्निर्माय तेषां इन्द्रादि नाम कृत्वा तत्तदेपु स्थापयिता एकएव, तदेवं अन्यानि भुवना भूतजातानि प्रश्नं "कः परमेश्वर" इति पृच्छां यन्ति प्राप्नुवन्ति ॥ ३ ॥

अनुवाद–जो विश्वकर्मा देव हमारा पालन करनेवालाहै, केवल पालकहीहै ऐसा नहिं किंतु उत्पादक है. अगर संकोचरहित होकरके कहें तो केवल हमाराही उत्पादकहै ऐसा नहिं परंतु सचराचर विश्वका उत्पादकहै. और जो परमेश्वर देवोंके तेजःस्थानोंको यथार्थ रीतिसें जानता है, विशेष क्या कहें, समग्र भूतसमूहको यथार्थ जानता है, और जो परमात्मदेव अग्नि वायु यमादिकोंका नामाभिधान स्वयंही करताहै.

इन्द्र अग्नि वायु वरुण यम इत्यादिक देवोंका तत्तन्नामाभिधान करके जो परमेश्वर तत्तत्स्थानमें नियोग–स्थापन करनेवाला है, और स्वयं असहाय-एकही है, उस परमेश्वरदेवको अन्य भूतभौतिकवर्ग "वह परमेश्वर हमलोकोंका जो नियन्ताहै सो कौनहै?" इत्यादिक प्रश्न किया करतेहैं (परन्तु भेदभ्रम पर्यन्त उसको यथार्थ जानसक्ते नहिं) ॥ ३ ॥

७६. ८ ३ १७ परोदिवापरएनापृथिव्यापरोदेवेभिरसुरैर्यदस्ति ।

कंस्विद्गर्भंप्रथमंदध्रआपोयत्रदेवाःसमपश्यन्तविश्वे ॥ ५ ॥

यदीश्वरतत्त्वं दिवा परः द्युलोकादपि परस्तात् वर्तमानं, तथा एना अस्याः पृथिव्याः परः परस्ताद्वर्तमानं, तथा देवेभिर्देवैः परस्ताद्वर्तमानं, असुरैश्च यत् परः परस्तात वर्तमानं, गुहायामवस्थितं, कंस्वित् गर्भं गर्भवत् सर्वस्य ग्राहकं तत्त्वमापः प्रथमं दध्रे, धृतवत्यः, यत्र यस्मिन् गर्भे देवा इन्द्रादयो विश्वे सर्वेपि समपश्यन्त, संगताः परस्परं पश्यन्ति, एवंजानन्नेव कश्चित्तत्त्ववित् प्रश्नं करोति ॥ ५ ॥

अनुवाद–"द्युलोक-आकाश अथवा स्वर्गसें पर इस पृथ्वीसें भी पर वर्तमान और देवदानवादिकसें पर वर्तमान गुहागत पदार्थकी तरह दुर्ज्ञेय और सर्वका ग्राहक जिस ईश्वरतत्त्वको जलनें अपनीभीतर गर्भकी तरह धारण किया, और जिस गर्भमें इन्द्रादिक सकल देव परस्पर संगत होकरके उस ईश्वरतत्त्वका पर्यालोचन करतेहैं" ऐसा जाननेवाला कोइ तत्त्वज्ञानी प्रश्न पूछताहै. ६ ॥

७७. ८ ३ १७ तमिद्गर्भंप्रथमंदध्रआपोयत्रदेवाःसमगच्छन्तविश्वे ।

अजस्यनाभावध्येकमर्पितंयस्मिन्विश्वानिभुवनानितस्थुः॥६॥

– अनया पूर्वमंत्रोक्तस्य प्रश्नस्योत्तरमभिधीयते, तमित् तमेव विश्वकर्माणं गर्भं-गर्भस्थानीयं प्रथममितरसृष्टेः पूर्वं मापो दध्रे धृतवत्यः। यत्र गर्भे विश्वे सर्वे देवाः इन्द्रादयः समगच्छन्त संगता भवन्ति, तस्याजस्य नाभावधि एकमर्पितमित्य-ण्डाभिप्रायेणोक्तम्, अण्डं हि प्राक् सर्गान्नाभिस्थाने तिष्ठति, यस्मिन्नण्डे विश्वानि भुवनानि सर्वाणि भूतजातानि तस्थुः तिष्ठन्ति, अथवा अजस्य जन्मरहितस्य ब्रह्मणः स्वसृष्टे जले शयानस्य नाभौ सर्वजगद्बन्धक उदके एकं ब्रह्माण्डमर्पितं स्थापितं, शिष्टंसमानं। अथास्मिन्नर्थेस्मृतिः–अपएवससर्जादौतासुवीर्यमवाकिरत्। तदण्ड-मभवद्धैमं सूर्यकोटिसमप्रभमिति ॥ ६ ॥

अनुवाद–पूर्व मन्त्रोक्त प्रश्नका उत्तर इस् मन्त्रसें कहेतेंहैं–इतर सृष्टिके पूर्वकालमें उस् "विश्वकर्म" शब्दवाच्य परमात्मदेवको गर्भरूपसें जलनें धारण किया, की जिस् गर्भमें सकल देव (इन्द्रादिक) संगत होतेंहै, जन्मरहित जिस् परमेश्वरके नाभिस्थानापन्न उदरमें एक अण्ड अवस्थित है, जिस अण्डमें सकल भूतभैतिक समुदाय स्थानको पाया हुवा है, वह अण्ड सृष्टिके पूर्वकालमें परमे-श्वरके उदरमें था। अथवा अपनी शक्तिसें निर्मित किये हुवे जलमें शयन करते हुवे और जन्मरहित जिस परमेश्वरके नाभि शब्दके लक्ष्यभूत सकल जगत्को अपनी-भीतर अवस्थित करनेवाले जलमें एक ब्रह्माण्ड स्थापित कियाहै. "परमेश्वरनें प्रथम जलहीको उत्पन्न करके उसमें वीर्याधान किया, जिससें असंख्य सूर्योके समान तेजोमय सुवर्णके तुल्य ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुवा" इत्यादिक स्मृतिभी इससें अनुकूल है ॥ ६ ॥

७८. ८ ३ १७ नतंविदाथयइमाजजानान्यद्युष्माकमन्तरंबभूव।
नीहारेणप्रावृताजल्प्याचासुतृपउक्थशासश्चरन्ति ॥७॥१७॥

हे नरास्तं विश्वकर्माणं न विदाथ न जानीथ य इमा इमानि भूतानि जजान उत्पादितवान्, देवदत्तोहं यज्ञदत्तोहमिति वयमात्मान विश्वकर्माणं जानीम इति यदुच्यते तदसत्, नह्यहंप्रत्ययगम्यं जीवरूपं विश्वकर्मणः परमेश्वरस्य तत्त्वं, किन्तु युष्माकमहंप्रत्ययगम्याना जीवानामन्तरं अन्यत् अहंप्रत्ययगम्यादातिरिक्तं सर्वं वेदान्तवेद्यमीश्वरतत्त्वं बभूव भवति विद्यते, जीवरूपवत्तदपि कुतो न विद्मइति चेत् श्रूयतां–नीहारेण प्रावृता यूयं नीहारसदृशेनाज्ञानेन आच्छन्नाः अतो न जानीथ,

यथा निहारो नात्यन्तमसद् दृष्टेरावरकत्वात्, नात्यन्तं सत् काष्ठपाषाणादिवत्संबोद्धुमयोग्यत्वात्, एवमज्ञानमपि नात्यन्तमसत्, ईश्वरतत्त्वावरकत्वात् नापि सत् बोधमात्रनिवर्त्यत्वात्, ईदृशेनाज्ञानेन भवन्तः सर्वे जीवाः प्रावृताः। नकेवलं प्रावृतत्वं किन्तु जल्प्या च, देवोहं मनुष्योहमित्याद्यनृतजल्पनेन प्रावृताः। किंच असुतृपः केनाप्युपायेनासून्प्राणान् तृप्यन्तः उदरंभरा इत्यर्थः, ननु पारमेश्वरं तत्त्वं विचारिनवन्तः, नकेवलमिहलोके भोगमात्रतृप्ताः उक्थशासः नानाविधेषु यज्ञेषु उक्थं प्रउगनिष्केवल्यादिकं शंसन्तश्चरान्ति, पृथिव्यां वर्तन्ते, केवलमैहिकामुष्मिकभोगपरा वर्तध्वे, अतो विश्वकर्माणं देवं न जानीथेत्यर्थः ॥ ७ ॥ १७ ॥

अनुवाद–हे पुरुषो ! उस विश्वकर्मदेवको (तुम) नहिं जानते, जिस् विश्वकर्मदेवने इन् भूतोंको उत्पन्न किये हैं. "में देवदत्त हुं, में यज्ञदत्त हुं," इत्यादिक रूपसें हम आत्मस्वरूप विश्वकर्मदेवको जानते हैं ? यह कहेना ठीक नहिं, क्योंकी अहमाकारप्रतीतिका विषयभूत जो जीवस्वरूप है सो विश्वकर्म वाच्य परमेश्वरका पारमार्थिक स्वरूप नहि है, परंतु अहमाकारप्रतीतिके विषयभूत जीव स्वरूपसें वेदान्तवेद्य वह पारमार्थिक तत्त्व अतिरिक्त है, जीवात्माके स्वरूपकी तरह उसको हम क्यों नहिं जानते ? सुनो, तुमलोक नीहारसदृश अज्ञानसें आवृत हो गये हो, इससें यथार्थ नहिं जान सक्ते, जैसें नीहार (तुषार) दृष्टिको आवृत करता है इस लिये अत्यन्त असत् नहिं है, क्योंकी असत् होता तो आवरण कैसे करसक्ता ? उसी तरह काष्ठपाषाणादिककी तुल्य अत्यन्त सत् भी नहिं है, अगर सत् होता तो काष्ठादिककी तरह दानादानादिक व्यवहारका विषय बनता, इस लिये "सत्" और "असत्" इन् दोनोंसे विलक्षण कहेना चाहिये, तैसेही अज्ञानभी अत्यन्त "असत्" नहिं है, क्योंकी पारमार्थिक स्वरूपको आवृत कररहा है, और अत्यन्त "सत्" भी नहिं है, क्योंकी केवल ज्ञानमात्रसें निवृत्त-बाधित होता है, इससे सत्त्व और असत्त्वसें विलक्षण यानें अनिर्वचनीय अज्ञानसें तुम सब जीव दृढतर आवृत–प्रच्छन्न होगयेहो, मात्र आवृतही होगये हो इतनाही नहिं, किंतु में देवहुं में मनुष्यहुं अमुकशर्माका पुत्रहुं इत्यादिक व्यर्थ वादपरायण हो, यानें व्यवहाराविषय पारमार्थिकस्वरूप होने परभी उसको छीपाकरके देहेन्द्रियादिसंघातकोही आत्मा समझके "मैं" और "मेरा" इत्यादिक व्यवहार किया करतेहो, और प्राणपोषणको परम पुरुषार्थ

समझके यत्न किया करते हो, यानें हमेशां पेटही भरनेकी फिकर रखते हो, परंतु पारमार्थिक तत्त्वके विचारार्थ कभी प्रवृत्ति करतेही नहिं, और केवल इसलोकहीमें भोगतृप्त नहिं हो, लेकिन यज्ञयागादिक संपादन करके पारलौकिक भोगमें भी मुस्तेइद हो, यानें आत्मविचारणासे शून्य होकरके केवल ऐहिक और आमुष्मिक (पारलौकिक) भोगोंको संपादन करनें हीं में भ्रान्तिद्वारा बहिर्मुख वृत्तिवाले बनके इधर उधर परिभ्रमण किया करते हो, यह सब उपाय उस विश्वकर्मदेवविषयक पारर्थिकज्ञानका बाधक है साधक नहिं है. ॥ ७ ॥

७९. ८ ४ १७ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

सभूमिंविश्वतोवृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

सर्वप्राणिसमष्टिरूपो ब्रह्माण्डदेहो विराडाख्यो यः पुरुषः सोयं सहस्रशीर्षा सहस्रशब्दस्य उपलक्षणत्वादनन्तैः शिरोभिर्युक्त इत्यर्थः। यानि सर्वप्राणिनां शिरांसि तानि सर्वाणि तद्देहान्तःपातित्वात्तदीयान्येवेति सहस्रशीर्षत्वं, एवंसहस्राक्षित्वं, सहस्रपादत्वंच। स पुरुषो भूमिं ब्रह्मांडगोलकरूपां विश्वतः सर्वतो वृत्वा परिवेष्टय दशांगुलं दशांगुलपरिमितं देशमत्यतिष्ठत् अतिक्रम्य व्यवस्थितः। दशांगुलमित्युपलक्षणं ब्रह्माण्डाद्बहिरपि सर्वतो व्याप्यावस्थित इत्यर्थः ॥ १ ॥

अनुवाद–सकलप्राणिसमष्टिरूप "विराट्" नामक ब्रह्माण्डदेहात्मक जो यह पुरुष है सो अनन्त मस्तकोंसे युक्त है, यानें सकल प्राणिवर्गके जितनें मस्तक हैं वे सब मस्तक तत्तद् शरीरमें अनुप्रविष्ट प्रतीत होनेंसे इसी परमेश्वरके मस्तक हैं, ऐसा व्यपदेश किया जाता हैं. उसी तरह सकल प्राणिवर्गके जितने नेत्र और चरणादिक अवयवहैं वे सब परमात्माके तरफ व्यपदेशद्वारा समझे जातेहै। वह पुराणपुरुष ब्रह्माण्डगोलकरूप भूमिको चारो तरफसें परिवेष्टन करके दश अंगुल परिमित देशको अतिक्रमण करके व्यवस्थित हुवाहै, याने ब्रह्माण्डके बहार और भीतर सर्वत्र व्याप्त होकरके अवस्थित है. ॥ १ ॥

८०. ८ ४ १७ पुरुषएवेदंसर्वयद्भूतंयच्चभव्यम् ।

उतामृतत्वस्येशानोयदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

यदिदं वर्तमानं जगत्तत्सर्वं पुरुष एवं, यच्चभूतमतीतं जगत् यच्च भव्यं भविष्यज्जगत् तदपि पुरुषएव, यथास्मिन् कल्पे वर्तमानाः प्राणिदेहाः सर्वेपि विराट्पुरुषस्यावयवाः तथैवातीतागामिनोरपि कल्पयोर्द्रष्टव्यमित्यभिप्रायः। उतापिच अमृतत्वस्य देवत्वस्यायमीशानः स्वामी, यद्यस्मात् कारणात् अन्नेन प्राणिनामन्नेन भोग्येन निमित्तेनातिरोहति स्वकीयां कारणावस्थामतिक्रम्य परिदृश्यमानां जगदवस्थां प्राप्नोति, तस्मात् प्राणिनां कर्मफलभोगाय जगदवस्थास्वीकारान्नेदं तस्य वस्तुतत्त्वमित्यर्थः ॥ २ ॥

अनुवाद—जो यह वर्तमान भूत और भविष्यदात्मक जगत् है वह सब पुराण पुरुष रूपही है, जैसें इस कल्पमें वर्तमान प्राणिमात्रके शरीर विराट् पुरुषके अवयवभूत हैं तैसेही व्यतीत—भूत और अनागत-भविष्यत् प्राणिमात्रके देह उस विराट् पुरुषके अवयवभूतही हैं. और यह विराट् पुरुष अमृतत्वका स्वामी है, प्राणिमात्रके भोगोपभोगके लिये अपनी कारणावस्थाको छोडकरके दृश्यमान कार्यावस्था यानें प्रपञ्चस्वरूपताको प्राप्त हुवा है, यानें प्राणिसमूहको कर्मफलोपभोग करानेके लिये इसनें जगत्स्वरूप स्वीकृत किया है, उस विराट् पुरुषका पारमार्थिक स्वरूप तो कोइ विलक्षणही है. ॥ २ ॥

८१. ८ ४ १७ एतावानस्यमहिमातोज्यायाँश्चपूरुषः।
पादोस्यविश्वाभूतानित्रिपादस्यामृतंदिवि ॥ ३ ॥

अतीतानागतवर्तमानरूपं जगद्यावदस्ति एतावान् सर्वोप्यस्य पुरुषस्य महिमा स्वकीयसामर्थ्यविशेषः नतु तस्य वास्तवं स्वरूपं, वास्तवस्तु पुरुषः, अतो महिम्नोपि ज्यायानतिशयेनाधिकः। एतच्च उभयं स्पष्टीक्रियते—अस्य पुरुषस्य विश्वा सर्वाणि भूतानि कालत्रयवर्तीनि प्राणिजातानि पादश्चतुर्थांशः, अस्य पुरुषस्यावशिष्टं त्रिपात्स्वरूपममृतं विनाशरहितं सत् दिवि द्योतनात्मके स्वप्रकाशस्वरूपे व्यवतिष्ठत इतिशेषः। यद्यपि "सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म" त्याम्नातस्य तस्य परब्रह्मण इयत्ताया अभावात् पादचतुष्टयं निरूपयितुमशक्यं तथापि जगदिदं ब्रह्मस्वरूपापेक्षयाल्पमिति विवक्षितत्वात्पादत्वोपन्यासः ॥ ३ ॥

अनुवाद—भूत, भविष्यत् और वर्तमान जितना प्रपंच है, वह सब इस (विराट्) पुरुषका सामर्थ्यातिशय है, उस पुरुषका वास्तविक स्वरूप यह

प्रपंच नहिं है, वास्तविक स्वरूपतो पुरुषरूपही है, इसलिये महिमासेंभी अत्यन्त अधिक है, इन् दोनों बातोंको स्पष्ट करतें हैं–भूत भविष्यत् और वर्तमान इन् तीनो कालके प्राणिसमूह इस पुरुषका चतुर्थ अंश है, और इस पुरुषका अवशिष्ट जो अंशत्रय सो नाशरहित है, और दिव्य यानें स्वप्रकाश है. यद्यपि "सत्यं ज्ञानमनन्तंब्रह्म" इत्यादिक श्रुतिके अनुसार ब्रह्मस्वरूप देशकाल और वस्तुसें अपरिच्छिन्न होनेंसें उस (ब्रह्म) का पाद (अंश) चतुष्टय निरूपण करनेको अशक्य है, तथापि "ब्रह्म स्वरूपकी अपेक्षासें यह सकल प्रपंच अल्प है" इस अर्थको प्रतिपादन करनेंके लिये पाद (अंश) त्वका उपन्यास है, यानें प्रपंचकी भीतर रूपकद्वारा चतुर्थांशत्वरूप न्यूनत्व प्रदर्शित करके परब्रह्मका भूमत्व कहने के लिये यह अंशांशिभावकल्पना है. ॥ ३ ॥

८२. ८ ४ १७ त्रिपादूर्ध्वउदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।
ततोविष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशनेअभि ॥ ४ ॥

योयं त्रिपात्पुरुषः संसारस्पर्शरहितः ब्रह्मस्वरूपः योयमूर्ध्वः उदैत् अस्मादज्ञानकार्यात्संसाराद्बहिर्भूतः अत्रत्यैर्गुणदोषैरस्पृष्टः उत्कर्षेण स्थितवान् तस्यास्य सोयं पादोलेशः सोयमिह मायायां पुनरभवत् सृष्टिसंहाराभ्यां पुनःपुनरागच्छति। अस्य सर्वस्य जगतः परमात्मलेशत्वं भगवताप्युक्तं–विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितोजगदिति । ततः मायायामागत्यानन्तरं विष्वङ् देवतिर्यगादिरूपेण विविधः सन् व्यक्रामत् व्याप्तवान् । किं कृत्वा? साशनानशने अभिलक्ष्य साशनं भोजनादिव्यवहारोपेतं चेतनं प्राणिजातं लक्ष्यते, अनशनं तद्रहितमचेतनं गिरिनद्यादिकं, तदुभयं यथास्यात्तथा स्वयमेव विविधो भूत्वा व्याप्तवानित्यर्थः ॥ ४ ॥

अनुवाद–दिव्य और अविनाशि पाद (अंश) त्रय वाला संसारसंसर्गशून्य ब्रह्मस्वरूप अविद्याकार्यसंसारसें बहिर्भूत यानें संसारान्तर्गत गुणदोषसमुदायसें असंपृक्त सर्वोत्कृष्ट जो यह पुरुष है इस पुरुषका एकही यह पाद (अंश अथवा लेश) इस मायामें उत्पत्ति और संहाररूपसे वारंवार गमनागमनको पाता है, यानें उत्पत्ति और नाशको पानेवाले घटपटादिक पदार्थ उस पुरुषकी सत्तासें अतिरिक्त सत्तावाले नहिं है, श्रीकृष्णनेंभी जगत्को ईश्वरांश बताया है "मैं (परिपूर्ण सच्चिदानन्दघन) एक अंशसें इस समग्र प्रपंचको व्याप्त करके

रहाहुं" । उसके बाद मायामें अवस्थित हो करके यानें मायास्वरूपका स्वीकार करके देव, मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादिक विविधरूपसें विश्वमें व्याप्त हुवा, यानें भोजनादिव्यवहारसहित सचेतन प्राणिवर्ग और अनशन–भोजनादिव्यवहार-रहित अचेतन गिरिनदी इत्यादिक सकल विविधस्वरूपसें (एक अंशद्वारा) वह पुरुष सचराचरमें व्याप्त हुवा ॥ ४ ॥

८३. ८ ४ १७ तस्मा॑द्विरा॒ळ॑जायत वि॒राजो॒ अधि॒ पूरु॑षः ।

स जा॒तो अत्य॑रिच्यत प॒श्चाद्भूमि॒मथो॑ पु॒रः ५ ॥ १७ ॥

विष्वङ् व्यक्रामदिति यदुक्तं तदेवात्र प्रपंच्यते–तस्मादादिपुरुषात् विराट् ब्रह्माण्डदेहः अजायत उत्पन्नः, विविधानि राजन्ते वस्तून्यत्रेतिविराट्, विराजोधि विराड्देहस्योपरि तमेव देहमधिकरणंकृत्वा, पुरुषः तद्देहाभिमानी कश्चित् पुमानजायत, सोयंसर्ववेदान्तवेद्यः परमात्मा सएव स्वकीयया मायया विराड्देहं ब्रह्माण्डरूपं सृष्ट्वा तत्र जीवरूपेण प्रविश्य ब्रह्माण्डाभिमानी देवतात्मा जीवोऽभवत्। एतच्चाथर्वणिका उत्तरतापनीये विस्पष्टमामनन्ति–"सवाएषभूतानीन्द्रियाणि विराजं देवताः कोशांश्चसृष्ट्वा प्रविश्यामूढोमूढइव व्यवहरन्नास्तेमायये"ति। स जातो विराट् पुरुषः अत्यरिच्यत अतिरिक्तोभूत् विराड्व्यतिरिक्तो देवतिर्यङ्मनुष्यादिरूपोभूत्, पश्चाद्देवादिजीवभावादूर्ध्वं भूमिं ससर्जेतिशेषः. अथो भूमेः सृष्टेरनन्तरं तेषां जीवानां पुरः ससर्ज, पूर्यन्ते सप्तभिर्धातुभिरिति पुरः शरीराणि ॥ ५ ॥ १७ ॥

अनुवाद–पूर्व मन्त्रमें देवमनुष्यतिर्यगादिक विविध स्वरूप जो कहे हुवेहैं उसीबातको विस्तारसें कहते हैं–उस आदि पुरुषसें विराट् ब्रह्माण्डदेह उत्पन्न हुवा, विविध प्रकारसें अनेक पदार्थ जिसमें विराजमान हो उसको "विराट्" कहतेहैं । उस विराड् देहकी भीतर उस (देह) का अभिमानी कोइ पुरुष उसी (विराड्देह) में प्रतीत हुवा, उसी (अभिमानी) पुरुषको समग्र वेदान्तका वेद्य बतातेहैं, वही पुरुष अपनी मायासें विराड् देहात्मक ब्रह्माण्डको उत्पन्न करके और उसी देहमें जीवस्वरूपसें प्रविष्ट होकरके सकलब्रह्माण्डका अभिमानी देह "जीव" ऐसे अभिधानको प्राप्त हुवा. इसी बातको आर्थर्वणिक लोक उत्तर-तापनीयोपनिषद्में स्पष्ट कहतेहैं "वही परमात्मा भूत इन्द्रियवर्ग विराड्देह तत्तदिन्द्रियादिककी देवता और अन्नमयादिक पञ्चकोशोंको प्रकट करके और

उसी समुदायमें स्वयं प्रविष्ट हो करके नित्यप्रकाश ज्ञानस्वरूप होते हुवेभी मूढकी तरह मायासें व्यवहार करता हुवा अवस्थित है. " विराड् देहमें प्रादुर्भावको पायाभया यह तदभिमानी देव विराड् देहसें अतिरिक्त है, देव मनुष्य तिर्यगादि विविध रूपसें प्रतीत होताहै. देवमनुष्यादि करके (व्यष्टि) शरीरमें जीवभावापन्न होनेकेबाद भूमिको वह (देव) उत्पन्न करता भया, और भूमिके बाद उन् जीवोंके निवास योग्य शरीरोंको रसादिक सप्त धातुओंसे उत्पन्न करता भया ॥ ५ ॥

८४. ८ ४ १८ यत्पुरुषेणहविषादेवायज्ञमतन्वत ।

वसन्तोअस्यासीदाज्यंग्रीष्मइध्मःशरद्धविः ॥ ६ ॥

यद्यदा पूर्वोक्तक्रमेणैव शरीरेषूत्पन्नेषु सत्सु देवा उत्तरसृष्टिसिद्धयर्थं बाह्यद्रव्यस्यानुत्पन्नत्वेन हविरन्तरासंभवात् पुरुषरूपमेव मनसा हविष्ट्वेन संकल्प्य पुरुषेण पुरुषाख्येन हविषा मानसं यज्ञमतन्वत अतानिषत, तदानीमस्य यज्ञस्य वसन्तो वसन्तर्तुरेवाज्यमासीत् अभूत् तमेवाज्यत्वेन संकल्पितवन्त इत्यर्थः, एवं ग्रीष्म इध्म आसीत् तमेवेध्मत्वेन संकल्पितवन्तः, तथा शरद्धविरासीत् तामेव पुरोडाशाभिधहविष्ट्वेन संकल्पितवन्त इत्यर्थः । एवं पुरुषस्य हविःसामान्यरूपत्वेन संकल्पः, अनन्तरं वसन्तादीनामाज्यादिविशेषरूपत्वेन संकल्प इति द्रष्टव्यं ॥६॥

अनुवाद-जिस समय पूर्वोक्त क्रमसें समग्रदेह उत्पन्न हो चुके उसके बाद उत्तर सृष्टिकेलिये बाह्य द्रव्यकी उत्पत्ति न होनेसे और हविष्यान्तरके अभाव होनेसे देवोंनें पुरुषस्वरूपहीको हविष्यके तौर पर संकल्पित करके मानस यज्ञका विस्तार किया. उस समय उस मानस यज्ञमें वसन्त ऋतुको आज्य (हवन करनें योग्य घृत) स्वरूपसें संकल्पित किया, और ग्रीष्मऋतुको समिद्रूपसें संकल्पित किया, और शरदृतुको पुरोडाशादिक हविष्यरूपसें संकल्पित किया, यानें "प्रथम पुरुषस्वरूपका हविष्यसामान्य रूपमें संकल्प करनेके बाद वसन्तादिक ऋतुओंको आज्यादिविशेष स्वरूपसें (देवोंनें) संकल्पित किये" ऐसा समझना.॥६॥

८५. ८ ४ १८ तंयज्ञंबर्हिषिप्रौक्षन्पुरुषंजातमग्रतः ।

तेनदेवाअयजन्तसाध्याऋषयश्चये ॥ ७ ॥

यज्ञं यज्ञसाधनभूतं तं पुरुषं पशुत्वभावनया यूपे बद्धं बर्हिषि मानसे यज्ञे, प्रौक्षन् प्रोक्षितवन्तः, कीदृशमित्यत्राह-अग्रतः सर्वसृष्टेः पूर्वं पुरुषं जातं पुरुषत्वेनोत्पन्नं, एतच्च प्रागेवोक्तं "तस्माद्विराळजायत विराजो अधिपूरुष" इति। तेन पुरुषरूपेण पशुना देवा अयजन्त, मानसयागं निष्पादितवन्त इत्यर्थः, के ते देवा इत्यत्राह-साध्याः सृष्टिसाधनयोग्याः प्रजापतिप्रभृतयः तदनुकूला ऋषयो मंत्रद्रष्टारश्च, ये सन्ति, ते सर्वेप्ययजन्त इत्यर्थः ॥ ७ ॥

अनुवाद-सृष्टिके पूर्वकालमें प्रादुर्भूत और यज्ञीय कर्ममें साधनभूत उस पुरुषको पशुत्व भावनासे यूप (यज्ञीयपशु बन्धनस्थान) में (सं) बद्ध करके मानसिक यज्ञमें देवतालोक प्रोक्षण करनेलगे. यह कथा पञ्चममन्त्रमें कहचुके हैं की "उस आदि पुरुषसे ब्रह्माण्डदेह उत्पन्न हुवा और उसी देहमें तदभिमानी कोइ पुरुष प्रतीयमान हुवा"। इस पुरुषरूपपशुसे देवताने मानसयाग सिद्ध किया, सृष्टिके साधनमें तत्पर प्रजापति वगैरह और उनके अनुकूल मन्त्रद्रष्टा ऋषि लोक जो हैं वे सभी लोक मानस याग करने लगे. ॥ ७ ॥

८६. ८ ४ १७ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशूंस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्चये ॥ ८ ॥

सर्वहुतः सर्वात्मकः पुरुषो यस्मिन्यज्ञे हूयते सोऽयं सर्वहुतः तादृशात् तस्मात् पूर्वोक्तात् मानसायज्ञात् पृषदाज्यं दधिमिश्रमाज्यं संभृतं संपादितं दधि चाज्यं चेत्येवमादि भोगजातं सर्वं संपादितमित्यर्थः, तथा वायव्यान् वायुदेवताकान् लोकप्रसिद्धान् आरण्यान्पशूंश्चक्रे उत्पादितवान् आरण्या हरिणादयः। तथा येच ग्राम्या गवाश्वादयस्तानपि चक्रे ॥८॥

अनुवाद-सर्वात्मक पुरुषका जिसमें यजन होता है ऐसे इस मानसिक यज्ञमें दधिमिश्रित आज्य (घृत) संपादित हुवा, यानें यह उपलक्षण है, दधि और आज्यको आदि लेकरके सकल भोग्यसमूह संपादित किया. और वायु-देवतावाले हरिणादिक जंगली प्राणीओंको संपादित किये, और जो ग्राम्य पशु गो अश्व महिष्यादिक हैं उनकोभी संपादित किये. ॥ ८ ॥

८७. ८ ४ १८. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ९ ॥

सर्वहुतस्तस्मात्पूर्वोक्ताद्यज्ञात् ऋचः सामानि च जज्ञिरे उत्पन्नाः, तस्माद्यज्ञात् छन्दांसि गायत्र्यादीनि जज्ञिरे तस्माद्यज्ञात् यजुरप्यजायत ॥९॥

अनुवाद–सर्वहुत नामक उसी मानसयज्ञमें ऋग्वेद और सामवेद प्रादुर्भावको पाये, और उसी यज्ञमें गायत्री उष्णिक् बृहतीत्यादिक छन्द भी प्रादुर्भावको पाये, यजुर्वेदभी उसी यज्ञमेंसे प्रादुर्भूत हुवा ॥ ९ ॥

८८. ८ ४ १८. तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः॥१०॥१८॥

तस्मात्पूर्वोक्ताद्यज्ञात् अश्वा अजायन्त उत्पन्नाः, तथा ये के चाश्वव्यतिरिक्ता गर्दभा अश्वतराश्चोभयादत ऊर्ध्वाधोभागयोः उभयोर्दन्तयुक्ताः सन्ति येषां तेपि तस्मादजायन्त, तथा तस्माद्यज्ञात् गावश्च जज्ञिरे, किंच तस्माद्यज्ञादजा अवयश्च जाताः ॥ १० ॥ १८ ॥

अनुवाद–उसी पूर्वोक्त यज्ञमें अश्व प्रादुर्भावको पाये, और जोकी अश्वातिरिक्त गर्दभ अश्वतरादिक (मुखान्तर्गत) उपरनीचे दोनों जगापर दन्तवाले पशु उष्ट्रादिक वेभी उसी यज्ञसें प्रादुर्भूत हुवे. और उसी यज्ञमेंसे गो अज अवि यानें गैया बकरी भेडी (भेढी) इत्यादिक सब प्रादुर्भूत हुवे ॥ १० ॥

८९. ८ ४ १९ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।

मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥ ११ ॥

प्रश्नोत्तररूपेण ब्राह्मणादिसृष्टिं वक्तुं ब्रह्मवादिनांप्रश्नाउच्यन्ते-प्रजापतेः प्राणरूपा देवा यद्यदा पुरुषं विराड्रूपं व्यदधुः संकल्पेनोत्पादितवन्तः तदानीं कतिधा कतिभिः प्रकारैः व्यकल्पयन् विविधं कल्पितवन्तः, अस्य पुरुषस्य मुखं किमासीत्, कौ बाहू अभूतां, का ऊरू, कौ च पादौ उच्येते, प्रथमं सामान्यरूपप्रश्नः पश्चात् मुखं किमित्यादिना विशेषविषयाः प्रश्नाः ॥ ११ ॥

अनुवाद–प्रश्नोत्तररूपसें ब्राह्मणादिककी सृष्टिको प्रतिपादन करनेके लिये ब्रह्मवादियोंके प्रश्न कहतेहै–प्रजापतीके प्राणरूप देव जिस समय उस् विराट् पुरुषको संकल्पित करते भये उस् समयमे कितनें प्रकारसें कल्पना हुइ, इस पुरुषका मुख क्या था ? उस् पुरुषके बाहुद्वय कौन थे ? और ऊरुद्वय तथा पादद्वय कौन थे ? यह प्रश्न पहिले सामान्यरूपसें कहेकरके इसके बाद मुखादिकअवयवविषयक विशेष प्रश्न है. ॥ ११ ॥

९०. ८ ४ १९ ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहूराजन्यःकृतः ।

ऊरूतदस्ययद्वैश्यःपद्भ्यांशूद्रोअजायत ॥ १२ ॥

इदानीं पूर्वोक्तप्रश्नानामुत्तराणि दर्शयति–अस्य प्रजापते ब्राह्मणो ब्राह्मणत्वजातिविशिष्टः पुरुषो मुखमासीत् मुखादुत्पन्न इत्यर्थः, योय राजन्यः क्षत्रियत्वजातिविशिष्टः स बाहूकृतः बाहुत्वेन निष्पादितः बाहुभ्यामुत्पादित इत्यर्थः, तत्तदानीमस्य प्रजापतेः यद्यौ उरू तद्रूपो वैश्यः संपन्नः ऊरुभ्यामुत्पन्न इत्यर्थः, तथास्य पद्भ्यां पादाभ्यां शूद्रः शूद्रत्वजातिमान् पुरुषोजायत, इयंतु मुखादिभ्यो ब्राह्मणादीनामुत्पत्तिः यजुःसंहितायां सप्तमकांडे" समुखतस्त्रिवृतनिरमिमीत " इत्यादौ विस्पष्टमाम्नाता । अतः प्रश्नोत्तरे उभे अपि तत्परत्वेनैव योजनीये ॥ १२ ॥

अनुवाद–अब पूर्वोक्त प्रश्नेंके उत्तर कहते है–ब्राह्मणत्वजातिवाला पुरुष इस् प्रजापति (परमात्मा) का मुख है, यानें ब्राह्मणोंको मुखसें प्रकट कियें है. क्षत्रियत्व जातिवाला पुरुष इस (प्रजापति) का बाहु (हस्त) है, यानें क्षत्रियोंको बाहुद्वयसें प्रादुर्भूत कियें है. ऊरुद्वयसें वैश्यका प्रादुर्भाव किया है. और चरणद्वयसें शूद्रका प्रादुर्भाव किया है. मुखादिकसें ब्राह्मणादिकके प्रादुर्भावका यजुःसंहिताके सप्तमकाण्डमें स्पष्ट कथन कियाहै, "परमेश्वरने मुखसें त्रिवृतका निर्माण किया " इत्यादि । इस लिये इन् प्रश्न और उत्तरोंका इसीमें तात्पर्य है ॥ १२ ॥

९१. ८ ४ १९ चन्द्रमामनसोजातश्चक्षोः सूर्योअजायत ।

मुखादिंद्रश्चाग्निश्चप्राणाद्वायुरजायत ॥ १३ ॥

यथा दध्याज्यादिद्रव्याणि गवादयः पशवः ऋगादिवेदाः ब्राह्मणादयो मनुष्याश्च तस्मादुत्पन्ना एवं चन्द्रादयो देवा अपि तस्मादेवोत्पन्नाइत्याह—प्रजापतेर्मनसः सकाशात् चन्द्रमा जातश्चक्षोश्चक्षुः सूर्योऽप्यजायत, अस्य मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च देवावुत्पन्नौ, अस्य प्राणाद्वायुरजायत ॥ १३ ॥

अनुवाद—जैसें दधिघृतादिक द्रव्य गैयाअजादिक पशु ऋगादिक वेद ब्राह्मणादि मनुष्य यह सब उस परमेश्वरसें प्रादुर्भूत हुवे हैं तैसेंही चन्द्रादिक देवभी उसी (परमेश्वर) सें प्रादुर्भाव पाये हुवे हैं ऐसा कहते है—उस प्रजापति (परमेश्वर) के मनसें चन्द्र प्रादुर्भूत हुवे, और चक्षुसें सूर्य प्रादुर्भूत हुवे. और मुखसें इन्द्र और अग्नि, और प्राणसे वायु यह सब प्रादुर्भूत हुवे॥१३ ॥

९३. ८ ४ १९ नाभ्यांआसीदन्तरिक्षंशीर्ष्णोद्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यांभूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथांलोकाँअकल्पयन् ॥१४ ॥

यथा चन्द्रादीन् प्रजापतेर्मनःप्रभृतिभ्योकल्पयन्, तथान्तरिक्षादीन् लोकान् प्रजापतेर्नाभ्यादिभ्यो देवा अकल्पयन् उत्पादितवन्तः, एतदेवदर्शयति—नाभ्याः प्रजापते र्नाभेरन्तरिक्षमासीत्, शीर्ष्णः शिरसो द्यौः समवर्ततोत्पन्ना, अस्य पद्भ्यां भूमिरुत्पन्ना, अस्य श्रोत्राद्दिश उत्पन्ना इति ॥ १४ ॥

अनुवाद—जैसें चन्द्रादिकके प्रादुर्भावकी कल्पना देवोंनें प्रजापति (परमेश्वर) के मनआदिक इन्द्रियोंसे की है तैसेंही अन्तरिक्षादिक लोकोंकोभी देवोंनें प्रजापतिके नाभ्यादिक अवयवोंसे सकल्पित किये हैं, सो कहतेंह—उस् प्रजापति की नाभिसे अन्तरिक्ष लोक प्रकट हुवा. मस्तकसें द्युलोक (स्वर्ग) प्रकट हुवा. चरणद्वयसें भूलोक प्रकट हुवा, और इस् प्रजापति (परमेश्वर) के श्रोत्र (कर्ण) सें दिशायें प्रकट हुइं ॥ १४ ॥

९३. ८ ४ १९ सप्तास्यांसन्परिधयस्त्रिः सप्तसमिधःकृताः ।
देवायद्यज्ञंतन्वानाअबध्नन्पुरुषंपशुम् ॥ १५ ॥

अस्य साकल्पिकस्य यज्ञस्य गायत्र्यादीनि सप्तछंदांसि परिधय आसन्, ऐष्टिकस्याहवनीयस्य त्रयः परिधयः, उत्तरवेदिकास्त्रयः, आदित्यश्च सप्तमः परिधिः

प्रतिनिधिरूपाः, अतएवाम्नायते "नपुरस्तात्परिदध्यादित्यादित्योह्येवोद्यन् पुरस्ताद्रक्षांस्यपहन्ती"ति। तत एते आदित्यसहिताः सप्त परिधयोत्र सप्तच्छंदोरूपाः, तथा समिध स्त्रिसप्त त्रिगुणिताः सप्तसंख्याका एकविंशतिः कृताः। द्वादश मासा पंच ऋतव इमे लोका असावादित्य एकविंश इति. एते पदार्था. एकविंशतिदारुयुक्तेध्मत्वेन भाविताः यद्यः पुरुषो वैराजोस्ति तंपुरुषं देवाः प्रजापतिप्राणेन्द्रियरूपाः यज्ञं तन्वानाः मानसं यज्ञं कुर्वाणाः पशुमबध्नन् विराट्पुरुषमेव पशुत्वेन भावितवन्तः, एतदेवाभिप्रेत्य पूर्वत्र पुरुषेण हविषेत्युक्तम् ॥ १५ ॥

अनुवाद–संकल्पसिद्ध इस मानस यज्ञके गायत्र्यादिक सप्तच्छन्द परिधि (तेजोमण्डलस्थानापन्न) थे, यानें ऐष्टिक जो आहवनीय है, उसके तीन परिधि और तीन उत्तर वेदिका और सप्तम परिधि सूर्य, यह सब प्रतिनिधिरूप हैं. श्रुतिमेंभी कहा है की– "अग्र भागसें परिधान करना नहिं, क्योंकी उदयाभिमुख सूर्य अग्र भागमेंसें राक्षसोंका संहार करतेंहैं." इस लिये गायत्र्यादिक सप्तछन्द आदित्य सहित सप्त परिधि है, और एकवीश समिध हैं. १२ मास ५ ऋतु भूरादि ३ लोक और १ सूर्य यह सब पदार्थ समिधरूपसें संभावित किये हैं. जो वैराज पुरुष है उसको प्रजापति प्राण और इन्द्रियरूप देव मानस यज्ञ निमित्त पशुत्वकी भावनासें यज्ञीय यूपमें बन्धन करने लगे. इसी अभिप्रायसें पूर्वमें पुरुषकोही विषय कहाहै, नरमेध करनेंके लिये पुरुषको पशु कहा नहिं है ॥ १५ ॥

९४. ८ ४ १९ यज्ञेनयज्ञमयजन्तदेवास्तानिधर्माणिप्रथमान्यासन्।

तेहनाकंमहिमानःसचन्तयत्रपूर्वेसाध्याःसन्तिदेवाः॥१६॥ १९ ॥

पूर्वं प्रपंचेनोक्तमर्थं संक्षिप्यात्र दर्शयति–देवाः प्रजापतिप्राणरूपाः यज्ञेन यथोक्तेन मानसेन संकल्पेन यज्ञ यथोक्तयज्ञस्वरूपं प्रजापतिमयजन्त पूजितवन्तः, तस्मात्पूजनात् तानि प्रसिद्धानि धर्माणि जगद्रूपविकाराणां धारकाणि प्रथमानि मुख्यभूतान्यासन्, एतावता सृष्टिप्रतिपादितसूक्तभागार्थः संगृहीतः। अथोपासनतत्फलानुवादकभागार्थः संगृह्यते–यत्र यस्मिन्विराट्प्राप्तिरूपे नाके पूर्वे साध्याः पुरातना विराडुपास्तिसाधका देवाः सन्ति तिष्ठन्ति, तन्नाकं विराट्

प्राप्तिरूपं स्वर्गे ते महिमानः तदुपासका महात्मानः सचन्त समवयन्ति प्राप्नुवन्ति ॥ १६ ॥ १९ ॥

अनुवाद-प्रथम विस्तारसें कहे हुवे अर्थको अब संक्षेपसें कहतें हैं-प्रजापति और प्राणरूप देव मानस संकल्पसें पूर्वोक्त यज्ञस्वरूप प्रजापति (परमेश्वर) का यजन करते भये, उस् यजन (पूजन) से प्रपंचरूप विकारोंको धारण करनेंवाले सुप्रसिद्ध मुख्य धर्म प्रचलित हुवे. इस् अर्थसें सृष्टि प्रतिपादित सूक्तभागका अर्थ गृहीत हुवा। अब उपासना और उसके फलको अनुवाद करनेवाला भाग संगृहीत करतेंहै- जिस् विराट् (परमेश्वर) की प्राप्तिरूप स्वर्गमें साध्य-विराड्की उपासना करनेवाले प्राचीन देव अवस्थित है परमेश्वरकी प्राप्तिरूप उस स्वर्गको उस विराट्की उपासना करनेवाले महात्मा लोक अवश्य प्राप्त होतें है. ॥ १६ ॥ १९ ॥

९५. ८ ६ १६ घर्मा समन्ता त्रिवृतं व्यापतुस्तयोर्जुष्टिं मातरिश्वा जगाम।
दिवस्पयो दिधिषाणा अवेषन्विदुर्देवाःसहसामानमर्कम्॥१॥

समंतौ संगतौ घर्मौ स्वयंदीप्यमानौ जीवेश्वरौ त्रिवृतं सत्वरजस्तमोगुणात्मिकां माया व्यापतुः नियन्तृनियन्तव्यभावेन । मातरिश्वा परमात्मा तयोर्जुष्टिं संभोक्तव्यपदार्थैः संजातां प्रीतिं जगाम गतवान्, तं परमात्मानं वेदमयम् इमं "सूर्यम्" इति देवा जानन्ति ॥ १ ॥

अनुवाद-हमेशां साथ रहनेवाले और स्वयंप्रकाशरूप जीव और ईश्वर नियम्यानियन्तृभावसें सत्व रज और तमः इन् तीन गुणवाली मायाको व्याप्त करते भये, अर्थात् ईश्वर मायाको वश करके उसका नियन्ता, और जीव मायाका वशीभूत होके उसका नियम्य बना, और परमात्माकी जो सोपाधिक चेतनात्मक जीवेश्वरसें पर है सो उन् दोनोंकी तत्तत्कार्यविषयक प्रवृत्तिको जानते भये. उस वेदमय परमात्माको "यह सूर्य है" ऐसा देवतालोक जानतें है. १ ॥

९६. ८ ६ १६ तिस्रोदेष्ट्राय निर्ऋतीरुपासतेदीर्घश्रुतोविहिजानन्तिवह्नयः।
तासांनिचिक्युःकवयोनिदानंपरेषुयागुह्येषुव्रतेषु ॥ २ ॥

निर्ऋतीः निःशेषेण ऋच्छंति गच्छन्तीति निर्ऋतयः तास्तिसः सृष्टि-स्थितिसंहृतीः देहू य आत्मनः कर्मभोगदानाय उपासते, ते दीर्घश्रुतः दीर्घं संसारे शृण्वतः मन्तव्यदृश्यादिपदार्थं जानन्तः मंत्रदृश्यादिरूपमजानन्त इत्यर्थः। अतएव वह्वयः संसरस्य वोढार, ता न जानन्ति, कवयः कान्तदर्शिनस्तु तासा सृष्ट्यादीनामग्न्यादीनां वा निदानं मूलकारणं परमात्मानं निचिक्यु नितगं चिन्वन्ति जानन्ति, परेषु उत्कृष्टेषु वा गुह्येषु गोप्तव्येषु कर्मसु यमनियमादिषु व्रतेषु याः प्रवृत्तयः सन्ति तासा निदानं निचिक्युः जानन्ति. ॥ २ ॥

अनुवाद–वेदान्तशास्त्रोपदिष्टसाधनसमूहद्वारा तत्त्वदृष्टिको न संपादन करनेसें आदिभूत परमेश्वरको यथार्थ नहिं जाननेवाले और इसी लिये समग्र प्रपंचका अवास्तविक भारको ढोने (उठाने) वाले अज्ञ लोक दृश्यवर्गान्तर्गत किसी एक अनुत्तम पदार्थके ज्ञानसें अपनें को कृतार्थ मान करके कर्मफलोपभोगार्थ (देहकी) उत्पत्ति स्थिति और प्रलयरूप निर्ऋतिकी उपासना करतेहैं, यानें आत्मसाक्षात्कारमें विमुख होकर बाह्यवृत्तिद्वारा शोभनाध्यासमें तत्तत्पदार्थकी प्राप्तिमें कृतार्थता मानते हुवे विविध योनियांमें जन्म लेनेके बाद पूर्वोपार्जित पुण्यपापके फलको तत्तत् लोकमें स्थित होकरके भोगतें है, और फलके अवसानमें स्वयंभी अवसन्न होकरके प्रलयात्मक मृत्युको प्राप्त होतें है. एवं जन्मानन्तर मरण और मरणानन्तर जन्मको हमेशा पाते रहतें है. लेकिन् अन्तर्मुखवृत्तिद्वारा आत्मसाक्षात्कारमें प्रवृत्त होते नहिं. और कवि–कान्तदर्शी सम्यग्ज्ञानवाले महात्मा लोक सृष्टि और संहारका कारण अथवा अग्न्यादिकका कारणरूप परमेश्वरको यथार्थ रीतिसें जानतें है, और उत्कृष्ट अथवा गुप्त जो जपादिक कर्म है, किंवा यमनियमादिक अथवा ब्रह्मचर्यादिव्रतोंमें जो प्रवृत्ति है सो किंनिमित्तक है ? याने उस प्रवृत्तिका उद्देश क्या है ? उस् उद्देशकोभी परमात्मरूपही जानतें है, यानें जपादि यमनियमादिक साधनसमूहसें चित्तवृत्तिकी एकाग्रता द्वारा परमात्मस्वरूप परमपदकी प्राप्ति होती है ऐसा ज्ञानी लोक समझतें है, और अज्ञानीलोकनकी भावना इससें विपरीत होती रहती है. ॥ २ ॥

९७. ८ ६ १६ चतुंष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानिवस्ते।
तस्यां सुपर्णा वृषणा निपेदतुर्यत्र देवा दधिरे भागधेयम् ॥३॥

चतुष्कपर्दा नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चत्वारः कपर्दस्थानीया यस्या सा युवति स्तरुणी नित्या घृतप्रतीका दीप्यमानवर्णावयवा एषा औपनिषदी वाक् वयुनानि ज्ञानानि वस्ते आच्छादयति, तस्यां वाचि सुपर्णा सुपर्णौ जीवपरमात्मानौ निषण्णौ भवत', यया वाचा देवा भागं धारयन्ति ॥ ३ ॥

अनुवाद–शब्द तिङ्प्रत्ययान्त धातु उपसर्ग और निपात (अव्यय) एतच्चतुष्टयात्मक वर्णवृन्दरूप कबरी (वेणी) को धारण करनेवाली और देदीप्यमान वर्णरूपअवयववाली और पूर्ण यौवनवाली यह उपनिषत्संबन्धि वाणी ज्ञानको आच्छादित करके याने ज्ञानको अपनी भीतर रख करके सदा वर्तमान है, उसी उपनिषद्वाणीमें जीवात्मा और परमात्मा गुप्तरूपसे रहे हुवे हैं, की जिस वाणीसे देवतालोक अपने अपने भागको ग्रहण करते है. ॥ ३ ॥

९८. ८ ६ १६ एकः सुपर्णः स समुद्रमाविवेश स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे।
तं पाकेन मनसापश्यमन्तितस्तं माता रेळ्हि स उरेळ्हि मातरम् ॥४॥

सुपर्णः पक्षवान् निराधारसंचारी एकः प्राणवायुः परमात्मा वा समुद्रं समुद्द्रवन्ति आपोऽस्मादिति समुद्रमन्तरिक्षं, यद्वा समुद्रव सर्वतोगमनं तच्छील प्रपंचजातमाविष्टवान् "सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशदि" ति श्रुते –(तैत्तिरीय २–२–६) वायु पक्षे वाय्वादिरूपेणाविवेश स इदं विश्व सर्वं लोकं विचष्टे विशेषेण ख्यापयति, सति हि प्राणे परमात्मनि वा जीवन्त. पुरुषा लोक विख्यात कुर्वन्ति, त देव उपास नोहं पाकेन परिपक्वज्ञानेन मनसा अन्तित अन्तिके समीपे स्वहृदये अपश्यं, तं प्राणं माता वाक् रेहि वाक् प्राणेऽन्तर्भवतीत्यर्थः। स्वापे हि वाग्व्यापारे न दृश्यते प्रणव्यापारस्तु दृश्यतइति ॥ ४ ॥

अनुवाद–पक्षवान् निराधार-अन्तरिक्षादिक स्थलमें गमन करनेवाला असहाय प्राणवायु अथवा परमेश्वर अन्तरिक्ष अथवा प्रपचमें प्रविष्ट हुवा "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" उस प्रपंचको उत्पन्न करके उसीमें (परमात्मा) अनु-

प्रविष्ट हुवा, वायुपक्षमें वाय्वादिस्वरूपसें आविष्ट हुवा, वही परमात्मा इस समग्र विश्वको अग्निरूपसें विस्तृत करता है, और यह बात उपपन्नभी है की परमात्मा किंवा प्राणात्मक वायुकी सहायताहीसें लोक जीवनको धारण कर सकें हैं. उस देवको मैं उपासक परिपक्वज्ञानवाले मनसें अपने हृदयमें साक्षात्कार करता हुं. उसी (परमात्मा किंवा प्राण) में वागिन्द्रिय अन्तर्भूत होतीहैं, निद्रित होने पर वाग्व्यापार बंध होता है, तथापि प्राणव्यापार तो यथापूर्व अवस्थितही रहता है. ॥४॥

९९. ८ ६ १६ सुपर्णंविप्राःकवयोवचोभिरेकंसन्तंबहुधाकल्पयन्ति ।
छन्दांसिचदधतोअध्वरेषुग्रहान्त्सोमस्यमिमतेद्वादश ॥५॥१६॥

विप्रा मेधाविनः कवयः क्रान्तप्रज्ञाः मनुष्याः सुपर्णं सुपतनमेकं सन्तं परमात्मानं वचोभिः स्तुतिलक्षणैर्वचनैर्बहुधा बहुप्रकारं कल्पयन्ति कुर्वन्ति। किंच त एव कवयः अध्वरेषु यज्ञेषु छन्दांसि गायत्र्यादीनि सप्त छंदांसि दधतः स्तोत्रशस्त्रादिना धारयन्तः द्वादशसंख्याकान् सोमस्य ग्रहान् ग्रहणसाधनानि पात्राणि उपांश्वन्तर्यामादीनि मिमते. ग्रहान् गृह्यते एभिरिति ग्रहाः ॥५॥१६॥

अनुवाद–बुद्धिवान् और सर्वातिक्रान्त पदार्थको जाननेवाले पण्डित-लोक, सर्वत्र व्यापक इस परमात्माको स्तोत्रात्मक वचनोंसे यह पारमार्थिक स्व-रूप एक होनेपरभी अनेक प्रकारसें कहते हैं. और वही पण्डितलोक यज्ञादिकर्म, स्तोत्रशस्त्रादिकसें गायत्र्यादिक सप्त छन्दोंको धारण करके सोमके धारक अन्त-र्यामादिक द्वादशपात्रोंका निर्माण करते हैं.॥५॥

१००. ८ ६ १७ सहस्रधापञ्चदशान्युक्थायावद्द्यावापृथिवीतावदित्तत् ।
सहस्रधामहिमानःसहस्रंयावद्ब्रह्मविष्ठितंतावतीवाक् ॥८॥

सहस्रधा सहस्रसंख्याकेषु ब्रह्मादिस्तंबपर्यन्तेषु देहेषु पंचदशानि चक्षुः श्रोत्रं मनो वाक् प्राण इत्येतानि पंच, तदाधारत्वेन मातापित्रोः सकाशात् आगतानि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशरूपाणि भूतानि मिलितानि दश, एवं पंचदशसंख्याकानि उक्थं उक्थानि उत्कृष्टान्यङ्गानि विद्यन्ते प्राणिदेहेषु जातेषु द्यावापृथिव्योः याव-त्परिमाणमस्ति तावदित् तत्परिमाणमेव आत्माधिष्ठितं प्राणिदेहजातं भवति ।

किंच सहस्रधा सहस्रसंख्याकेषु सहस्रं महिमानः सहस्रसंख्याका महान्तो व्यवहार-विशेषा भवन्ति, प्रतिविषयं प्रतिलक्षणं दर्शनश्रवणादिव्यवहारनिष्पत्तेः, सहस्र-धेत्यत्र ब्रह्म जगत्कारणं वस्तु यावत् नानाविधप्राणिदेहरूपेण यावत्परिमाणं भूत्वा विष्ठितं विशेषेण स्थितं, वाक् तावती तत्परिमाणा भवति, एकैकस्याभिधेयार्थ-स्यैकैकनामापेक्षणात् । अन्यत्रापिश्रूयते- "सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो नाम नि कृत्वाभिवदन्यदास्त " इति (तैत्तिरीय आरण्यके ३-१२-७) ॥८॥

अनुवाद—ब्रह्मासें लेकरके स्तम्बपर्यन्त अनेक देहमें कार्यात्मक अपंचीकृत चक्षुः श्रोत्र मन वाणी और प्राण यह पांच, और कारणात्मक अपंचीकृत पंच महाभूत, और पंच पंचीकृत महाभूत की जो अपने मातापिताके पाससें शरीरमें अनुगत हैं, एवं सब मिलके पंचदश उत्कृष्ट अंग उत्पन्न होनेवाले प्राणिदेहनमें होतेहैं । आकाश और पृथ्वीका जितना परिमाण है उतनाही परिमाणवाले आत्माधिष्ठित प्राणिके शरीर होतेहैं. और अनेक (स्व) संख्यावाले उन् देहोंमें बडे बडे बहुत व्यवहार हो रहेहैं. प्रत्येक विषयोंमें और प्रत्येक लक्षणोंमें दर्शनश्रवणादिक व्यवहार प्रत्यक्ष अनुभूयमान हैं. जगत्का कारणभूत परमात्मा विविध प्राणिन्के देहस्वरूपसें तावत्परिमाणक मायाद्वारा बनके अवस्थित हैं, उतने परिमाणसें वाणीभी विस्तृत है, क्योंकी सचराचर प्रपंचमें जितनें अभिधेय अर्थ हैं उनका बोध करनेके लिये नाम-वाग्रूपशब्दकी आवश्यकता है, श्रुतिमेंभी कहा है की " सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर नामरूपात्मक इस् प्रपंचको उत्पन्न करके और जीव स्वरूपसें उसीमें प्रविष्ट हो करके अभिवदन-वचनादिव्यापारवान् होता है " ॥८॥

२०१. ८ ६ १७ कश्छन्दसां योगमावेद धीरः को धिष्ण्यां प्रति वाचं पपाद ।
कमृत्विजामष्टमं शूरमाहुर्हरी इन्द्रस्य नि चिकाय कः स्वित् ॥९॥

धीरो धीमान् को मानुषः छन्दसां गायत्र्यादीनां योगं स्तुतशस्त्रात्मना योगमावेद आजानाति । कोवा धिष्ण्यां धिष्ण्यानि होत्रादीनां सप्त स्थानानि तदर्हां वाचं प्रतिपपाद प्रतिपादयति करोति । किंच ऋत्विजां होत्रादीनां सप्तानां अष्टमं अष्टसंख्यापूरकं शूरं स्वतंत्रं कमाहुः वदन्ति । कः स्वित् कः खलु इन्द्रस्य हरी ऋक्सामरूपौ द्वावश्वौ " ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी " इत्याम्नायते, तादृशौ हरी

नीचिकाय नितरां पूजयति जानाति। वेदिता प्रतिपादयिता अष्टसंख्यापरिपूरकस्य देवस्य ज्ञातावा परमात्मनोऽन्योनास्तीत्यर्थः ॥ ९ ॥

अनुवाद—कौन बुद्धिमान् पुरुष गायत्र्यादिकछन्दके योगको स्तुतशस्त्र-स्वरूपसे जानता है? कौन पुरुष होता अध्वर्यु इत्यादिकके सप्तस्थानोंको और तदुचित वाणीको प्रतिपादन कर सक्ता है? और होता इत्यादिक सप्त ऋत्विजोंमें अष्टम पुरुष स्वतन्त्र कौन है? इन्द्रके ऋक्सामरूप दोनों अश्व कौनहैं? और वैसे अश्वकी पूजा (कौन) करताहै?। गायत्र्यादिक छन्दोंके योगको जानने वाला सप्तस्थान और तदुचित वाणीको करनेवाला अष्टमत्व संख्यावाले स्वतंत्र देवको यथार्थ जाननेवाला परमात्मासे अतिरिक्त कोइ हैही नहिं. ॥ ९ ॥

१०२. ८ ७ १ ॐम् तदिदास भुवनेषुज्येष्ठंयतोजज्ञउग्रस्त्वेषनृम्णः॥
सद्यो जज्ञानोनिरिणातिशत्रूननुयंविश्वेमदन्त्यूमाः ॥१॥

तत् जगत्कारणत्वेन सर्ववेदान्तप्रसिद्धं भुवनेषु (भूसत्तायां) सत्सु पृथिव्यादिषु लोकेषु मध्ये जगत्कारणं ब्रह्मैव ज्येष्ठं प्रशस्ततममास बभूव। तस्य परमार्थत्वात् तद्व्यतिरिक्तानां व्यावहारिकत्वाच्च। यद्वा ज्येष्ठं वृद्धतमं जगत्कारण-त्वेन सर्वेषामादिभूतं बभूव। यद्वा वृद्धं तदेव ब्रह्म स्वप्रकाशतया आस. यतउपादान-भूतात् यस्माद्ब्रह्मणः उग्रःउद्गूर्णः त्वेषनृम्णः प्रदीप्तबलः मूर्त्यात्मक इन्द्रः जज्ञे जातो बभूव। श्रूयते हि—"चक्षोः सूर्यो अजायतेति" (ऋ. सं. ८-४-१९) "सूर्या चन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमकल्पयदि" तिच (ऋ. सं. ८-८-४८)। सच जज्ञानो जायमान एव सद्यः शीघ्रं शत्रून् राक्षसान् निरिणाति निहिनस्ति. यद्वा उपासकानां पापरूपान् शत्रून् निहन्ति, तथाचब्राह्मणं-"सद्योह्येष जातः पाप्मानमपाहतेति" विश्वे सर्वे ऊमाः अवन्ति रक्षन्तीत्यूमाः प्राणिनः सर्वप्राणिनो यं सूर्यात्मकमुद्यन्तमिन्द्रमनु-लक्ष्य मदर्थमुदगात् मदर्थमुदगादिति मदन्ति हृष्यन्ति, तथाच ब्राह्मणं-"भूतानि वैविश्वऊमास्तएनमनुमदन्ति उदगादुदगादिती" ति, तैत्तिरीयकंच-तस्मात्सर्वएवमन्य-न्तेमांप्रत्युदगादिति। यद्वा यं स्तुत्यादिभिर्मोचन्तमनु पश्चात्सर्वे प्राणिनोऽभीष्टप्राप्त्या हृष्यन्ति स इन्द्रो जज्ञ इत्यन्वयः ॥ १ ॥

अनुवाद—पृथिव्यादिक लोकोंकी मध्यमे जगत्के कारणरूपसे वेदान्त-शास्त्रमें प्रसिद्ध परब्रह्मही प्रशंसनीय है, क्योंकी वह ब्रह्म पारमार्थिक है और

उससे व्यतिरिक्त पृथिव्यादि लोक और तदन्तर्गत विषयवृन्द सब व्यावहारिक हैं, अथवा वह ब्रह्म ज्येष्ठ अत्यन्त वृद्ध यानें समस्त प्रपञ्चका कारण होनेंसे सबोंका आदिभूत है. किंवा वृद्ध ऐसा वह परब्रह्म स्वयंप्रकाशरूपसे है, यानें नित्य अखंडित स्वप्रकाश चैतन्यरूपसें देदीप्यमान है, और उपादान कारणभूत जिस परब्रह्मसें उग्र स्वभाव (प्रताप) वाले प्रदीप्तबलवाले सूर्यात्मक देव आविर्भावको पायें हैं, श्रुतिमें भी कहाहैकी "उस परमेश्वरके चक्षुरिन्द्रियसें सूर्यदेव प्रादुर्भावको पायें है" "परमेश्वरनें पूर्वकल्पानुसार सूर्य चन्द्रको प्रकट कियें है"। और वही सूर्यदेव आविर्भावको पातेहुवे त्वरित शत्रुओंका याने मन्देहादिक राक्षसोंका नाश करतें हैं. अथवा उपासकोंके पापरूप शत्रुओंको नष्ट करतें है, वेदवाक्यभी हैकी—"यह सूर्यदेव प्रादुर्भावको पाते हुवे त्वरित पापोंको नष्ट करते भये"। सकलप्राणी उदयाभिमुख इस सूर्यात्मक देवको लक्ष्य करके आनन्दित होतें है, ब्राह्मणभागमें कहाहैकी "भूतभौतिकसृष्टिके अन्तर्गत सकल प्राणी उदयाभिमुख होते हुवे इस सूर्यदेवको लक्ष्य करके हर्षित होतेंहै" तैत्तिरीयक आरण्यक श्रुतिमेंभी कहा हैकी "सब लोक ऐसाही मानतें हैं की यह सूर्य देव मेरे (शुभके) लिये उदित हुवेंहै"। अथवा स्तुतिनमनादिकनें जिस सूर्य देवके संतुष्ट होनेके बाद स्तुत्यादि करनेवाले प्राणि इष्ट पदार्थकी प्राप्तिद्वारा मुदित होतें है, वैसे सूर्य देव प्रादुर्भावको प्राप्त हुवे ॥ १ ॥

१०२. ८ ७ १ त्वेक्रतुमपिवृञ्जन्तिविश्वेद्वियदेतेत्रिर्भवन्त्यूमाः।
स्वादोःस्वादीयःस्वादुनासृजासमदःसुमधुमधुनाभियोधीः॥२॥

हे इन्द्र ते त्वयि विश्वे सर्वे यजमाना. क्रतुमनुष्ठेयं कर्म वृजन्ति समापयन्ति। अपिशब्दो ब्राह्मणोक्तसर्वभूताना सर्वमनसा समुच्चयार्थः, सर्वाणि पृथिव्यादीनि भूतानि सर्वेषा प्राणिना मनासि सर्वे यज्ञक्रतवश्च व्याप्ते त्वय्येव यजमानैः परिसमाप्यन्त इत्यर्थ। तथाचब्राह्मण-'त्वयीमानि सर्वाणि भूतानि सर्वाणि मनासि सर्वे क्रतवोपि वृजन्तीत्येवतदाहे"ति। यद्यस्मात् एते ऊमाः तर्पकाः ईदृशा यजमानाः पूर्वमेकाकिनः सन्तः पश्चाद्‌द्वि-द्विवार स्त्रीरूपेण पुरुषेणच जाताः सन्तः पुनरपत्येन सार्धं त्रिः त्रिवार जन्मभाजो भवन्ति, एक एवात्मा स्त्रीपुंरूपेण जायते, "अर्धोवाएष आत्मनो यत्पत्नी"तिश्रुते, पुत्रोप्यात्मैव "आत्मावै पुत्रनामासी"तिश्रुतेः, अतएव-

मेवोभिवृद्धा भवन्ति ततोवगम्यते त्वय्येवानुष्ठितं सर्वं कर्म परिसमापयन्ति इति। तथाचब्राह्मणं "द्वौवैसन्तौमिथुनौ प्रजायेते प्राजापत्या" इति। हे इन्द्र त्वंच स्वादोः पियाद्गृहधनादपि स्वादीयः स्वादुतरं प्रियतरमपत्यं स्वादुना स्वादुभूतेन मिथुनेन मातापित्रात्मकेन संसृज संयोजय। यद्वा स्वादुना भावेन उत्पन्नं तदपत्यमपि संयोजय। एतदेवाह-अदः तदपत्यं मधु मधुरं मधुना मदहेतुना मिथुनान्तरेण पौत्रेण सु सुष्ठु अभियोधीः अभियोधयाभितः क्रीडय ॥ ३ ॥

अनुवाद-हे इन्द्रदेव! समग्रयजमानलोक की जो हमेशां यज्ञयागादि कर्ममें परायण होकरके आपहीके भीतर सकल कर्मोंको समाप्त करतेहैं. मन्त्रोक्त " अपि " शब्दसें ब्राह्मणभागमें कहे हुवे सकल भूतोंके मन, गृहीत होते हैं, यानें पृथिव्यादिक समस्त भूत सकल प्राणिके मन और सकल यज्ञादिक क्रत्वात्मककर्म यजमानलोक (इन्द्रके लक्ष्यार्थ भूत) व्यापकस्वरूपवाले आपहीमें समाप्त करतेहैं, अर्थात् फलदानका स्वातन्त्र्य आपहीको होनेसें उन् कर्मोंको आपको समर्पित करतेहैं। ब्राह्मणभागमें कहा हुवा है की-" (हे परमात्मन्?) सकलभूत समस्तमन और समस्त ऋतु सब आपहीकी भीतर (रह करके अपने अपने व्यापारमें) तत्पर होरहेहैं-व्याप्रुत हैं " । और (यज्ञादिकसें देवोंको) तृप्त करनेवाले यजमानलोक पूर्वमें अकेले होनेपरभी पश्चात् स्त्रीरूपसें और पुरुषरूपसें आविर्भूत होतेहैं, और फिरसेंभी संतानके साथ तीसरी दफे जन्मवाले होतेहैं, याने एकही आत्मा है तथापि स्त्रीरूप और पुरुषरूपसें और फिरसें अपत्य (संतान) रूपसें प्रतीत होताहै, श्रुतिभी कहतीहै " यह जो धर्मपत्नी है सो आत्माका अर्धभाग (रूपसें कहिता) है " "पुत्र यह आत्माही है" इत्यादिक श्रुत्यनुसार आत्माही सकल स्वरूपमें अविद्याद्वारा प्रतीत हो रहाहै, जबकी इसी प्रकारसें सकलप्रपंच आत्मासें अव्यतिरिक्त है तब क्रियमाण (कर्म) कर्ता करण इत्यादिक सब आप (परमेश्वर) हीकी भीतर पर्यवसित होता है. । हे परमात्मन् ! गृहधनादिक की जो प्रिय है उसमेंभी प्रियतर अपत्य (संतान) को प्रेमपात्र जननीजनकाकार मिथुन-युग्मसें आप संयुक्त करें। अथवा स्वादिष्टभावसें उत्पत्तिको पाये हुवे उस संतानकोभी आप संयुक्त करें। यही बात कहतेहैं की प्रीतिपात्र इस अपत्यको मदहेतुक

प्रेमयुक्त पौत्रसें (संयोगद्वारा) अच्छी तरहसें क्रीडा करवाओ यानें पुत्रपौत्रादिक संततिकी (आप) वृद्धि करें ॥ ३ ॥

१०४. ८ ७ ३ हिरण्यगर्भःसमवर्तताग्रेभूतस्यजातःपतिरेकआसीत् ।
सदाधारपृथिवींद्यामुतेमांकस्मैदेवायहविषाविधेम ॥ १ ॥

हिरण्यगर्भः हिरण्मयस्यांडस्य गर्भभूतः प्रजापतिर्हिरण्यगर्भः। तथाचतैत्तिरीयकं-"प्रजापतिर्वैहिरण्यगर्भः प्रजापतेरनुरूपत्वाये"ति। यद्वा हिरण्मयः अंडो गर्भवद्यस्य उदरेवर्तते सोऽसौ सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ इतिउच्यते, अग्रे प्रपंचोत्पत्तेः प्राक् समवर्तत मायाध्यक्षात् सिसृक्षोः परमात्मनः समजायत, यद्यपि परमात्मैव हिरण्यगर्भः तथापि तदुपाधिभूतानां वियदादीनां सूक्ष्मभूतानां ब्रह्मणः उत्पत्तेः तदुपहितोप्युत्पन्न इत्युच्यते, सच जातो जातमात्र एव एकः अद्वितीयः सन् भूतस्य विकारजातस्य ब्रह्मांडादेः सर्वस्य जगतः पतिरीश्वर आसीत्, न केवलं पतिरासदिव अपि तर्हि स हिरण्यगर्भः पृथिवीं विस्तीर्णां द्यां दिवं, उताषिच इमां अस्माभिर्दृश्यमानां पुरोवर्तिनीमिमां भूमिं, यद्वा पृथिवीत्यन्तरिक्षनाम अन्तरिक्षं दिवं भूमिंच दाधार धारयति। कस्मै अत्र किंशब्दः अनिर्ज्ञातस्वरूपत्वात्प्रजापतौ वर्तते, यद्वा सृष्ट्यर्थं कामयते इति कः, यद्वा कं सुखं तद्रूपत्वात्क इत्युच्यते, अथवा इन्द्रेण पृष्टः प्रजापतिः मदीयं महत्त्वं तुभ्यं प्रदाय अहं कः कीदृशः स्यामित्युक्तवान्, स इन्द्रः प्रत्यूचे यादिदं ब्रवीपि अहं कः स्यामिति तदेव त्वं भवेति, अतः कारणात् क इति प्रजापतिराख्यायते। कं प्रजापतिं देवाय देवं दानादिगुणयुक्तं हविषा प्राजापत्यस्य पशोर्वपारूपेण एककपालात्मकेन पुरोडाशेन वा विधेम वयमृत्विजः परिचरेम ॥ १ ॥

अनुवाद-हिरण्मय ब्रह्माण्डके गर्भभूत हिरण्यगर्भ-प्रजापति, श्रुतिभी "हिरण्यगर्भका अर्थ प्रजापति" ऐसा कहती है. अथवा हिरण्मय अंड जिसके उदरमें गर्भवत् वर्तमान है सो सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ कहा जाताहै, वह हिरण्यगर्भ प्रपञ्चोत्पत्तिके पूर्वकालमें माया के अध्यक्ष होनेंसें जगत्की उत्पत्तिमें परायण परमात्मासें प्रकट हुवे, यद्यपि हिरण्यगर्भभी परमेश्वरस्वरूप होनेंसें प्राकट्यवान् नहिं हो सक्ता तथापि उस हिरण्यगर्भका उपाधिभूत वियदादिक स्थूल सूक्ष्म सब प्रपंच परमब्रह्मसें उत्पन्न हुवाहै इसलिये तदुपहित हिरण्यगर्भभी "प्रकट" शब्दसें

व्यपदिश्यमान होतेहैं. और वह हिरण्यगर्भ प्रकट होकरके त्वरितही स्वयं अद्वितीय समग्र विकृत वर्ग (प्रपंच) का ईश्वर--नियन्ता हुवा, केवल प्रपंचका नियन्ताही हुवा इतनाहिं नहिं किंतु वह हिरण्यगर्भ पृथ्वी विस्तृतद्युलोकको अथवा भूर्लोक भुवर्लोक और स्वर्लोकको धारण करता भया. सृष्टिको विस्तृत करनेकी कामनावाले अथवा अखंड सुखरूप अथवा प्रजापतिस्वरूप दानादिगुणसंपन्न उस हिरण्यगर्भ देवको एककपालात्मक पुरोडाशरूप हविष्यसें हम (ऋत्विज्) लोक विधिपूर्वक परिचर्या करते हैं. ॥ १ ॥

१०५. ८ ७ ३ य॒आ॑त्म॒दाब॑ल॒दायस्य॒विश्व॑उ॒पास॑तेप्र॒शिषं॒यस्य॑दे॒वाः ॥

य॒स्य॑च्छा॒यामृत॒यस्य॑मृ॒त्युःकस्मै॑दे॒वाय॑ह॒विषा॑विधेम ॥ २॥

यः प्रजापतिः आत्मदा आत्मनां दाता, आत्मानो हि सर्वे तस्मात्परमात्मन उत्पद्यन्ते, यथाग्नेः सकाशात् विस्फुलिंगा जायन्ते तद्वत्, यद्वा आत्मनां शोधयिता, बलदाः बलस्य च दाता शोधयिता वा यस्य च प्रशिषं प्रकृष्टं शासनमाज्ञां विश्वे प्राणिन उपासते प्रार्थयन्ते सेवन्ते वा, तथा देवाअपि यस्य प्रशासनमुपासते, अपिच अमृतं अमृतत्वं, भावप्रधानो निर्देशः। यद्वा अमृतं मरणं नास्ति अस्मिन्निति अमृतं सुधा, तदपि यस्य प्रजापतेः छाया छायेव भवति, मृत्युर्यमश्च प्राणापहारी छायेव भवति, तस्मै कस्मै देवायेत्यादिसमानं, पूर्वेण हविषा पुरोडाशात्मनेति तु विशेषः ॥ २ ॥

अनुवाद--जो प्रजापति आत्माको प्रकट करनेवाले हैं, जैसे अग्निसें अग्निकण प्रकट होतेहैं तैसेंही प्रजापतिसें चिदाभासात्मक जीवात्मा प्रकट होताहै. अथवा आत्मा-अन्तःकरणको जो प्रजापति शुद्ध करनेवालेहै, और बलको देनेवाले अथवा शुद्ध करनेवाले हैं, और सकलप्राणी जिनकी प्रकृष्ट आज्ञाकी प्रार्थना करते हैं, अथवा आज्ञाको उठातेहैं, और देवतालोकभी जिनकी आज्ञाको उठातेहैं, और अमृत (मरण जन्म रहित पदार्थ) जिनकी छायारूपहै, और मृत्युभी जिनकी छायारूपहै वैसे पूर्वमन्त्रोक्त प्रजापति देवको एककपालात्मक पुरोडाशरूप हविष्यसें हम (ऋत्विज्) लोक परिचर्या करतेहैं. ॥ २ ॥

१०६. ८ ७ ३ यः॒प्रा॑ण॒तोनि॑मिष॒तोम॑हि॒त्वैक॒इद्राजा॒जग॑तोब॒भूव॑ ।

यई॒शे॑अ॒स्यद्वि॒पद॒श्चतु॑ष्पदः॒कस्मै॑दे॒वाय॑ह॒विषा॑विधेम ॥३ ॥

यो हिरण्यगर्भः प्राणतः प्रश्वसतः निमिषतः अक्षिपक्ष्मचलनं कुर्वतः जगतः जंगमस्य प्राणिजातस्य महित्वा महत्त्वेन माहात्म्येन एक इत् अद्वितीय एव सन् राजा बभूव ईश्वरो भवति, अस्य परिदृश्यमानस्य द्विपदः पादद्वययुक्तस्य मनुष्यादेः, चतुष्पदो गवाश्वादेश्च यः प्रजापतिरीशे ईष्टे, ईदृशो यः प्रजापतिः तस्मै कस्मा इत्यादि सुबोधं, हविषा हृदयाद्यात्मनेत्ययमत्र विशेषः ॥ ३ ॥

अनुवाद–जो हिरण्यगर्भ, श्वासप्रश्वासवाले और निमेषोन्मेषवाले सचराचर प्रपचान्तर्गत समग्र प्राणिवर्गका (अपनी) महत्तासे अद्वितीय होकरकेभी नियन्ता है, और दृश्यमान द्विपद–मनुष्यादिक चतुष्पात्–गोमहिषाश्वादिकका भीजो प्रजापति (हिरण्यगर्भ) नियन्ता है, उनको हृदयादिस्वरूप हविष्यसे हम (ऋत्विज) लोक परिचर्या करतेहैं. ॥ ३ ॥

१०७. ८ ७ ३ यस्येमेहिमवन्तोमहित्वायस्यसमुद्रंरसयासहाहुः।

यस्येमाःप्रदिशोयस्यबाहूकस्मैदेवायहविषाविधेम ॥ ४ ॥

हिमा अस्मिन्सन्तीति हिमवान्, तेन बहुवचनान्तेन सर्वे पर्वता लक्ष्यंते, यथा छत्रिणो गच्छन्तीति, हिमवन्तो हिमवदुपलक्षिताः इमे दृश्यमानाः सर्वे पर्वता यस्य प्रजापतेः महित्वा महत्त्व माहात्म्यमैश्वर्यमित्याहुः, तेन सृष्टत्वात्तद्रूपेणावस्थानाद्वा, तथा रसया रसो जलं तद्वती रसा नदी रसाभि नदीभिः सह समुद्रं, पूर्ववदेकवचनं, सर्वान्समुद्रान् यस्य महाभाग्यमित्याहु कथयन्ति सृष्टज्ञाः, यस्य च इमाः प्रदिशः प्राच्यारंभा आग्नेय्याद्या. कोणदिशः ईशान्यन्ताः तथा बाहू, वचनव्यत्ययः, बाहवः भुजाः भुजवत्प्राधान्ययुक्ताः, प्रदिशश्च यस्य स्वभूताः तस्मै कस्मा इत्यादि समानं पूर्वेण ॥ ४ ॥

अनुवाद–हिमालयादिक समग्र पर्वत, इस प्रजापतिनें अपनी शक्तिसे निर्मित कियेहैं. अथवा यह प्रजापति स्वयं तत्तदाकार प्रतीत होतेहै, इसलिये (उन प्रजापतिका यह हिमालयादिक पर्वत) ऐश्वर्यरूप है. यद्यपि इस मन्त्रमें "हिमवान्" शब्दका प्रयोग करनेसे केवल हिमालय पर्वतही गृहीतहोना चाहिये तथापि "छत्रिणो गच्छन्ति" "छत्रधारी लोक जातेहैं." इस वाक्यसे छत्रसहित औरछत्ररहित सबलोकोंका ग्रहण जैसे होताहै वैसेही "हिमवान्"

शब्दके प्रयोगसें हिमालयादिकं समस्त पर्वत गृहीत होतें हैं, तो यह हिमालयादिक सब पर्वत उन प्रजापतिका ऐश्वर्यरूप है क्योंकी उनोने यह सब (पर्वत) रचे हुवे हैं, अथवा उनी (पर्वतों) के स्वरूपसें यह प्रजापति अवस्थित है, यानें तत्तदाकार रूपसें प्रतीयमान होरहें है. और उसीतरहसें समग्र नदीयोंके साथ सब समुद्रभी जिन (प्रजापति) का महत् ऐश्वर्यरूप हैं, ऐसा सृष्टिके रहस्यको जाननेवाले कविलोक कहतें हैं. और यह पूर्वदक्षिणादिक दिशायें और अग्निकोणसें लेकरके ईशान कोण पर्यन्त सब कोणदिशायें यह सब जिन (प्रजापति) के बाहुस्थानापन्न हैं, यानें बाहु जैसें प्रधानअवयव है तैसेंही दिशा और प्रदिशा यह जिनके बाहुरूप मुख्य अवयवस्थानापन्न हैं, उन प्रजापति देवकी हम (ऋत्विज) लोक हविष्यादिकसें परिचर्या करतें हैं. ॥४॥

१०८. ८ ७ ३. येनद्यौरुग्राप्रृथिवीचदृळ्हायेनस्वःस्तभितंयेननाकः।
योअन्तरिक्षेरजसोविमानःकस्मैदेवायहविषाविधेम ॥५॥३॥

येन प्रजापतिना द्यौः अन्तरिक्षं उग्रा उद्गूर्णाविशेषा गहनरूपा वा पृथिवी भूमिश्च दृढा येन स्थिरीकृताः, स्वः स्वर्गश्च येन स्तभितं स्तब्धं कृतं यथाधो न पतति तथा उपर्यवस्थापितमित्यर्थः, तथा नाक आदित्यश्च येनान्तरिक्षे स्तभितः यश्चान्तरिक्षे रजस उदकस्य विमानो निर्माता तस्मै कस्मा इत्यादिगतं ॥ ५ ॥ ३ ॥

अनुवाद-जिस् प्रजापतिनें अन्तरिक्ष और उत्पद्यमान पदार्थविशेष किंवा गहनस्वरूपवाली पृथिवी स्थिर की है, और स्वर्गभी जिनोंने नीचें न गिरजाय तैसें उपरितनभागमें स्थिरतासें स्थापित किया है, और सूर्यकोभी जिन्नें अन्तरिक्षमें स्थापित किया है, और जो प्रजापति (हिरण्यगर्भ) अन्तरिक्षमें (सें) जलका (वृष्टिद्वारा) निर्माण करनेवालें है, उन् प्रजापति देवको हम (ऋत्विज) लोक पुरोडाशादिक हविष्योंसें परिचर्या समर्पण करतेंहैं ॥५॥३॥

१०९. ८ ७ ४. यंक्रन्दसीअवसातस्तभानेअभ्यैक्षेतांमनसारेजमाने।
यत्राधिसूरउदितोविभातिकस्मैदेवायहविषाविधेम ॥६॥

क्रन्दितवान् रोदितवाननयोः प्रजापतिरिति क्रन्दसी द्यावापृथिव्यौ, श्रूयते हि "यदरोदीत्तदनयोरोदस्त्वमि"ति। ते अवसा रक्षणेन हेतुना लोकस्य रक्षणार्थं

तस्तभाने प्रजापतिना सृष्टे लब्धस्थैर्ये सत्यौ यं प्रजापतिं मनसा बुद्धयाध्यैक्षतामावयो-र्महत्त्वमनेनेत्यभ्यपश्येतां, कीदृश्यौ द्यावापृथिव्यौ रेजमाने राजमाने दीप्यमाने यत्राधि यस्मिन्नाधारभूते प्रजापतौ सूरः सूर्यः उदितः उदयंप्राप्तः सन् विभाति प्रकाशते तस्मै कस्मा इत्यादि सुज्ञानं ॥६॥

अनुवाद–देदीप्यमान और लोकरक्षाके लिये प्रजापतिनें जिन् द्युलोक भूलोकको निर्मित किये है और जो द्युलोक और भूलोक स्थिरताको पा करके "हमारा महत्त्व इन् (प्रजापति) केही अधीन है" ऐसा अपनी बुद्धिमें पर्यालोचन किया करतें है. और जिन् आधारभूत प्रजापतिमें सूर्यनारायण उदयको प्राप्त होकरके प्रकाशमान होतें है, उन् प्रजापति (हिरण्यगर्भ) देवको हम लोक हविष्यादिकसें परिचर्या समर्पण करतें है. ॥६॥

११०. ८ ७ ४. आपो॑ह॒यद्बृ॑ह॒तीर्विश्व॒माय॒न्गर्भं॒दधा॑ना॒जन॑यन्तीर॒ग्निम् ।
ततो॑दे॒वानां॒सम॑वर्त॒तासु॒रेकः॒कस्मै॑दे॒वाय॑ह॒विषा॑विधेम ॥७॥

बृहती. बृहत्यो महत्यः आग्निं, उपलक्षणमेतत्, अग्न्युपलक्षितं सर्वं वियदादिभूतजातं जनयन्ती जनयन्त्यः तदर्थं गर्भं हिरण्मयाडस्य गर्भभूतं प्रजापतिं दधानाः धारयन्त्यः आपो ह आप एव विश्वमायन् सर्वं जगद्व्याप्नुवन् यद्यस्मात् ततस्तद्धेतोर्देवाना देवादीना सर्वेषा प्राणिना असुः प्राणभूत एकः प्रजापतिः समवर्तत समजायत। यद्वा यत् य गर्भं दधाना आपो विश्वात्मनावस्थिताः ततो गर्भभूतात्प्रजापतेः देवादीना प्राणात्मको वायुः अजायत, अथवा उक्तलक्षणा या आपः विश्वमावृत्य स्थिताः ताः ततः ताभ्योद्भ्यःसकाशात् एकोऽद्वितीयः असु. प्राणात्मकः प्रजापतिः समवर्तत निश्चकाम, तस्मै कस्मा इत्यादि गतं ॥ ७ ॥

अनुवाद–तेज, आकाश इत्यादिक सकलभूतोंको उत्पन्न करनेवाला और उसी उत्पत्तिके लिये हिरण्मय अंडका गर्भभूत प्रजापतिको धारण करनेवाला बृहत् स्वरूपवाला जल सकल जगतको व्याप्त करता भया, जिसके करते देवादिक समग्र प्राणिमात्रका प्राणभूत एक प्रजापति प्रकट हुवे. अथवा जिस गर्भको धारण करनेवाला जल जगत्स्वरूपसें अवस्थित हुवा उस गर्भभूत प्रजापतिसें देवादिकोंका प्राणवायु प्रकट हुवा. अथवा सकल विश्वको व्याप्त करके जो जल अवस्थित है उसी जलसें एक अद्वितीय प्राणात्मक प्रजापतिदेव प्रकट हुवे, उन् प्रजापति देवको हम लोक हविष्यादिकसें परिचर्या समर्पण करतें हैं. ॥७॥

१११. ८ ७ ४ यश्चिदापोमहिनापर्यपश्यद्दक्षंदधानाजनयन्तीर्यज्ञम्।
योदेवेष्वधिदेवएकआसीत्कस्मैदेवायहविषाविधेम ॥८॥

यज्ञं यज्ञोपलक्षितं विकारजातं जनयन्तीरुत्पादयन्तीः, तदर्थं दक्षं प्रपञ्चात्मना वर्धिष्णुं प्रजापतिं आत्मनि दधाना धारयित्रीः ईदृशीरापः व्यत्ययेन प्रथमा अपः प्रलयकालीनाः महिना महिम्ना स्वमाहात्म्येन यश्च प्रजापतिः पर्यपश्यत् परितो दृष्टवान् यश्च देवेष्वधि देवेषु मध्ये देवः तेषामपीश्वरः सन् एकः अद्वितीयः आसीत् भवति, तस्मै कस्मा इत्यादि गतं ॥ ८ ॥

अनुवाद–यज्ञोपलक्षित विकृतवर्गको उत्पन्न करनेवाले और उसी लिये प्रपंचस्वरूपसें वृद्धिको प्राप्त होनेवाले प्रजापति देवको अपनी भीतर (गर्भरूपसें) धारण करनेवाला प्रलयकालिक जलको जो प्रजापतिदेव अपने माहात्म्यसें परिदर्शन करनें लगे, और जो देवोंके मध्यमें देवहै, यानें देवोंकेभी नियन्ताहैं, और स्वयं अद्वितीय-असहाय है, उन प्रजापति देवको हम लोक हविष्यादिकर्से परिचर्या समर्पण करतेंहैं. ॥ ८ ॥

११२. ८ ७ ४ मानोहिंसीज्जनितायःपृथिव्यायोवादिवंसत्यधर्माजजान।
यश्चापश्चन्द्राबृहतीर्जजानकस्मैदेवायहविषाविधेम ॥ ९ ॥

स प्रजापतिः नोस्मान् मा हिंसीत् मा बाधतां, यः पृथिव्या भूमेः जनिता जनयिता स्रष्टा, यो वा यश्च सत्यधर्मा सत्यमवितथं धर्म जगतो धारणं यस्य स तादृशः प्रजापतिः दिवं अन्तरिक्षोपलक्षितान् सर्वान् लोकान् जजान जनयामास, यश्च बृहतीः महतीः चन्द्राः आह्लादिनीः अप उदकानि जजान जनयामास, तस्मै कस्मा इत्यादि गतं ॥ ९ ॥

अनुवाद–जो प्रजापतिदेव भूमिका उत्पादक है. और जो देव यथार्थ रीतिसें जगत्को धारण करनेंवाला है, और जिन् प्रजापति देवनें अन्तरिक्षोपलक्षित सकल लोकोंको उत्पन्न कियेहै, आनन्ददायक यानें निर्वाहोपयुक्त जलकोभी जिन्ने पैदा किया है वह प्रजापतिदेव हम लोकोंको बाधित न करें, उन् प्रजापतिदेवको हम लोक हविष्यादिकर्से परिचर्या समर्पण करतें हैं. ॥ ९ ॥

११३. ८ ७ ४ प्रजापतेनत्वदेतान्यन्योविश्वाजातानिपरितावभूव ।

यत्कामास्तेजुहुमस्तन्नोअस्तुवयंस्यामपतयोरयीणाम् ॥१०॥४

हे प्रजापते त्वत् त्वत्तोन्यः कश्चित् एतानि इदानीं वर्तमानानि विश्वा विश्वानि सर्वाणि जातानि प्रथमविकारभांजि ता तानि सर्वाणि भूतजातानि न परिबभूव न परिगृह्णाति न व्याप्नोति त्वमेव एतानि परिगृह्य स्रष्टुं शक्नोषीतिभावः। परिपूर्वोभवतिः परिग्रहार्थः. वयंच यत्कामाः यत्फलं कामयमानाः ते तुभ्यं जुहुमः हवींषि प्रयच्छामः तत्फलं नोस्माकं अस्तु भवतु, तथा वयंच रयीणां धनानां पतय ईश्वराः स्याम भवेम ॥ १० ॥ ४ ॥

अनुवाद–हे प्रजापते ! आपके सिवाय दूसरा कोइभी इस कालमें वर्तमान प्रथम विकारवाले सकल भूतोंको व्याप्त करसक्ता नहिं, यानें आपही समग्र भूतोंको व्याप्त करके उत्पन्न करसक्ते हो। और हम लोक जिस फलको चाहते हुवे आपको हविष्य समर्पण करतें है वह फल हम लोकोंको प्राप्त हो, और हम लोक धनके मालिक होंय ऐसी आपकी दया हो. ॥ १० ॥

११४. ८ ७ ११ अहंरुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुतविश्वदेवैः।

अहंमित्रावरुणोभाबिभर्म्यहमिन्द्राग्नीअहमश्विनोभा ॥१॥

अहं सूक्तस्य द्रष्ट्री वाक् आंभृणी यद्ब्रह्म जगत्कारणं तद्रूपा भवन्ती रुद्रेभिः रुद्रैः एकादशभिः तदात्मना चरामि, एवं वसुभिरित्यादौ तत्तदात्मना चराभीतियोज्यम्। उभोभावहमेव ब्रह्मीभूता बिभर्मि धारयामि इन्द्राग्नी अप्यहमेव धारयामि, उभोभावाश्विनाश्विनावप्यहमेव धारयामि, मयि हि सर्वं जगत् शुक्तौ रजतमिवाध्यस्तं सद् दृश्यते, मायाच जगदाकारेण विवर्तते तादृश्या मायया आधारत्वेन असंगस्यापि ब्रह्मण उक्तस्य सर्वस्योत्पत्तिः ॥ १ ॥

अनुवाद–"अम्भृण" नामक महर्षिकी "वाक्" नामक पुत्री ब्रह्मज्ञानको पाइहुइ आत्माकी स्तुती करती है–मैं सूक्तज्ञ वाग्देवी जगत्का कारणभूत ब्रह्मस्वरूप होती हुइ एकादशरुद्रस्वरूपसें (जगतमें) विहार करती हुं. और मेंही वाग्देवी ब्रह्मस्वरूप होनेंसे मित्र और वरुण देवको धारण करती हुं. और इन्द्र अग्नि और अश्विनीकुमारकोभी मेंही धारण करतां हुं. शुक्तिकामें

रजतकी तरह मेरी भीतर सकल विश्व अध्यस्त होनेपरभी भ्रान्तिसे सत्यवत् प्रतीत होता है. माया जगत्स्वरूपसे परिणत होती है, उसी मायाका अधिष्ठानभूत असंग जो परब्रह्म है, उसीका वह प्रपंच विवर्त कहा जाता है. ॥ १ ॥

११५. ८ ७ ११ अहंसोममाहनसंबिभर्म्यहंत्वष्टारमुतपूषणंभगम् ।
अहंदधामिद्रविणंहविष्मतेसुप्राव्येयजमानायसुन्वते ॥२॥

आहनसं आहन्तव्यं अभिषोतव्यं सोमं, यद्वा शत्रूणामाहन्तारं दिवि वर्तमानं देवतात्मानं सोमं अहमेव बिभर्मि, तथा त्वष्टार मुतापिच पूषणं भगंच अहमेव बिभर्मि, तथा हविष्मते हविर्भिर्युक्ताय सुप्राव्ये शोभनं हविः देवानां प्रापयित्रे तर्पयित्रे सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते ईदृशाय यजमानाय द्रविणं धनं यागफलरूपं अहमेव धारयामि, एतच्च ब्रह्मणः फलदातृत्वं " फलमतउपपत्ते " रित्यधिकरणे भगवता भाष्यकारेण समर्थितम् (ब्र. सू. ३-२-८) ॥ २ ॥

अनुवाद—अभिषव करने योग्य सोमको अथवा शत्रुओंको निर्मूल करनेवाले देवतात्मक सोमको मैं (वाग्देवी) ही धारण करतीहुं. और त्वष्टा पूषा और भग एतन्नामक देवको भी, ब्रह्मस्वरूप मैंही (वाग्देवी) धारण करतीहुं. और उत्तम हविष्य देवोंको समर्पण करके तृप्त करनेवाले सोमाभिषव करनेवाले हविष्युक्त यजमानके लिये यागका फलभूत धनको भी मैंही धारण करतीहुं. भगवान् भाष्यकारनेभी "फलमत उपपत्तेः" इस ब्रह्मसूत्रके अधिकरणमें ब्रह्मके तत्तत्फलदातृत्वका समर्थन किया है. ॥२॥

११६. ८ ७ ११ अहंराष्ट्रीसंगमनीवसूनांचिकितुषीप्रथमायज्ञियानाम् ।
तांमादेवाव्यदधुःपुरुत्राभूरिस्थात्रांभूर्यावेशयन्तीम् ॥३॥

अहं राष्ट्री, ईश्वरनाम एतत्, सर्वस्य जगत ईश्वरी तथा वसूनां धनानां संगमनी संगमयित्री उपासकानां प्रापयित्री चिकितुषी यत्साक्षात्कर्तव्यं परंब्रह्म तज्ज्ञानवती स्वात्मतया साक्षात्कृतवती, अतएव यज्ञियानां यज्ञार्हाणां प्रथमा मुख्या चैवंगुणविशिष्टाहं तां मां भूरिस्थात्रां बहुभावेन प्रपंचात्मनावतिष्ठमानां भूरि भूरीणि बहूनि भूतजातानि आवेशयन्तीं जीवभावेन आत्मानं प्रवेशयन्तीमीदृशीं मां

पुरत्रा बहुषु देशेषु व्यदधुः देवाः विदधति कुर्वन्ति, उक्तप्रकारेण विश्वरूपेणाव-स्थानात् यद्यत्कुर्वन्ति तत्सर्वं मामेव कुर्वन्तीत्यर्थः ॥३॥

अनुवाद—सकल जगत्को नियमन करनेवाली और उपासकोंको धनादिक द्रव्य पहुंचानेवाली साक्षात्करनेयोग्य परब्रह्मके अपरोक्ष ज्ञानवाली और यज्ञिय देवोंमें प्रधानभूत प्रपंचस्वरूपसें अवस्थित और अनेक भूतभौतिकविकृत वर्गमें जीवस्वरूपसें अनुप्रविष्ट होनेवाली ऐसी मुझको देवतालोक यागादिक कर्मरूपसें विधान करतें है, यानें जो जो कर्म करतें है वे सब कर्ता करण क्रिया और फलरूप मेंहीहुं. (ऐसा वाग्देवीका सार्वात्म्यभाव प्रतीत होताहै) ॥३॥

११७. ८ ७ ११ मयासोअन्नमत्तियोविपश्यतियःप्राणितियईंशृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवोमान्तउपक्षियन्तिश्रुधिश्रुतःश्रद्धिवंतेवदामि ॥४॥

यः अन्नमत्ति स भोक्तृशक्तिरूपया मयैवान्नमत्ति, यश्च विपश्यति आलोकयतीत्यर्थः, यश्च प्राणिति श्वासोच्छ्वासादिव्यापारं करोति सोपि मयैव, यश्चोक्तं शृणोति, य ईदृशीमन्तर्यामिरूपेण स्थितां मां न जानन्ति ते अमन्तवः अमन्यमानाः अजानन्तः उपक्षियन्ति उपक्षीणाः संसारेण हीना भवन्ति । माममन्तवः मद्विषयज्ञानरहिता इत्यर्थः, हे श्रुत विश्रुत सखे श्रुधि मया वक्ष्यमाणं शृणु, किं तत् श्रोतव्यं? श्रद्धिवं श्रद्धिः श्रद्धा तयायुक्तं श्रद्धायत्नेन लभ्यमित्यर्थः, मत्वर्थीयो वः, ईदृशं ब्रह्मात्मकं वस्तु ते तुभ्यं वदामि उपदिशामि ॥ ४ ॥

अनुवाद—जो प्राणी अन्नका भक्षण करता हैं सो भोक्तृशक्तिरूप मेरी सहायताहीसे भक्षण करता है, और जो प्राणी दर्शन करता है (देखता है) और श्वासोच्छ्वासादिक व्यापारको करता है, और जो प्राणी कहे हुवे (वचनों) को सुनता है सो सब मेरी (वाग्देवीकी) सहायताहीसें है, इस प्रकार सर्वके अन्तर्यामिस्वरूपसे अवस्थित ऐसी मुझको यथार्थ रीतिसे जो लोक नहि जानतें वे उपक्षीण होवेंहै, यानें सांसारिक विषयोपभोगोंसेभी रहित होतें हैं, हे विश्रुत ! श्रद्धासहित यत्नसें उपलब्ध करने योग्य ब्रह्मतत्त्व में तुमको सुनाती हुं, सो तुम सुनो ॥ ४ ॥

११८. ८.७ ११ अहमेवस्वयमिदंवदामिजुष्टंदेवेभिरुतमानुषेभिः ।
यंकामयेतंतमुग्रंकृणोमितंब्रह्माणंतमृषितंसुमेधाम् ॥५॥११॥

अहं स्वयमेव इदं वस्तु ब्रह्मात्मकं वदामि उपदिशामि, देवेभिर्देवैः इन्द्रादिभिरपि जुष्टं सेवितं, उतापिच मानुषेभिः मनुष्यैरपि जुष्टम्, ईदृग्वस्त्वात्मिका अहं कामये यं पुरुषं रक्षितुमहं वाञ्छामि तं तं पुरुषमुग्रं कृणोमि सर्वेभ्योधिकं करोमि, तमेव ब्रह्माणं स्रष्टारं करोमि, तमेव ऋषि मतीन्द्रियार्थदर्शिनं करोमि, तमेव सुमेधां शोभनप्रज्ञं च करोमि ॥५॥११॥

अनुवाद—में स्वयंही इस ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करतीहुं की जिस तत्त्वको इन्द्रादिक देव और इतरमनुष्यलोकभी पर्यालोचनात्मक सेवन करते है, इसी परब्रह्मतत्वस्वरूप में (वाग्देवी) जिस पुरुषको रक्षित करनेंको चाहती हुं उस पुरुपको उग्र-सबसें अधिक बनाती हुं, और उसी पुरुषको सृष्टिका रचनेवाला ब्रह्माभी बनादेतीहुं, और उसी पुरुषको अतीन्द्रियविषयदर्शी ऋषि बनादेतीहुं, और उसी पुरुषको उत्तम प्रज्ञावान् भी बना देतीहुं. ॥५॥

११९. ८ ७ १२ अहंरुद्रायधनुरातनोमिब्रह्मद्विषेशरवेहन्तवाउ ।
अहंजनायसमदंकृणोम्यहंद्यावापृथिवीआविवेश ॥६॥

पुरा त्रिपुरविजयसमये रुद्राय रुद्रस्य महादेवस्य धनुश्चापं अहमातनोमि ज्ययाततं करोमि, किमर्थं ब्रह्मद्विषे ब्राह्मणाना द्वेष्टारं शरवे शरुं हिंसकं त्रिपुरनिवासिनमसुरं हन्तवै हन्तुं हिंसितु महमेव समद समानं माद्यन्त्यस्मिन्निति समत् संग्रामः स्तोतृजनार्थं शत्रुभिः सह संग्रामं अहमेव कृणोमि करोमि, तथा द्यावापृथिवी दिवंच पृथिवींच अन्तर्यामितया अहमेवाविवेश प्रविष्टवती ॥६॥

अनुवाद—पूर्वकालमें त्रिपुरासुरके विजयसमयमें ब्राह्मणोंके शत्रुभूत त्रिपुरनिवासी असुरको हनन करनेंके लिये महादेवजीके धनुषको (पिनाकको) ज्या(मौर्वी)से विस्तृत-सज्ज मेंही करतीहुं,यानें तत्तद्देवोंकेभी देहमें अनिमानिस्वरूपसें निविष्ट होकरके देवादिकन्सें क्रियमाण कार्यको में (वाग्देवी) ही करतीहुं. और मेंही भक्तजनोंके हितार्थ शत्रुओंके साथ सग्राम करतीहुं, और द्युलोक और भूलोकमें अन्तर्यामिस्वरूपसें मेंही अनुप्रविष्ट हुं. ॥६॥

१२०. ८ ७ १२ अहंसुवेपितरमस्यमूर्धन्ममयोनिरप्स्वन्तःसमुद्रे।
ततोवितिष्ठेभुवनानुविश्वोतामूंद्यांवर्ष्मणोपस्पृशामि ॥७॥

"द्यौः पिते"तिश्रुते पिता द्यौः पितरं दिवमहं सुवे प्रसुवे जनयामि "आत्मन आकाश· सभूत"इतिश्रुते (तै. २–६) कुत्रेति तदाह-अस्य परमात्मन. मूर्धन् मूर्धनि उपरि कारणभूते तस्मिन्हि वियदादिकार्यजात सर्वं वर्तते तन्तुषु पटइव मम च योनि कारण, समुद्रे समुद्रवन्त्यस्माद्भूतजातानीति समुद्रः परमात्मा तस्मिन्, आसु व्यापनशीलासु धीवृत्तिषु अन्तर्मध्य यद्ब्रह्मचैतन्य तन्ममकारणमित्यर्थ, यत ईदृग्भूताहमस्मि ततोहेतोर्विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि अनुप्रविश्य वितिष्ठे विविधंव्याप्य तिष्ठामि, उतापिच अमूं द्या विप्रकृष्टदेशेऽवस्थित स्वर्गलोक मुपलक्षणमेतत्, एतदुपलक्षित कृत्स्न विकारजात वर्ष्मणा कारणभूतेन मायात्मकेन मर्दीयेन देहेन उपस्पृशामि, यद्वा अस्य भूलोकस्य मूर्धन् मूर्धन्युपरि अह पितरमाकाशं सुवे, समुद्रे जलधौ अप्सु उदकेषु अन्तर्मध्ये मम योनि· कारणभूतो भृणाख्य ऋषिर्वर्तते, यद्वा समुद्रेऽन्तरिक्षे अप्सु अम्मयेषु देवशरीरेषु मम कारणभूत ब्रह्मचैतन्य वर्तते ततोह कारणात्मिका सती सर्वाणि भुवनानि व्याप्नोमि। अन्यत्समानम् ॥ ७ ॥

अनुवाद–आकाशकोभी मैं (वाग्देवी) उत्पन्न करतीहुं "एतस्मादात्मन आकाश. सभूत." "इस आत्मासें आकाश उत्पन्न हुवा" इत्यादिक श्रुतिमें भी कहा है, और वह आकाशप्रभृतिक सकल भूतात्मककार्य तन्तुनमें पटकीतरह जिस परब्रह्मके कार्य हैं वहीब्रह्म मेराभी (देहेन्द्रियादिसघातका) कारण है, और मायावच्छिन्न चेतन की जो ईश्वरशद्वित हे, और गुणोंसे सकल प्रपचका निर्माता है, उसकाभी वह नियामक होनेसें कारण है, सर्वत्र व्याप्त होनेवाली बुद्धिवृत्तिओंकाभी वह नियामक है, वही ब्रह्म मुझसें अभिन्न है, यानें "तत्त्वमसि" "अयमात्माब्रह्म" इत्यादिक श्रुत्यनुसार में तत्स्वरूप हीहु, और में पूर्वोक्त ब्रह्मस्वरूपसें अव्यतिरिक्त हु, इसलिये समग्रभूतभौतिक पदार्थोंमें तन्नियामकस्वरूपसें अनुप्रविष्ट होकरके विविध स्वरूपसें व्याप्त हुं, और उस द्युलोकोपलक्षित समग्र विकृतवर्गको मायात्मक होनेसें कारणभूत इस मेरे देहसें में व्याप्त करतीहु. अथवा इस भूलोकके उपरिभागमें आकाशको

में ही उत्पन्न करतीहुं, समुद्रान्तर्गत जलकी मध्यमें मेरा कारणभूत "अंभृण" नामक ऋषि है, किंवा समुद्रमें अन्तरिक्षमें और देवोंके देहोंमें मेरा भी कारणभूत ब्रह्मचैतन्य अनुस्यूतरूपसें वर्तमान है, इसलिये कारणस्वरूप ऐसी में सकलभुवनों को व्याप्त करतीहुं. (दूसरा सब पूर्वोक्तअनुवादानुसारहीहै) ॥७॥

१२१. ८ ७ १२ अहमेववातइवप्रवाम्यारभमाणाभुवनानिविश्वा।
परोदिवापरएनापृथिव्यैतावतीमहिनासंबभूव ॥८॥१२॥

विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि कार्याणि आरभमाणा कारणरूपेणोत्पादयन्ती, अहमेव परेणानधिष्ठिता स्वयमेव प्रवामि प्रवर्ते, वातइव यथा वातः परेणाप्रेरितः सन् स्वेच्छयैव प्रवाति तद्वत्, उक्तं सर्वं निगमयति, परोदिवा परइति परस्तादित्यर्थे वर्तते यथा अधइति अधस्तादर्थे तद्योगेच तृतीया सर्वत्र दृश्यते, दिव आकाशस्य परस्तात् एना पृथिव्या इदम एनादेशः, अस्याः पृथिव्याः परः परस्तात् द्यावापृथिव्योरुपादानमुपलक्षणम्, एतदुपलक्षितात्सर्वस्माद्विकारजातात्परस्ताद्वर्तमाना असंगोदासीनकूटस्थब्रह्मचैतन्यरूपाहं महिना महिम्ना एतावती संबभूव, एतच्छब्देन उक्तं सर्वं परामृश्यते, एतत्परिमाणमस्याः, सर्वजगदात्मना अहं संभूतास्मि ॥ ८ ॥ १२ ॥

अनुवाद-जैसें वायु किसीसें प्रयुज्यमान न होकरके स्वयं स्वकीय इच्छासें ही गतिमान् होताहै तैसेंही में (वाग्देवी) भी किसीसें प्रयुज्यमान न हो करके स्वसत्तासें ही कारणस्वरूपमें सकल भूत भौतिक पदार्थोंका प्रारंभ (उत्पत्ति) करतीहुं द्युलोक भूलोकादिकसें उपलक्षित सकल विकारवृन्दसें पर और सबके अभिन्ननिमित्तोपादानरूप असंग उदासीन नित्य कूटस्थ ब्रह्म चैतन्यरूप ऐसी में अपने माहात्म्यसें तत्तद्रूप हुइहु, यानें सकल प्रपंचस्वरूपसें मेंही बनी हुं ॥८॥

१२२. ८ ७ १७ नासदासीन्नोसदासीत्तदानींनासीद्रजोनोव्योमापरोयत्
किमावरीवःकुहकस्यशर्मन्नम्भःकिमासीद्गहनंगभीरम्॥१

"तपसस्तन्महिना जायतैकमि"त्यादिना अग्रे सृष्टिः प्रतिपादयिष्यते, अधुना ततः प्रागवस्था निरस्तसमस्तप्रपचा या प्रलयावस्था सा निरूप्यते, तदानीं प्रलयदशायामवस्थितं यदस्य जगतो मूलकारणं तत्रासत्, शशविषाणवन्निरुपाख्यं

नासीत्; नहि तादृशात् कारणादस्य सतो जगतउत्पत्तिः संभवति। तथा नोसत् नैव सत् आत्मवत् सत्त्वेन निर्वाच्यमासीत्, यद्यपि सदसदात्मकं प्रत्येकं विलक्षणं भवति, तथापि भावाभावयोः सहावस्थानमपि न संभवति, कुतस्तयोस्तादात्म्यमित्युभयविलक्षणानिर्वाच्यमेवासीदित्यर्थः। ननु नोसदिति पारमार्थिकसत्वस्य निषेधः तर्ह्यात्मनोप्यनिर्वाच्यत्वप्रसंगः, अथोच्यते, न, आनीदवातमिति तस्य सत्त्वमग्रेवक्ष्यते, परिशेषान्मायाया एवात्र सत्त्वं निषिध्यते इति, एवमपि तदानीमिति विशेषणानर्थक्यं, व्यवहारदशायामपि तस्याः पारमार्थिकसत्वाभावात्। अथ व्यावहारिकसत्वस्य तदापि व्यावहारिकसत्ता पृथिव्यादीनां भावानां तदापि विद्यमानत्वात् कथं नोसदिति निषेधः तत्राह नासीद्रजइत्यादि—लोकारजांस्युच्यन्त इति यास्कः। अत्रच सामान्यापेक्षया एकवचनं व्योम्नो वक्ष्यमाणत्वात्, तस्यावस्तनाः पातालादयः पृथिव्यंता नासन् इत्यर्थः, तथा व्योमान्तरिक्षं तदपि नो नैवासीत्, परः व्योम्नः परस्तादुपरिदेशे द्युलोकप्रभृतिसत्यलोकान्तं यदस्ति तदपि नासीत् इत्यर्थः, अनेन चतुर्दशभुवनगर्भं ब्रह्मांडरूपेण निषिद्धं भवति। अथ तदावरकत्वेन पुराणेषु प्रसिद्धानि यानि वियदादिभूतानि तेषामवस्थानप्रदेशं तदावरणनिमित्तं चाक्षेपमुखेन क्रमेण निषेधयति—किमावरीवरिति। किमावरणीयं तत्वं आवरकभूतजातं आवरीवः अत्यन्तमावृणुयात् आवार्याभावात्तदावरकमपि नासीदित्यर्थः। यद्वा किमिति प्रथमैव, किं तत्त्वमावरकमावृणुयात् आवार्याभावात् आव्रियमाणवत्तदपि स्वरूपेण नासीदित्यर्थः। आवृण्वत् तत्तत्वं कुह कुत्रदेशे अवस्थायावृणोति आधारभूतस्तादृशो देशोपि नासीदित्यर्थः। कस्य शर्मन् कस्यवा भोक्तुः जीवस्य शर्मणि सुखे सुखदुःखसाक्षात्कारलक्षणेवा निमित्तभूतेसति तदावरकं तत्त्वमावृणुयात्, जीवानामुपभोगार्था हि सृष्टिः, तस्यां हि सत्यां ब्रह्मांडस्य भूतैरावरणं, प्रलयदशायां च भोक्तारोजीवाः उपाधिविलयात् प्रविलीना इति कस्य कश्चिदपि भोक्ता न संभवति, इत्यावरणस्य निमित्तस्याभावादपि तन्न घटत इत्यर्थः। एतेन भोग्यप्रपञ्चवत् भोक्तृप्रपंचोपि तदानीं नासीदित्युक्तं भवति। यद्यपि सावरणस्य ब्रह्मांडस्य निषेधेन तदन्तर्गत मप्सत्वमपि निराकृतं, तथापि "आपोवाइदमग्रे सलिलमासीत्" इत्यादिश्रुत्या कश्चिदपां सद्भावमाशंकेत, तं प्रत्याचष्टे, अंभः किमासीदिति। गहनं दुःप्रवेशं गभीरं दुरवस्थानं अत्यगाधम् ईदृशमंभः किमासीत्तदपि नैवासीदित्यर्थः। श्रुतिरवान्तरप्रलयविषया॥ १॥

अनुवाद–" तपसस्तन्महिना जायत " इत्यादिक मन्त्रसें अग्रिमभागमें सृष्टिका प्रतिपादन करेंगे, एतदादिक मन्त्रोंसें समस्तप्रपंचरहित सृष्टिके पाकालिक अवस्था जिस्को " प्रलयावस्था " कहतें हैं उस्का निरूपण करतें हैं–उस् प्रलयकालमें अवस्थित इस् जगत्का मूलकारण सो शशशृङ्गकी तरह निरुपाख्य-अत्यन्ताभावका प्रतियोगि नहि था, क्योंकी अभावात्मककारणसें भावात्मक जगत्की उत्पत्ति नहि होसक्ती, और (इस् प्रपंचका मूलकारण) आत्माकीतरह सद्रूपभी नहिथा, यद्यपि सदसत्स्वरूप प्रत्येक विलक्षण है तथापि भाव और अभावकी स्थिति एकत्र संभवित नहि है. तो भावाभावका तादात्म्यतो कैसेहो सके ? इसलिये भावाभावसें विलक्षण कोइ अनिर्वाच्यही था ऐसा कहना चाहिये.

ननु "नोसदासीत्" इस् वाक्यसें पारमार्थिक सत्त्वका प्रतिषेध करनेंसें आत्मतत्त्वकी पारमार्थिक सत्ताकाभी निषेध होना चाहिये ? और वैसा स्वीकार करनेंसें आत्मतत्त्वभी तत्त्वातत्त्वरूपसें अनिर्वचनीय है ऐसा कहना चाहिये. अगर "नआनीदवातम्" इस् मन्त्रसें आगे आत्माकी पारमार्थिक सत्ताका निरूपण किया जायगा तो आत्मतत्त्व सत्स्वरूपही है, अनिर्वाच्य नहि है, किंतु परिशेषानुमानसें मायाके सत्त्वका निषेध किया जाता है ऐसा कहाजायतो "तदानीं" "उस् कालमें" यह विशेषण व्यर्थ होजायगा, क्योंकी व्यवहारकालमें मायाका पारमार्थिक सत्त्व कहां है की जिस् व्यवहारकालके व्युदासार्थ "तदानीम्" इस् विशेषणका चारितार्थ्य मिले, इसलिये मायाके सत्त्वकाभी "नोसदासीत्" इस् वाक्यसें निषेध किया जाता नहि । अगर ऐसा कहाजायकी–व्यावहारिक पदार्थोंकी (तदानीम्) उस् कालमें व्यावहारिक सत्ता है तो पृथिव्यादिक पदार्थोंका उस कालमें सत्त्व होनेंसे " नोसदासीत् " यह निषेध कैसे संगत हो सक्ता है ? इसलिये कहतें है "नासीद्रजः" रजःशब्दवाच्य पातालादिक पृथिवीपर्यन्त लोक और अन्तरिक्ष और उस्के उपरितनलोक द्युलोकसें लेकरके ब्रह्मलोकपर्यन्तके चतुर्दशभुवनात्मक सबलोक थेही नहि. अब उन्के आवरकरूपसें पुराणादिकमें प्रसिद्ध वियदादिकभूत उन्की स्थितिका प्रदेश और आवरणके निमित्तकाभी प्रतिषेध करतें हैं-आवरण करनेंयोग्य वैसा तत्त्व कौन् था ? की जिस्को आवरकपदार्थ अपनी आवरणशक्तिसें आवृत करे, जबकी कोइ आवरणीय-आवरणकरनेंयोग्य पदार्थ नहिथा तो उस्को 'आवरणकरनेवाला पदार्थ कैसें संभवित होसक्ता ? अथवा आवरकतत्त्व कौन् था ? की जो'आधार्यको आवृत करे.

यानें आवार्य और आवरक दोनों स्वरूपसें थेही नहि, और आवरकतत्त्व किस् देशमें अवस्थित होकरके आवृत करे? क्योंकी उस्का आधारभूत देशही नहिथा. और भोगोपभोगमें तत्पर किस् जीवात्माके सुखार्थ अथवा सुखदुःखके साक्षात्कारार्थ किसी निमित्तको लेकरके वह आवरकतत्त्व आवार्यको आवृत करे? क्योंकी जीवोंके उपभोगार्थ सृष्टि है, उस् सृष्टिकी विद्यमानदशामें ब्रह्माण्डका भूतकर्तृक आवरण होसक्ता है, परंतु प्रलय कालमें उपाधिका लय होनेसें तदुपहित चेतनात्मक भोक्ता जीवात्माभी स्वरूपसें लीनही होजाता है इस्सें कोइभी किसीका भोक्ता बनही सक्ता नहि, इस्लिये आवरणको भोक्तृतामें निमित्तत्व न होनेंसे आवरण संगत होसक्ता नहि. यानें भोग्य और भोक्ता एतदुभयात्मक प्रपंच उस् कालमें थाही नहि. यद्यपि आवरण सहित ब्रह्माण्डका निषेध करनेंसे तदन्तर्गत जलकाभी निषेधही सिद्ध होताहै तथापि "आपोवाइदमग्रे सलिलमासीत्" "पूर्वकालमें जलहीथा" इस् श्रुतिके अनुसार कोइ जलके सद्भावकी शंका करसक्ता है इस्लिये उस् जलका भी प्रतिषेध श्रुति करती है—गंभीर अत्यन्त् अगाध ऐसा जलभी क्या उस् कालमें था? अर्थात् वहभी नहिथा. तब "आपोवा" इस् श्रुतिकी क्या गति होगी? तो इसका जवाब यही हैकी वह श्रुति तो अवान्तरप्रलयविषयक है. और यहतो महाप्रलयका निरूपण हो रहा है. इस्लिये उस् श्रुतिको अवान्तरविषयकत्व होनेंसें निरवद्य है. ॥ १ ॥

१२३. ८ ७ १७ नमृत्युरासीदमृतंनतर्हिनरात्र्याअह्नआसीत्प्रकेतः॥

आनीदवातंस्वधयातदेकंतस्माद्धान्यन्नपरःकिंचनास॥२

ननूक्तस्य प्रतिसंहारस्य संहर्त्रपेक्षत्वात् सएव संहर्ता मृत्युर्विद्यत इत्यत आह—नं मृत्युरासीदिति। ननु यदि स नासीत् तर्हि तदभावकृतममृतममरणं प्राणिनामवस्थानं तदानीमभिरयात् तत्राह—अमृतं न तर्हीति। तर्हि तस्मिन् प्रतिहारसमये। अयंभावः—सर्वेषां प्राणिनां परिपक्वं भोगहेतुभूतं सर्वं कर्म यदोपभुक्तमासीत तदा भोगाभावात् निष्प्रयोजनमिदं जगत इति परमेश्वरस्य मनसि संजिहीर्षा जायते, तयैव स मृत्युः सर्वं जगत्संहरत इति। किमनेन मृत्युना संहर्त्रा तदभावकृतं वा कथममरणं स्यादित्ये तदेवाभिप्रेत्य कठैराम्नायते—"यस्य ब्रह्मचक्षत्रंचोभेभवत ओदनं, मृत्युर्यस्योपसेचनं कइत्था वेद यत्र स" इति(क.१-२-२५)नन्वेतस्य सर्वस्या-

धिकरणभूतः कालो विद्यत इत्यत आह–नरात्र्या इति, रात्र्या अह्नश्च प्रकेतः प्रज्ञानं
नासीत, तद्धेतुभूतयोः सूर्याचन्द्रमसोरभावात्, एतेनाहोरात्रनिषेधेन तदात्मको मासर्तु-
संवत्सरप्रभृतिकः सर्वः कालः प्रत्याख्यातः। कथं तर्हि नोसदासीत्तदानीमिति
कालवाची प्रत्ययः? उपचारादिति ब्रूमः, यथेदानीन्तन निषेधस्य कालोवच्छेदकः तथा
मायापि तदवच्छेदहेतुरिति अवच्छेदकत्वसाम्येन अकालेपि कालवाची प्रत्ययः।
यदवादिष्म ब्रह्मणः परमार्थसत्त्वमग्रे वक्ष्यत इति तदिदानीं दर्शयत्यानीदिति। तरस-
फलवेदान्तप्रसिद्धं ब्रह्मतत्त्वमानीत् प्राणितवत्, नन्वेवं प्राणनकर्तुः जीवभावापन्न-
स्यैव ब्रह्मणः सत्त्वं स्यान्न विवक्षितस्य निरुपाधिकस्य ब्रह्मणः–"अप्राणोह्यमनाः
शुद्ध" इति (मुण्डक २-२) तस्य प्राणसंबन्धाभावात्, तत्राह–अवातमिति,
अयमाशयः–आनीदित्यत्र धात्वर्थः क्रिया तत्कर्ता तस्यच भूतकालसंबन्धइति
त्रयोर्थाः प्रतीयन्ते, तत्र समुदायो न विधीयते यथाग्नेयेष्टाकपाल इति। येन ब्रह्मणः
सत्त्वं न स्यात्। किंतर्हि अनेन कर्तृत्वमनूद्य भूतकालसत्तालक्षणो गुणो विधीयते, दध्ना
जुहोतीति वाक्यान्तरविहिताग्निहोत्रानुवादेन तत्र गुणविधानं तत्राप्यनेन कर्तृत्व-
विशिष्टस्य न पूर्वकालसत्ता विधीयते तन्निषेधानुपपत्तिप्रसंगात् अतोनेनकर्तृत्वेनेदानीं-
तनेनोपलक्षितं यन्निरुपाधिकं परंब्रह्म तस्यैव भूतकालसत्ता विधीयत इति न कश्चि-
द्दोष इति। नन्वीदृशस्य ब्रह्मणः मायया सह संबन्धासंभवात् सांख्याभिमता स्वतंत्रा
सद्रूपा सत्वरजस्तमोगुणात्मिका मूलप्रकृतिरेवाभिमतेति किं नोसदिति निषेध? तत्राह-
स्वधयेति। स्वस्मिन् धीयते ध्रियते आश्रित्य वर्तते इति स्वधा माया, तया तद्ब्रह्म
एकमविभागापन्नमासीत्, अत्र प्रकृतिप्रत्ययाभ्यां तस्याः स्वातन्त्र्यं निवार्यते,
यद्यप्यसंगस्य ब्रह्मणः तया सह संबन्धो न संभवति तथापि तस्मिन्नविषया तत्स्वरू-
पामिव संबन्धोप्यध्यस्यते यथाशुक्तिकायां रजतस्य, एतेन सद्रूपत्वमपि तस्याः प्रत्या-
ख्यातं। ननु यदि माया ब्रह्मणा सहाविभागापन्ना तर्हि तस्या अनिर्वाच्यत्वा-
द्ब्रह्मणोपि तत्प्रसंग इति कथं तस्य सत्त्वमुक्तमानीदवातमिति, ब्रह्मणो वा सत्त्वा
त्तस्या अपि सत्त्वप्रसंग इति कथं नो सदासीति सत्त्वप्रतिषेधः? मैवं, अनुभवदृष्ट्या
ऐक्यावभासेपि युक्त्या विविच्य मायांशस्यानिर्वाच्यत्वं ब्रह्मणः सत्त्वंच प्रतिपादितं
ननु दृग्दृश्यौ इति द्वावेव पदार्थौ, आनीदवातंस्वधयेति, तौचेदंगीक्रियेते तत्किमपरम
वशिष्यते यन्नासीद्रज इत्यादिना प्रतिषिध्येत, तत्राह-तस्मादिति तस्माद्ध तस्मात्खलु
पूर्वोक्तान्मायासहिताद्ब्रह्मणः अन्यत्किंचन किमपि वस्तु भूतभौतिकात्मकं जगन्नास
न बभूव, ननु तदानीमन्यस्य सत्त्वनिषेधो न शंक्यः, असत्त्वे चाप्रसक्तत्वान्न निषेधोप-

योग इत्यत आह–परः इति, परः परस्तात्सृष्टेः ऊर्ध्वं वर्तमानं इदं जगत तदानीं न बभूवेत्यर्थः अन्यथा उक्तरीत्या क्वचिदपि निषेधो न स्यादितिभावः ॥ २ ॥

अनुवाद–ननु पूर्वोक्त प्रलय किसी संहर्ताके अधीन होनेसें उस प्रलयका हेतुभूत संहारक मृत्यु उस् समय अवश्य होगा ? इस् संशयके निवृत्त्यर्थ कहते हैंकी, "न मृत्युरासीत्" संहारक–मृत्युभी उस् कालमें नहिथा. तब मृत्युका अभावरूप अमृत था ? इस्का यह उत्तर हैकी "अमृतं न तर्हि" उस् प्रलय-कालमें अमृत अमरणस्वरूप प्राणिका अवस्थानभी नहिथा, याने इस्का यह अभि-प्राय है–परिपक्व होनेंसे भोगोपभोगमें हेतुभूत प्राणिमात्रका कर्म जब उपभुक्त हो चुका तब इतर कोइ भोग अवशिष्ट न होनेंसे यह विश्व निरर्थक है क्योंकी जग-दन्तःपाती प्राणिमात्रकी स्थिति अपनें अपनें कर्मफलोंके उपभोगार्थही है, जब परमेश्वरके मनमें प्राणिमात्रके अनवशिष्ट भोगोंका पर्यालोचन हुवा तब संहार करनेकी इच्छा की, जिस्को "संजिहीर्षा" कहते है, सो इच्छा हुइ, उसी इच्छाके अधीन संहारक मृत्युनें सकल विश्वका संहार कियाथा परंतु स्वतन्त्ररूपसें नहिं "मृत्युर्धावति पञ्चमः" जिस् परमेश्वरका वशवर्ती मृत्यु इधरउधर दौडा करता है इत्यादिक श्रुतिभी है. जबकी परमेश्वरकी संजिहीर्षाके अधीनही होकरके मृत्यु संहारक बनसक्ता है तब उस्का स्वतन्त्र संहारकत्व कैसे होसक्ता. और उस् मृत्युके अभावात्मक अमरणरूप अमृतभी कैसे उस् कालमें उपपन्न होसक्ता ? इसी अभिप्रायसें कठवल्लीमें कहाहै–"जिस् (परमेश्वर) का ब्राह्मण क्षत्रिय और तदुप-लक्षित सकल विश्व–ओदनोपलक्षित भक्त (भक्ष्य) बनता है. और मृत्यु जिस्का उपसेचन–व्यञ्जनस्थानापन्न है उस् परमात्मदेवको कौन जानसक्ता" ? इस् सकल प्रपञ्चका अधिकरण (आधार) भूत काल तो उस् समयमें जरूर होगा ? तो इस्का यह उत्तर है "न रात्र्याः" रात्रि और दिनका ज्ञानही नहिथा, क्योंकी अहो-रात्रके हेतुभूत जो सूर्यचन्द्र है वे उस् कालमें नहिं थे. जबकी सूर्यचन्द्र भी नहिं थे तब उनके अधीन मास ऋतु संवत्सरादिक समयसमयभी नहिथा, ऐसा कहनेसें कालकाभी प्रत्याख्यान हुवा. अगर ऐसा कहाजायकी–जब समयकाभी निषेध किया जाता है तो "नोसदासीत्तदानीम्" इस् वाक्यमें "तदानीम्", "उस् कालमें" ऐसा क्यों कहा ? यानें "तदानीं" यह पद कालवाचिप्रत्ययान्त है तो उससें कालकी प्रतीति होती है ? तो इसका यह समाधान है की यह

कालवाचिप्रत्ययान्त पदका प्रयोग तो उपचारसें किया गया है. - जैसें वर्तमान-कालिक निषेधका अवच्छेदक काल है तैसें प्रलय कालिक निषेधकी अवच्छेदिका माया है, यह सिर्फ अवच्छेदक साम्य होनेंसें अकाल अर्थमेंभी कालवाचीप्रत्यय हुवा है, इसलिये पूर्वोक्त दूषण है नहिं। पहिले ब्रह्मके पारमार्थिक सत्व कहनेंको स्वीकार कियाथा सो अब पारमार्थिक सत्व कहतें हैं-सकल वेदान्तशास्त्रमें प्रसिद्ध यह ब्रह्मस्वरूप प्राणनक्रिया प्राणधारणानुकूलव्यापारविशिष्ट हुवा. ननु यह परब्रह्म प्राणधारणानुकूलव्यापारविशिष्ट होनेंसें जीवभावापन्न हुवा, एवंच जीवात्मकब्रह्मकासत्व सिद्ध होता है, निरुपाधिकतया विवक्षित शुद्धब्रह्मका सत्व पाया जाता नहि, और शुद्ध ब्रह्ममें तो "अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रः" यह पारमार्थिकस्वरूप प्राण मन इत्यादिकसें रहित है, और स्वयं शुद्ध निष्कलंक है इत्यादिक श्रुतिसें प्राणसंबन्धका अभाव बताया जाता है, इसका उत्तर कहतें हैं- "अवातम्" यह भाव हैकी "आनीत् (प्राणधारणानुकूलव्यापारविशिष्ट हुवा) इस क्रियापदसें धात्वर्थात्मक कर्ता क्रिया और भूतकालका संबन्ध ऐसे तीन अर्थ प्रतीत होतें हैं, एतन्त्रितयात्मक समुदायका विधान "आनीत्" इस पदसें किया जाता नहि, जैसें अग्न्युदेश्यक अष्टाकपाल पुरोडाश, इसमें केवल पुरोडाशहीका विधान है नहिंकी अष्टत्वविशिष्ट कपालका, तैसेही "आनीत्" इस पदसें ब्रह्माधिष्ठानक कर्तृत्व अनूदित करके भूतकालिक सत्तात्मक गुणका विधानरूपसें व्यपदेश किया जाता है, यह व्यपदेश ब्रह्मविषयक सत्वका बाधक नहि है किन्तु साधक है. जैसें "दध्नाजुहोति" "दहींसें होम करता है" यह वाक्य "अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः" स्वर्गकी इच्छावाला अग्न्याधानपूर्वक होम करें इस वाक्यका अनुवादक हो करके दधिरूप गुणका विधान करता है तैसेंही यहांपरभी प्राणनक्रियाके कर्तृत्वानुवादपूर्वक भूतकालिक सत्वात्मक गुणमात्रका विधान किया जाता है, यानें "नोसदासीत्" इत्यादिक निषेधान्यथानुपपत्त्यर्थ कर्तृत्वविशिष्ट परब्रह्मका पूर्वकालिक सत्व विहित नहि किया जाता किंतु प्राणनक्रियानिरूपित कर्तृत्व-द्वारा वर्तमान कालिक जो निरुपाधिक ब्रह्मचैतन्य है उसीमें भूतकालिक सत्वके विधानका व्यपदेश करतें हैं, इसलिये कोइ दोष नहिं हैं. ननु इस निरुपाधिक ब्रह्मका मायाके साथ संपर्क न होनेंसें सांख्यशास्त्राभिमत स्वतंत्र सद्रूप सत्व रज और तमोगुणात्मक प्रकृतिही अभिमत हो, "नोसदासीत्" इस निषेधसें क्या मतलब ? इसका उत्तर कहतें हैं "स्वधयेति" स्व-परब्रह्मरूप अधिष्ठानमें धा-

अध्यासात्मक सम्बन्धद्वारा आश्रयको प्राप्त करनेवाला मायात्मक पदार्थको स्वधा कहते है, उसी मायाके साथ वहब्रह्म अविभागापन्न (अविभक्त) था. यहां "स्वधया" इस् सहार्थक तृतीयाविभक्तयन्त पदका प्रयोग होनेसें उस् "स्वधा" वाच्य मायाका स्वातन्त्र्य निवारित होता है, क्योंकी सहशब्दके अर्थकी जहां योग्यता रहेती है वहां सहशब्दका प्रयोग न होनेपरभी "सहयुक्तेऽप्रधाने" इस् पाणिनीय (व्याकरण) शास्त्रानुसार तृतीया विभक्ति होती है, और वह तृतीयाविभक्ति स्वनिष्ठविधेयतानिरूपितोद्देश्यताक्रान्तप्रकृतिमें अप्रधानतारूप अर्थकी निरूपिका (निरूपण करनेवाली) होती है, यानें वह माया कार्यद्वारा अनुभवका विषयभूत होनेपरभी अधिष्ठान सत्तासें अनतिरिक्त सत्ताक होनेसे स्वयं अप्रधान-गौणही है ब्रह्मकी तरह वह (माया) स्वतन्त्र नहिं है, और इस् विषयमें यह उपपन्नभी है की ब्रह्मस्वरूप असंग होनेसे मायाका संबन्ध उसमें पारमार्थिक होसकाही नहिं किंतु आरोपितापरपर्याय काल्पनिक अध्यासात्मक संबन्ध है, जैसें रज्जुरूप अधिष्ठानमें अज्ञानद्वारा प्रतीयमान सर्प अध्यस्त है तैसेंही ब्रह्मरूप अधिष्ठानमें मूलाज्ञानद्वारा माया और तत्कार्य सचराचरविश्वकी प्रतीति होरही है, इससें वह प्रतीति आविद्यक होनेसें अयथार्थ है, यानें जैसें अविद्यासें प्रतीयमान सर्पके अप्राधान्य सहित अधिष्ठानभूत रज्जुकी प्रधानता है तैसेंही मूलाविद्यामें प्रतीयमान मायिकप्रपंचके अप्राधान्य सहित अधिष्ठानभूत परब्रह्महीकी प्रधानता है, माया तो वास्तविकरूपसें हैही नहिं, यह निष्कृष्ट तात्पर्य है. ननु माया जब ब्रह्मसें अविभागापन्न है तो सत्व असत्वरूपसें व्यपदेश करनेको अयोग्य होनेसे वहमाया अनिर्वाच्य है इसलिये ब्रह्ममेंभी अनिर्वाच्यता प्रसक्त होगी? जबकी ब्रह्मभी सत्त्वासत्त्वरूपसें अनिर्वाच्य है तब "आसीत्" इत्यादिक क्रियापदोंसे उसका सत्व कहना असंगत होगा. अथवा ब्रह्ममें पारमार्थिक सत्त्व होनेसें तत्संबद्ध मायामेंभी पारमार्थिक सत्त्व मानना चाहिये? जबकी माया पारमार्थिक सद्रूप है तब "नोसदासीत्" ऐसे सत्वका निषेध अनुपपन्न होगा? इसका यह उत्तर हैकी-अनुभव दृष्टिमें ऐक्य प्रतीत होनेपरभी युक्तिद्वारा विवेक करनेसें मायाअंश अनिर्वाच्य है, और ब्रह्म पारमार्थिक सद्रूप है ऐसा प्रतिपादन किया है. ननु द्रष्टा और दृश्य यह दोनो पदार्थ "आनीदवातंस्वधया" इत्यादिकसें जब पाये जाते है तब इन दोनोंमे बाकी क्या बचा की जिसका "नासीद्रजः" इत्यादिक मन्त्रोंसे निषेध किया जाता है? इस शंकाका यह समाधान हैकी उस माया विशिष्ट ब्रह्मसें अन्य भूत

भौतिक कोइभी पदार्थ थाही नहिं. ननु उस कालमें अन्यके असत्त्वकी शंका नहिं होनी चाहिये, और असत् कहनेसें अनुपलभ्यमान होनेसें निषेध करना असंगत होता है? इसका समाधान यह हैकी सृष्टिके पश्चात्कालमें वर्तमान यह प्रपंच उस पारमार्थिकदशामे नहिंथा, अगर ऐसा न कहें तो किसी जगापर निषेध प्रसक्तही नहिं होसक्ता यह भाव है. ॥ २ ॥

१२४. ८ ७ १७ तम॑आसीत्तम॑सागू॒ळ्हमग्रे॑ऽप्रके॒तं स॑लि॒लं सर्व॑मा इ॒दम् ।
तु॒च्छ्येना॒भ्वपि॑हितं॒ यदासी॒त्तप॑स॒स्तन्म॑हि॒नाजा॑य॒तैक॑म् ॥३॥

ननूक्तप्रकारेण यदिपूर्वमिदं जगन्नासीत् कथं तर्हि तस्य जन्म, जायमानस्य जनिक्रियायां कर्तृत्वेन कारकत्वात् कारकं च कारणान्तरविशेष इति कारकस्य सतो नियतपूर्वक्षणवर्तित्वस्यावश्यंभावात्, अथैतद्दोषपरिजिहीर्षया जनिक्रियायाः प्रागपि तद्विद्यत इत्युच्यते, कथं तस्य जन्म अत आह-तमसागूळ्हमग्रइति। अग्रे सृष्टेः प्राक् प्रलयदशायां . भूतभौतिकं सर्वं जगत् तमसा गूढं यथा नैशतमः सर्वं पदार्थजातमावृणोति तद्वत् 'आत्मतत्त्वस्यावरकत्वान्मायापरसंज्ञं भावरूपाज्ञान मत्र तमइत्युच्यते, तेन तमसा निगूढं संवृतं कारणभूतेन तेनाच्छादितं भवति, आच्छादकात्तस्मात् तमसो नामरूपाभ्यां यदाविर्भवनं तदेवतस्यजन्मेत्युच्यते एतेन कारणावस्थायामसदेव कार्यमुत्पद्यत इत्यसद्वादिनोऽसत्कार्यवादिनो ये मन्यन्ते ते प्रत्याख्याताः। ननु कारणे तमसि तज्जगदात्मकं कार्यं विद्यते चेत्कथं नासीद्रज इत्यादिनिषेधः। तत्राह-तमआसीदिति तमो भावरूपाज्ञानं मूलकारणं तद्रूपता तदात्मना, यतः सर्वं जगत् प्राक् तम आसीत् अतो निषिध्यत इत्यर्थः, नन्वावरकत्वादावरकं तमः कर्तृ आवार्यत्वात् जगत्कर्म कथं तयोः कर्मकर्त्रो स्तादात्म्यं, तत्राह अप्रकेतमिति। अप्रकेतं अप्रज्ञायमानं, अयमर्थः यद्यपि जगतः तमसश्च कर्मकर्तृभावो यौक्तिको विद्यते तथापि व्यवहारदशायामिव तस्यां दशायां नामरूपाभ्यां विस्पष्टं न ज्ञायत इति तादात्म्यवर्णनं। अतएव मनुना स्मर्यते-
आसीदिदंतमो भूतमप्रज्ञातमलक्षणं। अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वत इति।
कुतोवा न प्रज्ञायते तत्राह-सलिलं सलगतौ इदं दृश्यमानं सर्वं जगत्सलिलं कारणेन संगतं अविभागापन्नं आः आसीत्, यद्वा सलिलमिति लुप्तोपमं सलिलमिव यथा क्षीरेणाविभागापन्नं नीरं दुर्विज्ञानं तथा तमसा अविभागापन्नं जगत् न शक्यं विज्ञान

मित्यर्थः। ननु विविधविचित्ररूपभूयसः प्रपंचस्य कथमतितुच्छेन तमसा क्षीरेण नीरस्येवाभिभवः? तथा तमोपि क्षीरवद्बलवदित्येवोच्यते तर्हि दुर्बलस्य जगतः सर्गसमयेपि नोद्भवसंभव इत्यतआह-तुच्छयेनेति। आसमन्ताद्भवतीत्यातुच्छयेन तुच्छेन तुच्छकल्पनेन सदसद्विलक्षणेन भावरूपाज्ञानेनापिहितं छादितमासीत्, एकं एकीभूतं कारणेन तमसा अविभागतां प्राप्तमपि तत्कार्यजातं तपसः स्रष्टव्य पर्यालोचनरूपस्य महिना माहात्म्येनाजायत उत्पन्नं। तपसः स्रष्टव्यपर्यालोचन-रूपत्वं चान्यत्राम्नायते, "यः सर्वज्ञः सर्वविदस्य ज्ञानमयं तप" इति॥ ३॥

अनुवाद-ननु पूर्वोक्त प्रकारसें यह जगत् जब पूर्वकालमें नहि था तब उसका जन्म कैसे हुवा? "नासतो विद्यते भावः" असत्-अविद्यमान पदार्थका भाव-सत्त्व हो सक्ता नहि. और इसमे युक्तिभी हैकी-जायमान-उत्पद्यमान पदार्थ उत्पत्त्यनुकूल व्यापारार्थक "जन्" धातुमें कर्तृत्वद्वारा अन्वित होनेसे वह "कारक" कहाजाता है, कारण के अवान्तर भेदको "कारक" कहते हैं, तो जैसें छेदनभेदनादिक्रियाका कर्ता और कुठारवास्यादिककरण उस क्रियाके पूर्वकालमें वर्तमान हैं तैसेही इस "जन्" धातुका कर्ता प्रपंच (जगत्) है तो उसकी भी स्थिति जनिक्रिया (उत्पत्त्यनुकूल व्यापार) सें पूर्वमें होनी चाहिये. जबकी यह प्रपंच जनिक्रियासे पूर्वमें भी विद्यमान है तब उसका जन्म कैसे होसक्ता है? अगर इस दोषकी निवृत्तिके लिये "जनि क्रियासे पूर्वभी यह जगत विद्यमान है" ऐसा कहा जाय तोभी विद्यमानका जन्मही नहि होसक्ता", इससे वही दोष स्थिर है. इसीके समाधानके लिये भगवान् वेदनारायण कहते हैं कि "तमसागूढमग्र" इति, सृष्टिके पूर्वकालमें भूतभौतिकसमग्र जगत् "तमः" पदवाच्य "माया" परनामक भावरूप अज्ञानसें आच्छादित-आवृत था. जैसे रात्रिसम्बन्धी अन्धकार पदार्थसमूहको आवृत-आच्छादित करता है तैसे मायामें आत्मतत्त्वको आवृत करनेवाली होनेसें प्रपंचको भी आच्छादित करदेती है, और वही प्रपंच अपने आच्छादक मायात्मक आवरणसें नामरूप सहित प्रादुर्भावको पाताहै, वही उस प्रपंचका जन्म है ऐसा कहनेसें "कारणावस्थामें अविद्यमान पदार्थ कार्यरूपसें उत्पन्न होता है" ऐसा माननेवाले असत्कार्यवादि पण्डितोंका कहना असंगत हुवा. ननु कारणरूप'तमः' पदवाच्य मायामें जगत्स्वरूप कार्य सूक्ष्मरूपसें जब विद्यमानही था तब "नासीद्रजः" "रजः शब्दवाच्य

लोकात्मक प्रपंच नहिथा" ऐसा निषेध पहिले क्यों कहा ? इसका उत्तर कहते हैं-मूल कारण भावात्मक अज्ञान स्वरूपही यह प्रपंचथा, इस लिये उसका निषेध करते है, यानें अज्ञानसें अतिरिक्त कार्यरूपसें इस प्रपंचकी प्रतीति नहि होती थी यह तात्पर्य है. ननु अज्ञान आवरण करनेवाला होनेंसे आवरणात्मक व्यापार (क्रिया) का कर्ता है, और जगत उस अज्ञानसें आवृत होता है इसलिये वह कर्म है, तो कर्ता (अज्ञान) और कर्म (प्रपंच) इनका तादात्म्य कैसे होसका ? इसका समाधान करतें है की अप्रकेतमिति-अज्ञायमान है, यानें अज्ञान और जगतका कर्मकर्तृभाव यद्यपि युक्तिसिद्ध है तथापि व्यवहारकालमें जैसें नामरूपकी प्रतीति होती है तैसी प्रतीति उस (प्रलय) कालमें स्पष्ट नहि हे तोभी, यही इन (कर्ता कर्म) दोनोंका तादात्म्य है. मनुस्मृतिमेंभी कहा हैकी यह परोक्षवर्तिदृश्यसमूहात्मक प्रपंच पूर्वकालमें तर्क और निर्देशका अविषय और नामरूपात्मक लक्षण-चिह्नें रहित और अप्रकाशस्वरूप होनेंसें मानों चारो तरफसें प्रसुप्त-मूर्छित हो वैसाथा. वह प्रपंच ज्ञानगोचर क्यों नहि होताथा ? इसका उत्तर कहतें हैकी-यह दृश्यमान जगत् कारणसें संगत-अविभक्तथा। अथवा सलिलको लुप्तोपमक समझना चाहिये. सलिल-जल जसें दुग्धसें मिला हुवा दुर्विज्ञेय होता है वैसेंही अज्ञानसें अविभक्त प्रपंच ज्ञानगोचर होसका नहिथा। ननु विविध और विचित्र अनेक रूपवाले प्रपंचका अतितुच्छ अज्ञानमें अभिभव कैसे हुवा ? नीरकी अपेक्षासें क्षीर बलिष्ठ होनेंसें क्षीरसे नीराभिभव उपपन्न है, परंतु तुच्छ अज्ञानकी जो निर्बल है उनसें बलिष्ठ प्रपंचका अभिभव कैसें हुवा ? "अज्ञानभी क्षीरकी तरह बलवत्तर है" ऐसा कहें तो दुर्बल जगत्का सृष्टिकालमें उद्भव कैसे संभवित है. इसका जवाब हैकी तुच्छयेनेति-आभु-उद्भवको पानेवाला प्रपंच सत् और असत्में विलक्षण भावरूप कल्पित तुच्छ अज्ञानसें आच्छादित था, यानें कारणात्मक अज्ञानसें अविभक्त होनेपरभी वह कार्यस्वरूपप्रपंच स्रष्टव्य पर्यालोचनात्मक तपश्चरणके महत्वनें प्रादुर्भूत हुवा है. स्रष्टव्यपर्यालोचनको "तपः" शब्दसें वेदमें व्यवहार किया है-जो परमेश्वर सर्वज्ञ है, और जिस परमेश्वरका तपश्चरण ज्ञानमय-पर्यालोचनात्मक है इत्यादि. ॥३॥

१२५. ८ ७ १७. कामस्तदग्रेसमवर्तताधिमनसोरेतःप्रथमंयदासीत ।
सतोबन्धुमसतिनिरविन्दन्हृदिप्रतीष्याकवयोमनीषा॥४॥

ननूक्तरीत्या यदीश्वरस्य पर्यालोचनं जगतः पुनरुत्पत्तौ कारणं तदेव किं-निबन्धनमित्यत आह–कामस्तदग्रइति। अग्रे अस्य विकारजातस्य सृष्टेः प्रागवस्थायां परमेश्वरस्य मनसि कामः समवर्तत, सम्यगजायत सिसृक्षा जातेत्यर्थः। ईश्वरस्य सिसृक्षा वा किं हेतुकेत्यत आह–मनस इति। मनसः अन्तःकरणस्य संबन्धिवासनाशेषेण मायायां विलीनेन्तःकरणे समवेतं, सामान्यापेक्षमेकवचनं, सर्वप्राण्यन्तःकरणेषु समवेतमित्यर्थः, एतेनात्मनो गुणाधारत्वं प्रत्याख्यातं। तादृशं रेतः भाविनः प्रपंचस्य बीजभूतं, प्रथममतीतेकल्पे प्राणिभिः कृतं पुण्यात्मकं कर्म यत्, यतः कारणात् सृष्टिसमये आसीत्, अभवत्, भूष्णु वर्धिष्णुरजायत परिपक्वं सत् फलोन्मुखमासीत् इत्यर्थः, तत् ततोहेतोः फलप्रदस्य सर्वसाक्षिणः कर्माध्यक्षस्य परमेश्वरस्य मनसि सिसृक्षाजायत इत्यर्थः। तस्यांच जातायां स्रष्टव्यं पर्यालोच्य ततः सर्वं जगत्सृजति। तथाचाम्नायते–"सोकामयत बहुःस्यां प्रजायेयेति सतपोतप्यत सतपस्तप्त्वा इदंसर्वमसृजत यदिदंकिंचेति" (तैतिरीय २–६)। श्रुतिरात्मना इत्थमवगमितेर्थे विद्वदनुभवमपि अनुग्राहकत्वेन प्रमाणयति–सतइति। ततः सत्वेनेदानीमनुभूयमानस्य सर्वस्य जगतो बन्धुं बन्धकं हेतुभूतं, कल्पान्तरे प्राण्यनुष्ठितं कर्मसमूहं, कवयः क्रान्तदर्शनाः अतीतानागतवर्तमानाभिज्ञा योगिनः हृदि हृदये निरुद्धया मनीषा मनीषया बुद्ध्या प्रतीष्य विचार्य असति सद्विलक्षणे अव्याकृते कारणे निरविन्दन् निःकृष्यालभन्त विविच्याजानन्नित्यर्थः॥४॥

अनुवाद–ननुपूर्वोक्तप्रकारसें ईश्वरकर्तृकपर्यालोचन प्रपंचोत्पत्तिमें कारण है तो वह पर्यालोचन किम्मूलक है ? इसका प्रत्युत्तर कहते हैं–की इसविकृतवर्ग–प्रपंचकी पूर्वावस्थामें परमेश्वरके मनमें प्रपंचसिसृक्षात्मक काम प्रादुर्भूत हुवा. वह सिसृक्षात्मक काम किस हेतुसें हुवा ? उसका उत्तर कहते है–की मायामें वासनावशेषरूपसें विलीन सकल प्राणिके अन्तःकरणोंसें संबद्ध जो 'रेतः' है सो भाविप्रपंचका बीजभूत है, यानें प्रथम अतीत कल्पमें प्राणिनें पुण्यात्मक कर्म जिस कारणसें संपादित कियेथे वे कर्म सृष्टिकालमें परिपक्वावस्थापन्न होनेसें फलोन्मुख हुवे. उसी हेतुसें सकलकर्मफलोंके दाता सर्वसाक्षी कर्माध्यक्ष परमेश्वरके मनमें सिसृक्षात्मक कामका आविर्भाव हुवा, यह तात्पर्य है. और वह सिसृक्षा जब परमेश्वरके मनमें हुइ तब स्रष्टव्य प्रपंचका पर्यालोचन करके सकल सृष्टिका ईश्वरसें प्रादुर्भाव किया. श्रुतिमेंभी कहा है–वह परमेश्वर इच्छा करते

भये की मैं अनेक रूप होजाउं, आलोचनात्मक तपश्चरण करके वह परमेश्वर इस समग्र प्रपंचको रचतेभये श्रुति (मन्त्र) ने जिस अर्थका बोध किया उसी अर्थमें दया करके श्रुति विद्वानूलोकोंका अनुभव भी बताती है-इस कालमें सद्रूपसें अनुभूयमान जगत्का हेतुभूत कल्पान्तरमें अनुष्ठित प्राणिमात्रके कर्मसमूहको कवि-भूनभविष्यद् और वर्तमानको जाननेवाले योगिलोक हृदयमें बुद्धिके निरोधद्वारा विचार करके असत् सद्विलक्षण अव्याकृत कारणमें विवेकपुरःसर पूर्वोक्तकर्मसमूहको यथार्थ जानते हैं. ॥ ४ ॥

१२६ ८ ७ १७. तिरश्चीनोविततोरश्मिरेषामधःस्विदासीदुपरिस्विदासीत्। रेतोधाआसन्महिमानआसन्त्स्वधाअवस्तात्प्रयतिःपरस्तात्॥५॥

एवमविद्याकामकर्माणि सृष्टेर्हेतुत्वेनोक्तानि, अधुना तेषां स्वकार्यजनने शैघ्र्यं प्रतिपाद्यते, येयं नासदासीदित्यविद्या प्रतिपादिता, यश्च कामस्तदग्र इति कामः, मनसोरेत. प्रथमं यदासीत् इति यत्कर्म, एषामविद्याकामकर्मणां वियदादिभूतजातानि सृजतां, रश्मि. रश्मिसदृश, -यथासूर्यरश्मिरुदयानन्तरं निमेषमात्रेण युगपत्सर्वं जगद्व्याप्नोति तथा शीघ्रं सर्वत्र व्याप्नुवन्, यः कार्यवर्गो विततो-विस्तृत आसीत्, स्विदासीदिति वक्ष्यमाणमत्रापि संबध्यते, स कार्यवर्ग. प्रथमतः किं तिरश्चीनः तिर्यगवस्थितो मध्येस्थित आसीत् किंवा अधः अधस्तादासीत् आहोस्वित् उपरि उपरिदेशस्थमासीत्, उपरिस्विदासीदितिच। "आत्मनः आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निरित्यादिकया पञ्चमीश्रुत्या तत उद्गातारं ततो होतारमितिवत् क्रमप्रतिपत्तौ सत्यामपि विद्युत्प्रकाशवत् सर्गस्य शीघ्रव्यापनेन तस्य क्रमस्य दुर्लक्षणत्वात् एतेषु त्रिषु स्थानेषु प्राथम्यं कुत्र इति विचार्यते, एवं नाम शीघ्रं सर्वतो दिक्षु सर्गो निष्पन्न इत्यर्थः। एतदेव विभजते-सृष्टेषु कार्येषु मध्ये केचिद्रेतोधा रेतसो बीजभूतस्य कर्मणो विधातारः कर्तारः भोक्तारश्च जीवा आसन्, अन्ये भावा महिमानः महान्तो वियदादयो भोग्या आसन्, एवं मायासहितः परमेश्वर. सर्वं जगत् सृष्ट्वा स्वयं चानुप्रविश्य भोक्तृभोग्यादिरूपेण विभागं कृतवानित्यर्थः. अयमेवार्थस्तैत्तिरीयके—"तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्"इत्यारभ्य प्रतिपाद्यते। तत्र च भोक्तृभोग्ययोर्मध्ये स्वधा, अन्ननामैतत्. भोग्यप्रपंचः अवस्तात् अवर. निकृष्ट आसीत्,

प्रयतिः प्रयतिता भोक्ता परस्तात् परः उत्कृष्ट आसीत् भोग्यप्रपंचं भोक्तृप्रपंचस्य शेषभूतं कृतवानित्यर्थः ॥ ५ ॥

अनुवाद–इस प्रकार सृष्टिमें हेतुभूत अविद्याकामकर्मका प्रतिपादन किया. अब "वह अविद्यादिक अपनें अपनें कार्यको अतिशीघ्र रचते भये" ऐसा निरूपण करते हैं–"नासदासीत्" इस मन्त्रसें जो मूलाविद्याका प्रतिपादन किया, और "कामस्तदग्रे" इसमन्त्रसें जो कामका प्रतिपादन किया, और "मनसोरेतः प्रथमं यदासीत्" इससें जो कर्मका प्रतिपादन किया, आकाशादिकमहाभूतोंको कार्यरूपसें बनानेवाले इन अविद्यादिकसमुदायका कार्यवर्ग सूर्यके किरणोंकी तरह सत्वर विश्वमें व्याप्त हुवा, जैसें सूर्यके किरण सूर्योदयके अनन्तर निमेषमात्रमें समस्त जगत्को अपनें स्वरूपसे व्याप्त करते हैं, तैसेंही अविद्यादिक समुदायरूपकारणसें उत्पन्न भया हुवा कार्यवर्ग त्वरितही विश्वको व्याप्त करता भया. और यह विस्तृत कार्यवर्ग क्या मध्यप्रदेशमें अवस्थित था? अथवा अधस्तन (नीचेके) प्रदेशमें अवस्थित था? किंवा उपरितन प्रदेशमें अवस्थित था? "इस आत्मासें आकाश उत्पन्न हुवा, आकाशसें वायु और वायुसें अग्नि" इत्यादिक मन्त्रोंमें पञ्चमी विभक्तिके श्रवणसें "आचार्यादिकनके बाद होताको और होताके बाद उद्गाताको" इत्यादिक मन्त्रप्रदर्शितक्रमानुसार यहांभी अविद्यादिसमूहसें उत्पद्यमान प्रपंचात्मक कार्यवर्गमें अनुक्रम प्राप्त होता है. परंतु बिजलीके प्रकाशकी तरह यह कार्यवर्गके अतिशीघ्र सर्वत्र व्याप्त होनेसे क्रम अत्यन्त दुर्ज्ञेयहै. इनतीनों स्थानोंमें प्राथम्य कहां हैं सो विचार किया जाता है, यानें बहुतही जल्दी कार्यवर्ग फैला हुवा है की जिसमें अनुक्रम पाया जाता नहिं. यही बात स्पष्ट कहतेहैं:–रचे हुवे कार्य वर्गके मध्यमें कोइ पदार्थ बीजभूत कर्मके विधान करनेवाले और उन कर्मोंके फलोंको भोगनेवाले जीव थे. और अन्य पदार्थ वियदादिक सब भोग्यवर्गके अन्तर्गत थे. इस प्रकार मायासहित परमेश्वर सकल जगत्को अविद्याकामकर्मद्वारा उत्पन्न करके उसीमें अनुप्रविष्ट हो करके भोक्ता और भोग्यादिरूपसे विभागको करते भये. तैत्तिरीयकमें भी कहा है की–प्रपंचको रचकरके उसीमें अनुप्रवेश परमेश्वरने किया है. इस भोक्तृभोग्यात्मकप्रपंचमें भोग्यप्रपंच निकृष्ट था और भोक्तृप्रपंच उत्तम था यानें भोग्यात्मकप्रपंचका निर्माण भोक्त्रात्मक प्रपंचक शेषरूपसें किया गया है. ॥५॥

१२७. ८ ७ १७. कोअद्धावेदकइहप्रवोचत्कुतआजाताकुतइयंविसृष्टिः।
अर्वाग्देवाअस्यविसर्जनेनाथाकोवेदयतआबभूव ॥६॥

एवं भोक्तृभोग्यरूपेण सृष्टिः संग्रहेण प्रतिपादिता, "एतावद्वाइदं अन्नंचैवान्नादश्च सोम एवान्नमग्निरन्नाद" इतिवत्, अथेदानीं सा सृष्टिः दुर्विज्ञानेति न विस्तरेणाभिहितेत्याह–कोअद्धेति। कःपुरुषः अद्धा पारमार्थ्येन वेद जानाति, को वा इहास्मिन्लोके प्रवोचत् प्रब्रूयात्, इयं दृश्यमाना विसृष्टिः विविधा भूतभौतिकभोक्तृभोग्यादिरूपेण बहुप्रकारा सृष्टिः कुतः कस्मादुपादानकारणात्, कुतः कस्माच्च निमित्तकारणादाजाता समन्ताज्जाता प्रादुर्भूता, एतदुभयं सम्यक् को वेद को वा विस्तरेण वक्तुं शक्नुयादित्यर्थः। ननु देवा अजानन्तः सर्वज्ञास्ते ज्ञास्यंति वक्तुंच शक्नुवन्तीत्यत आह–अर्वागिति देवाश्चास्य जगतो विसर्जनेन वियदादिभूतोत्पत्त्यनन्तरं विविधं यद्भौतिक सर्जनं सृष्टिः तेन अर्वाक् अर्वाचीनाः कृताः भूतसृष्टेः पश्चाज्जाता इत्यर्थः तथाविधास्ते कथं स्वोत्पत्तेः पूर्वकालीना सृष्टिं जानीयुः, अजानन्तो वा कथं प्रब्रूयुः, उक्तं दुर्ज्ञानत्वं निगमयति–अथ एवं सति देवाअपि न जानन्ति, किल तद्व्यतिरिक्तः कोनाम मनुष्यादिर्वेद तत् जगत्कारणं जानाति यतः कारणात्कृत्स्नं जगदाबभूव अजायत ॥ ६ ॥

अनुवाद–इस प्रकार भोग्यभोक्तृस्वरूपसे सृष्टिसंग्रहका प्रतिपादन किया, अब यह सृष्टि दुर्ज्ञेय है इसलिये विस्तारसे नहि कहा सो कहते है–कौन पुरुष पारमार्थिक रीतिसे जानसक्ता? अथवा कौन पुरुष इस लोकमें (इस प्रपंचका) प्रवचन करसक्ता है? भूतभौतिकभोक्तृभोग्यादिकस्वरूपसे विविधाकार प्रतीयमान यह सृष्टि किस उपादान कारणसे और किस निमित्त कारणसे प्रादुर्भूत हुइ है इन दोनो वृत्तान्तोंको कौन पुरुष यथार्थ जानसक्ता और कौन पुरुष सविस्तर कहेसक्ता है. ननु देवतालोक अज्ञात होनेपरभी सर्वज्ञहोनेसे जान सकेंगे? और विवेचनभी करसकेंगे? इसका उत्तर है श्री–देवतालोक आकाशादिक भूतोंकी उत्पत्तिके अनन्तर भौतिक सृष्टिसे अर्वाचीन हैं, यानें भूतसृष्टिके अनन्तर प्रादुर्भाव को पाये हुवे देवतालोक अपनी उत्पत्तिसें प्राक्कालिक सृष्टिको कैसे जानसकें! और स्वयं (उस सृष्टिके) ज्ञानरहित होते हुवे कैसे प्रवचन कर सकें? जबकी देवतालोकभी इस कार्यरूपप्रपंचको नहिं जानसके तब

दूसरा कौन मनुष्य कार्यरूप प्रपच और (अभिन्ननिमित्तोपादान) कारणात्मक परमेश्वरको कैसे जान सके? सर्वथा कार्य और कारण दुर्ज्ञेयहै ॥ ६ ॥

१२८. ८ ७ १७ इयंविसृष्टिर्यतआबभूवयदिवादधेयदिवान।

योअस्याध्यक्षःपरमेव्योमन्त्सोअङ्गवेदयदिवानवेद ॥७॥१७॥

उक्तप्रकारेण यथा इद जगत्सर्जन दुर्विज्ञानम्, एव सृष्ट जगत् तद्धुधरमपीत्याह–इयमिति। यतः उपादानभूतात्परमात्मनः इयं विसृष्टिः विविधा गिरिनदीसमुद्रादिरूपेण विचित्रा सृष्टि आबभूव आजाता सोपि किल यदिवा दधे धारयति यदिवा न धारयति एत्र च कोनामान्योधर्तुं शक्नुयात्, यदिधारयेत् ईश्वरएव धारयेत् नान्यइत्यर्थः. एतेन कार्यस्य धारयितृत्वप्रतिपादनेन ब्रह्मणउपादानकारणत्वमुक्तं भवति। तथाच पारमर्ष सूत्रं–प्रकृतिश्चप्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधादिति (ब्र. सू. १-४-२३)। यद्वा अनेनार्धेन पूर्वोक्त सृष्टिदुर्ज्ञानत्वमेव दृढयति–कोवेदेत्यनुवर्तते, इयं विविधा सृष्टिर्यत आबभूव आसमन्तादजायतेति को वेद! नकोपि, नास्त्येव जगतो जन्म कदाचिदनीदृशं जगदिति बहवो भ्रान्ता भवन्त्यपि, यत. यस्मात्परमात्मन उपादानभूतादाबभूव तं परमात्मानं कोवेद न कोपि, प्रकृतितः परमाणुभ्योवा जगज्जन्मेति हि बहवो भ्रान्ताः। तथा स एव उपादानभूतः परमात्मा स्वयमेव निमित्तभूतोपि सन्, यदिवा दधे विदधे इदं जगत्ससर्ज, यदिवा न ससर्ज। असंदिग्धे संदिग्धवचनमेतत् शास्त्राणि चेत्प्रमाण स्युरिति यथा। स एव विदधे तं कोवेद! अजानन्तोपि बहवो जडात् प्रधानादकर्तृकमेवेदं जगत्स्वयमजायतेति विपरीतं प्रतिपन्नाः, विदधतो विधानमजानन्तोपि सएव उपादानभूत इत्यपि को वेद! नकोपि, उपादानादन्यः तटस्थ एवेश्वरो विदध इति बहवः प्रतिपन्नाः, देवा अपि य न जानन्ति तदर्वाचीनाना मेषां तत्परिज्ञाने कैव कथेत्यर्थः। यद्येवं जगत्सृष्टिरत्यन्तदुरवबोधना तर्हि सा प्रमाणपद्धतिमध्यास्त इत्याशंक्य तत्तद्भावे ईश्वरः वेदं प्रमाणयति–यो अस्येति, अस्य भूतभौतिकात्मकस्य जगतो योध्यक्ष ईश्वरः परमेउत्कृष्टे सत्यभूते व्योमन् व्योमनि आकाशे आकाशवन्निर्मले स्वप्रकाशे यद्वा व्योमनि विशेषेण रक्षते निरतिशयानन्दस्वरूप इत्यर्थः। यद्वा अवतिर्गत्यर्थ, व्योमनि विशेषेण गन्तव्ये देशकालवस्तुभिरपरिच्छिन्न इत्यर्थः। अथवा अवतिर्ज्ञानार्थः व्योमनि विशेषेण ज्ञातरि विशिष्टज्ञानात्मनि ईदृशे स्वात्मनि प्रतिष्ठितः। सवेदि-

सनत्कुमारनारदयोः संवादे "स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित" इति " स्वे महिम्नीति"। (छांदोग्य उ. ७–२४–१) ईदृशो यःपरमेश्वरः सो अंग अंगेतिप्रसिद्धौ, सोपिनाम वेद जानाति यदिवा न वेद न जानाति कोनामान्यो जानीयात् सर्वज्ञ ईश्वर एव तां सृष्टिं जानीयात् नान्य इत्यर्थः ॥ ७ ॥ १७ ॥

अनुवाद–पूर्वोक्त प्रकारसें जैसें 'इस जगतकी रचना दुर्ज्ञेय है तैसेही रचेहुवे इस जगतको धारण करना दुःशक है यानें दुर्धर है," यह वृत्तान्त इस मन्त्रमें कहतें हैं–गिरि नदी समुद्रादि अनेक विचित्र प्रकारसें प्रतीत होता हुवा यह जगत् जिस उपादानकारणरूप परमात्मासें प्रकट हुवा है, यह परमेश्वरभी इस जगतका धारक है, किंवा नहि? यानें अगर इस जगत्को अधिष्ठानरूपमें धारण कोइ करता है तो यह परमेश्वरही है, इसके सिवाय अन्य कोइभी धारण करनेको शक्तिमान् नहि है, यह तात्पर्य है " जगद्रूप कार्यका परमेश्वरही धारक है " ऐसा प्रतिपादन करनेसें उस परमेश्वरका उपादान (कारण)त्व सिद्ध होताहै और इसमें ब्रह्मसूत्र (१–४–२३) भी अनुमत होताहै—" प्रकृतिश्चप्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् ". एकविज्ञानसें सर्वविज्ञानकी प्रतिज्ञा श्रुतिमें कही गई है, और " एक मृत्तिकाविज्ञानमात्रसें जैसें सर्व मृण्मय विकृतपदार्थ विज्ञात होतेहै, तैसेही ब्रह्मरूप उपादान कारणके विज्ञानसें सकल विकृतवर्ग विज्ञात होता है " इत्यादिक दृष्टान्तोंके अनुसार ब्रह्म जगत्का (प्रकृति) उपादान कारणभी है, यानें निमित्ततो है ही है, एवंच अभिन्ननिमित्तोपादानता सिद्ध होती है. यद्वा इस अर्धचसें पूर्वोक्त सृष्टिकी दुर्ज्ञेयताही दृढ करतें है–यह विविधसृष्टि जिस (उपादान) कारणसें प्रादुर्भूत हुई, उस (कार्य) को कौन जानसक्ता है? कोइभी नहि, " जगत्का जन्म किसी कालमें है ही नहि, यह जगत् पूर्व कालमें ऐसाही है " इस प्रकार अनेक लोक भ्रान्त होतें है. और जिस उपादानकारणभूत परमेश्वरसें यह विविध सृष्टि आविर्भूत हुई उस परमेश्वरको यथार्थरूपसें कौन जानसक्ता है? कोइभी नहि. अनेक लोक प्रकृतिसें अथवा परमाणुसें जगत्का जन्म मान करके भ्रान्तिमें पडे हुवे हैं. इसी तरह वही उपादान कारणभूत परमेश्वर स्वय निमित्तभूत होकरकेभी अगर जगज्जन्म करता हो तो करता हो, यानें यह निश्चित अर्थमें संदेहजनक वाक्य है, जैसें " अगर शास्त्र प्रमाण हो " इत्यादि वाक्योंका निश्चित अर्थ होनेपरभी,

संशयमें तात्पर्य है, तैसेंही यह वेदवाक्य है. तात्पर्य इसका यही है की वही परमेश्वर जगज्जन्मादिक कर्ता है उसको कौन जान सक्ता है ? अनेक अज्ञानी लोक " जड प्रधानसें कर्तृनिरपेक्ष जगत् स्वयं बना हुवा है " ऐसा विपरीत ज्ञानको पाये हुवें हैं, जगज्जन्मको नहिं जानकेभी " वही परमात्मा उपादान कारणरूप है " ऐसा कौन जानसक्ता है ? कोइ लोकतो ऐसा कहते हैकी उपादानकारणसें अतिरिक्त-तटस्थ होकरके ईश्वर निर्माण करताहै. देवतालोक भी जिस तत्त्वको यथार्थ रीतिसें नहिं जानसक्के तो अर्वाचीनकालके लोक न जानें इसमें कौन आश्चर्यहै ? यदि इस प्रकार यह सृष्टि परम दुर्बोध है तो इस के सद्भावमें प्रमाणभूत वेदको परमेश्वर खुद कहते हैकी–भूतभौतिकात्मक इस जगत्का अध्यक्ष जो ईश्वर है सो सर्वोत्कृष्ट त्रिकालाबाधित आकाशवत् निर्लेप-निर्मल स्वकीयप्रकाशमें अथवा स्वकीय निरतिशयआनन्दरूपमें अथवा देश-कालादिकसें अपरिच्छिन्न निजस्वरूपमें अथवा विशिष्टज्ञानात्मकस्वरूपमें प्रतिष्ठित है. श्रुतिमें (छां. ७-५४-१) सनत्कुमार और नारदके संवादरूपसें कहाहैकी–हे भगवन् ? यह आत्मा किसमें प्रतिष्ठित है ? (उत्तर) स्वकीय महि-मामें वह (आत्मा) प्रतिष्ठित है. ऐसा वह परमेश्वर अगर जानता होतो जान सक्ता है. इससें अन्य कोइ जान सक्ता नहिं, यानें सर्वज्ञ ईश्वरही स्वयं रची हुई सृष्टिको जानता है, अन्य नहिं. ॥ ७ ॥

१२९. ८ ७ १८ योयज्ञोविश्वतस्तन्तुभिस्ततएकंशतंदेवकर्मेभिरायतः।
इमेवयन्तिपितरोयआययुःप्रवयापवयेत्यासतेतते ॥ १ ॥

तन्तुभिस्तनितृभिः विस्तारयितृभिर्वियदादिभूतैर्यः सर्गात्मको यज्ञः विश्वतः सर्वतस्ततो विस्तृतः, तथा एकशत मेकं च शतं च एकशतं संख्येति एकोत्तरशतमि-त्यर्थः, ब्रह्मा येषु शतसंख्येष्वात्मीयसंवत्सरेषु जीवति तदभिप्रायेणात्रशतसंख्या, जीवता तेन प्रजापतिना सार्धमेकशतमित्युच्यते, यथाशतायुर्वैपुरुषः शतवीर्यआत्मै-कशत इति ब्राह्मणः शतसंवत्सरपर्यन्तं देवकर्मभिर्देवानुद्दिश्य भोक्तृभिः कृतैः कर्म-भिरायतः दीर्घीभूतः तावत्कालावस्थायी एवमायामविस्तारवान्, पितरः पालकाः प्रजापतेः प्राणभूताः विश्वसृजो देवाः वयन्ति निर्मिमते, ये देवा आययुः सष्टव्यं सर्व जगत् स्ववयनेन व्यापुः, अपिच प्रवयापवयेति, प्रवाणं नाम प्रकृष्टस्य चेतनस्य

भोक्तृप्रपंचस्य सर्जनम्, अपवानं नाम अपकृष्टस्य निकृष्टस्याचेतनस्य भोग्यप्रपंचस्य सर्जनं, प्रवयापवयेति वयन्तः प्रवाणमपवानं च कुर्वन्त इत्यर्थः, एवंभूताः सन्तः ते विश्वसृजः तते विस्तृते सत्यलोके आस्ते प्राणरूपेण प्रजापतिमुपासते ॥ १ ॥

अनुवाद–जगत्को विस्तारनेवाले इस आकाशादिक भूतोंसे जो यह सर्गात्मक यज्ञ सर्व (तरफ) प्रकारसें विस्तारको पाया है, एकाधिकशतसंवत्सर पर्यन्त स्वकीयकालपरिमाणसें (जिस् सर्गमें) ब्रह्मा प्राण धारण करते है " शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्य आत्मा एकशतः " इस श्रुतिसिद्ध नियमानुसार ब्रह्माके एकोत्तरशतसंख्यापरिमितसंवत्सरपर्यन्त देवोंका उद्देश करके फलोपभोगमें आसक्त अधिकारिलोकने अनुष्ठित किये हुवे कर्मसें यह सर्गात्मक यज्ञ आयत-दीर्घ है, यानें तावत्परिणामक आयाम विस्तारवान् है की यावत्परिमाणक ब्रह्माका प्राणधारणानुकूलव्यापार है. जो देवतालोक सृष्टव्यसमग्रजगत्को अपनी वयन (सर्जन) क्रियासें व्याप्त करते है, वही देवतालोक पालक-रक्षक होते हुवे और प्रजापतिके प्राणरूप होते हुवे " विश्वसृज " नामक होते हुवे निर्माण करते हैं. और वही " विश्वसृज " नामकदेव प्रवाण-भोक्तृप्रपंचकी रचना, अपवान–अपकृष्ट निकृष्ट अचेतन भोग्यप्रपंचकी रचना करते हुवे विस्तृत सत्यलोकमें प्राणरूपसे प्रजापतिकी उपासना करते है. ॥ १ ॥

१३०. ८ ७ १८ पुमाँ एनंतनुतउत्कृणत्तिपुमान्वितत्नेअधिनाकेअस्मिन् ।
इमेमयूखाउपसेदुरूसदःसामानिचक्रुस्तसराण्योतवे ॥ २ ॥

पुमान् पुरुषः आदिपुरुषः प्रजापतिः एनं यज्ञं तनुते विस्तारयति सृष्टवानित्यर्थः। तथा च ब्राह्मणं "स प्रजापतिर्यज्ञमतनुत तमाहरत्तेनायजते"ति।"प्रजापतिर्यज्ञमसृजत यज्ञं सृष्टमनुब्रह्मक्षत्रे असृज्येतामि"तिच। सएव पुमान् सृष्टं तं यज्ञमुत्कृणत्ति, सएव पुमान् प्रजापतिः अस्मिन् भूलोके नाके, अकं दुःखं नास्त्यस्मिन्निति नाकः स्वर्गो लोकः, तत्र च वितत्ने इमं यज्ञ विस्तारयति, तस्य मयूखाः रश्मिभूताः तस्य प्रजापतेः प्राणात्मका इमे विश्वसृजो देवाः सदा सदनं देवयजनं स्थान मुपसेदुः, विश्वसर्जनहेतुभूतं विश्वसृजामयनाख्यं यज्ञ कर्तुमुपसीदन्ति, उपसद्य च सामानि रथन्तरादीन्योतवे वयनाय यज्ञाख्यं वस्त्रमोतुं तसराणि तिर्यक्सराणि तिरश्चीनसूत्राणि चक्रुः ॥ २ ॥

१३४ ८ ७ २३. यस्मिन्वृक्षे सुपलाशेदेवैः संपिबतेयमः।

अत्रानोविश्पतिः पितापुराणाँ अनुवेनति ॥ १ ॥

वृक्षे लुप्तोपममेतत्, वृक्षवत् सुपलाशे शोभनपलाशोपेते शोभनोद्यान—सहिते यद्वा शोमनपर्णोपेते वृक्षे तादृशस्य वृक्षस्य मूलं यथा ऊष्मजनितश्रमापनोदनेन सुखकरं भवति तद्वत्सुखकरे यस्मिन्स्थाने देवैः परिजनभूतैः यमो नियन्ता वैवस्वतः संपिबते सहभुङ्क्ते पिबतीत्यर्थः। विश्पतिर्विशां प्रजानामधिपतिः पिता नः व्यत्ययेनबहुवचनम् मम नचिकेतसो जनको वाजश्रवसः अत्रास्मिन् यमस्यस्थाने पुराणान् पुरातनान् अत्रचिरकालं निवसतः पितृननु तेषां पश्चात्तत्समीपे निवसत्वयमिति वेनति मा कामयते "नचिकेता नाम कुमारः वाजश्रवसेन पित्रा यमलोकं प्रस्थापितः सन् यमं दृष्ट्वा प्रसाद्य पुनरपीमं लोकमाजगाम" अयमर्थः इदमादिभिर्मन्त्रैः प्रतिपाद्यते। यद्वा कुमारो नाम नचिकेतसोऽन्यः कश्चिदृषिः यच्छतीति यम आदित्यः तमनेन सूक्तेन तुष्टाव सुपलाशे वृक्षइव यस्मिन् शोभने स्थाने यम आदित्यः देवैः दीव्यन्तीति देवा रश्मयः तैः संपिबते संगच्छते। अत्रास्मिन्स्थाने स्थितो विश्पतिर्विशां प्रजाना प्रकाशनप्रवर्षणादिना पालयिता प्राणात्मना सर्वेषां जनकः स आदित्यः पुराणान् चिरंतनान् स्तोतॄन् नोऽस्मानपि वेनति अनुग्राह्यत्वेन कामयते। यद्वा अत्रस्थाने स्थितान् नोऽस्माकं पुराणान् पूर्वपुरुषान् अनुवेनति अनुक्रमेण कामयते ॥ १ ॥

अनुवाद—सुन्दर पत्रवाले वृक्षकी छाया जैसे परिश्रमको दूर करनेमे सुखकर होती तैसे सुखप्रद जिस स्थानमें परिजनभूत देवोंके साथ सकलका नियन्ता वैवस्वत यमराज सुखानुभव करते है प्रजाके अधिपति मेरे (नचिकेताके) पिता वाजश्रवस इसी यमराजके स्थानमें चिरकालसें निवास करते हुवे पितृओंके साथ "यह बालक भी निवास करे" ऐसी मेरे (नचिकेताके) लिये इच्छावाले हुवे है। (नचिकेता नामके बालकको वाजश्रवस नामके महर्षिने यमलोकमें भेजा, वहा यमराजका दर्शन करके और उनको प्रसन्न करके फिरसें वह बालक इस मर्त्यलोकमें आया है यह अर्थ एतदादिक मन्त्रोंसें प्रदर्शित किया जाता है. (और यही वृत्तान्त कठवल्लीमेंभी विशद और विस्ताररूपमें कहा है) अथवा कुमारनामक नचिकेतासे अन्य कोइ ऋषिविशेष सूर्यनारायणकी इस सूक्तसें

स्तुति करते भये। सुन्दरपत्रवाले वृक्षकी तरह जिस, उत्तम स्थानमें आदित्य-देव अपने किरणोंके साथ प्राप्त होते है, उस स्थानमें प्रजाका प्रकाशन और वर्षणादिकनमें पालन करनेवाले और प्राणस्वरूपसें सबका जनक यह आदित्य-देव, चिरकालसें स्तुति करते हुवे हमको अनुग्राह्य मानके चाहते है। अथवा इस स्थानमें रहे हुवे हमारे पूर्व पुरुषोंको अनुक्रमसें चाहते है॥ १॥

१३५. ८ ७ २२ पुराणाँअनुवेनन्तंचरन्तपापयामुया

असूयन्नभ्यचाकशंतस्माअस्पृहयंपुनः॥ २॥

पुराणान् पुरातनान् पितॄननुवेनन्तं मामनुगतं कामयमानं ममुया अनया पापया निकृष्टया बुद्ध्या सह चरन्तं वर्तमानं पितरं वाजश्रवस मसूयन् सुखेन जीवन्त मा " मृत्युसमीपं प्रेहीत्युक्तवान् " इति मानसेनोपतापेन युक्तः सन् प्रथम-मभ्यचाकशम्, अभ्यपश्यम्। पुनः पश्चात्तस्मा अस्पृहय पितुराज्ञया तं मृत्युमाप्तु-मैच्छम्। यद्वा पुराणान् चिरन्तनान् स्तोतॄन् पूर्वपुरुषान् पितॄन्वा अनुवेनन्त-मनुक्रमेण कामयमानं चरन्त मुदयास्तमयाभ्या दिवि परिवर्तमानमनया पापया निकृष्टया स्तोतुमसमर्थया बुद्ध्या असूयन् " गुणेषुदोषाविष्करणमसूया " पर-कीयगुणेषु दूषणान्याविष्कुर्वन् अभ्यचाकशम्, अयमपि कश्चिदिति सामान्यरू-पेणाभ्यपश्यम्, इदानीं तु पुनः तस्यादित्यस्य माहात्म्यं जानन् तस्मा अस्पृहयम्, तमेवादित्यं स्तुतिभिः परिचरणात्मकैः कर्मभिश्च आप्तुमैच्छम्॥ २॥

अनुवाद–प्राचीन पितृओंके पास मेरे गमनको चाहते हुवे और निकृष्ट इस बुद्धिसें युक्त वाजश्रवस-पिताके गुणोंमें दोषारोपणरूप असूया करते हुवे, और सुखपूर्वक जीवनको व्यतीत करते हुवे मुझको " तुम मृत्यु-यमराजके समीप जाओ " ऐसा कहनेसे मानसिक परितापमेंयुक्त मैं प्रथम देखता भया। उसके अनन्तर पितामें स्पृहातुर मैं हुवा, यानें पिताकी आज्ञासे उस मृत्यु यम-राजके पास जानेको मैं इच्छता भया। अथवा स्तुति करनेवाले प्राचीन पुरुषोंको अथवा पितृओंको अनुक्रमसें चाहते हुवे और उदय और अस्तसें आकाशमें विहार करते हुवे आदित्य देवको स्तुतिमें अशक्त ऐसी बुद्धिसें गुणोंमें दोषारोपण-रूप असूयाको करता हुवा मैं " यहभी कोइ है " ऐसा सामान्य अवलोकन

१२३. ८ ७ १८ विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्यत्रिष्टुबिह भागो अह्नः। विश्वान्देवाञ्जगत्याविवेशतेनचाक्लृप्रऋषयोमनुष्याः॥५॥

अपिच मित्रावरुणयोर्देवयोः विराट्छन्दः अभिश्रीः अभिश्रिता आश्रिता आसीत, विराजा सह मित्रावरुणावपि प्रजापतेः सकाशादजायेतामित्यर्थः इहास्मिन्यज्ञे अह्नः सवनत्रयरूपस्य भागो मध्यंदिनसवनाख्योंशः त्रिष्टुप्छन्दश्च इन्द्रस्य अभिश्रयणीयावास्तां, ताविन्द्रश्च प्रजापतेः सकाशादजायन्त इत्यर्थ। तथा चैतैत्तिरीयकम् "उरसोबाहुभ्यांपञ्चदशंनिरामिमीत तमिन्द्रोदेवतान्वसृज्यत तत्रत्रिष्टुप्छन्दो बृहत्सामेति"। तथा विश्वान् सर्वान्देवान् जगतीछन्दः आविवेश प्रविष्टवती, विश्वेदेवा जगती च प्रजापतेरजायन्तेत्यर्थ। तथाच तैत्तिरीयकम् "तंविश्वेदेवादेवताअन्वसृज्यन्त जगतीछन्दोवैरूपंसामे"ति। उक्तेन प्रकारेण प्रतिमा कासीत्, छन्दः किमासीत्, प्रउगं किमुक्थमिति त्रयाणा मुत्तरं जातं। आज्यं किमासीत, परिधिः कआसीत् इत्यनयोरुत्तरं पुरुषसूक्ते द्रष्टव्यं। तत्र ह्येवमाम्नायते "देवायज्ञमतन्वत वसन्तो अस्यासीदाज्यंग्रीष्मइध्मः शरद्धविः। सप्तास्यासन्परिधय स्त्रिः सप्तसमिधः कृता." इति। अयमर्थः-सर्वरसोत्पादको वसन्तस्तस्य जगत्सर्जनसाधनस्य यज्ञस्य आज्यमासीत्, आज्यदध्यादिभी रसैः सार्धं तादृशो वसन्तोऽजायतेत्यर्थः। सर्वरसानां शोषको ग्रीष्मऋतुः इध्म आसीत्, शुष्कैः काष्ठैः सार्धं ग्रीष्मोऽजायतेत्यर्थः। पच्यमानव्रीहियुक्तः शरदृतुः तस्य यज्ञस्य हविरासीत, सप्तछन्दांसि त्रिःसप्त एकविंशतिर्धा भूत्वा अष्टादश समिधः त्रयःपरिधयश्चासन्। कासीत्प्रमा प्रतिमा किं निदानमित्यनयोरपि प्रश्नयोरप्येवमुत्तरं पूर्वे विश्वसृजोऽमृताः शतं वर्षसहस्राणि दीक्षिताः सत्रमासतेति "एतेनवैविश्वसृजइदंविश्वमसृजन्ते" ति च तैत्तिरीयके समाम्नायते। अतस्तस्य यज्ञस्य सहस्रसंवत्सरपरिमितः कालः प्रमाणं, विश्वस्य जगतः सर्जनादि कारणं प्रवर्तकं फलमित्यर्थः। एतदुक्तं भवति-यदा विश्वसृजो देवाः देव प्रजापति विश्वसृजामयनाख्येन यागेनायजन् तदा उक्ताः सर्वा यागोपकरणाः प्रजापतेः सकाशादजायन्तेति। यतोग्न्यादिदेवताभिः सह गायत्र्यादीनि सप्त छन्दांसि जातानि, अतोहेतोः तेषां छन्दसां अग्न्यादयो देवता इति। छन्दोगचितौ सूत्रितं च "अग्निः सवितासोमो बृहस्पति र्मित्रावरुणा विन्द्रोविश्वेदेवादेवता"इति। एवं प्राजापत्यो यज्ञोनुष्ठितः तेन यज्ञेन ऋषयो मनुष्याश्च चाक्लृप्रे चक्लृपिरे क्लृप्ताः सृष्टा आसन् तेनैव यज्ञेन सर्वं जगदसृजन्नित्यर्थः॥५॥

अनुवाद-मित्रावरुणनामक उभयदेवमें विराट्छन्द आश्रय करके रहा है यानें विराट्छन्दके साथ मित्रावरुण देव प्रजापतिसें प्रकट हुवे। और इस यज्ञमें सवनत्रयात्मक दिनका भाग मध्यंदिनसवनाख्यअंश और त्रिष्टुप्-छन्द इन्द्र देवके आश्रयणीय हुवे, याने पूर्वोक्त अंश और त्रिष्टुप्छन्द और इन्द्र देव प्रजापतिसे प्रकट हुवे। तैतिरीयक में कहा है की "प्रजापतिके उरःस्थलसें और बाहुसें पञ्चदश" का निर्माण हुवा. उसके अनन्तर इन्द्र देव बृहत् साम और त्रिष्टुप्छन्दके साथ प्रकट हुवे. और उसी तरह विश्वेदेव और जगतीच्छन्द प्रजापतिसें प्रकट हुवे, यह बातभी उसी तैतिरीयक श्रुतिमें कही है। पूर्वोक्त प्रकारसें प्रतिमा छन्द और उक्थ एतद्विषयक प्रश्नका समाधान हुवा. आज्य और परिधिके विषयमें पुरुषसूक्तोक्त उत्तर संगत है, पुरुषसूक्तमें कहा है की "सकलरसोत्पादक वसन्त ऋतु जगदुत्पादक साधनात्मक यज्ञका आज्य था, ग्रीष्म समिध था, और शरद् हविष्य था, यानें शुष्ककाष्ठादिकन्केसाथ शोषक ग्रीष्म प्रकट हुवा. और परिपक्व होते हुवे व्रीहियवादिसे युक्त शरदृतु हविष्यरूपसें प्रकट हुवा, सप्त छन्द एकविंश प्रकारसें बन करके अष्टादश समिध और तीन परिधिस्वरूपसें प्रकट हुवे। प्रतिमा और आदिकारणविषयकप्रश्नद्वयकाभी इसी प्रकार उत्तर है, पूर्व "विश्वसृज" नामक देव शतसहस्रवर्षपर्यंत दीक्षित हो करके इस महायज्ञको विस्तृत करते भये, यह प्रसंग तैतिरीयकमें स्पष्ट प्रतिपादित किया है. "विश्वसृज देव इस विश्वको उत्पन्न करते भये", इस हेतुसे उस यज्ञका सहस्रसंवत्सरपरिमित समय प्रमाण है, और जगतका सर्जनादिकारण यानें प्रवर्तक फल है। इसका यह तात्पर्य है की जब विश्वसृज नामक देव प्रजापतिदेवको विश्वसृजके अयनाख्य यागसें यजन करते भये तब पूर्वोक्त सकलयागके उपकरण प्रजापतिसें प्रकट हुवे, और अग्न्यादिक देवके साथ गायत्र्यादिक छन्द प्रकट हुवे है, इसी लिये उन् छन्दोंकी अग्न्यादिक देवता है यानें जिस छन्दके साथ जिस देवताका आविर्भाव हुवा है उस छन्दकी वही देवता है. छन्दोविचितिमें सूत्र हैकी "अग्नि, सूर्य, सोम, बृहस्पति, मित्रावरुण, इन्द्र और विश्वेदेव यह सब तत्तच्छन्दकी देवता है". इस प्रकार प्रजापत्युद्देश्यक यज्ञके अनुष्ठानसें ऋषि और मनुष्य प्रकट हुवे, यानें उसी यज्ञसें सकलविश्व आविर्भावको पाया भया है ॥ ५ ॥

करता भया। परंतु इस् समय उन् आदित्य देवकी कृपाद्वारा उन्के माहात्म्यको जाननेसें उन् आदित्य देवहीमें स्पृहा करता भया, यानें उनी आदित्य देवको स्तुति और परिचर्यात्मिक कर्मोंसें प्राप्त होनेंको चाहता भया ॥ २ ॥

१३६. ८ ७ २३ यंकुंमारनवंरथंमचक्रंमनसाकृंणोः।

एकेषंविश्वतःप्राञ्चमपंश्यन्नधितिष्ठसि ॥ ३ ॥

नचिकेतसंज्ञं कुमारं यमः अनयोत्तरया च प्रलोभयति, हे कुमार ? नवमभिनवम् इतःपूर्वमदृष्टं, अभिनवत्वमेव व्यनक्ति-अचक्रं चक्ररहित मेकेषं एका ईषा यस्य तादृशं तथापि विश्वतः सर्वतः प्राञ्चं मकर्षेणाञ्चन्तं गच्छन्तं यं रथं मनसा अकृणोः मत्समीपं प्रतिगमनाय अध्यवसायात्मकम् ईदृशं यं रथमकरोः, कृत्वा चापश्यन् कर्तव्याकर्तव्यविभागमजानन्नधितिष्ठसि रथमारोहसि। यद्वा स्तोतारं कुमाराख्यमृषिमादित्यः प्रत्यक्षः सन् देहात्मनोर्विवेकं बोधयति-हे कुमार ऋषे चक्ररहितं एकेषं एकः प्राण ईषास्थानीयो यस्य ईदृशमभिनवं सर्वतोगच्छन्तं शरीरात्मकं यं रथं मनसा अन्तःकरणेन अकृणोः अकरोः संकल्पात्मकेन मनसा हि कामो जायते, सत्या हि कामानायां पुण्यपापात्मकं कर्म क्रियते तेन च भोगप्रदानायेदं शरीरमारभ्यत इति परंपरया मनसः शरीरनिष्पादकत्वं, तं शरीरात्मकं रथं अपश्यन्नजानन् सत्स्वरूपापरिज्ञानाद्धेतोरधितिष्ठसि भोगायतनत्वेन स्वीकरोषि ॥ ३ ॥

अनुवाद्—नचिकेता नामक कुमारको यमराज इस ऋचासें और अग्रिम ऋचासें प्रलोभन करते हैं—हे कुमार ? आज दिन पर्यन्त अदृष्ट अत्यन्तनूतन चक्ररहित एकही लाङ्गलदण्डके सहित, तथापि सर्वतरफसें उत्तमगतिवाले अध्यवसायात्मक जिस रथको बना करके मेरे समीप आनेके लिये तुम तत्पर हुवे, और कृत्याकृत्यके विभागको न जानने हुवेभी उसीरथमें अधिष्ठित हुवे हो। अथवा स्तुति करनेवाले कुमारनामक ऋषिको आदित्य प्रत्यक्ष हो करके देह और आत्माका विवेकविषयक बोध करते हैं.—हे कुमार ऋषे ! चक्ररहित प्राणात्मक ईषादण्डवाले अत्यन्तनवीन, और सर्वतःगमनवाले इस देहात्मक रथको अन्तःकरणसें तुमनें रचा है, संकल्पात्मक मनसें कामना होवी है और कामनाद्वारा पुण्यपापात्मक कर्म होते हैं, और उनी कर्मोंसें भोगोपभोगार्थ इस शरीरका

आरंभ होता है, इसलिये परंपरासे मनही देहका निष्पादक है। उसी देहात्मक रथको नहि जानते हुवे उसका भोगार्थ स्वीकार तुम करचुके हो. और इसमें आत्माका अपरिज्ञानही हेतु है ॥ ३ ॥

इस पूर्वोक्त आख्यायिका का सविस्तर निरूपण कठवल्लीमें किया है-जब नचिकेता यमराजके परोक्ष उनके स्थानमें पहुंचे तब तीन रात्रि पर्यन्त असत्कृत रूपसें रहे, यानें यमराज न होनेंसें उनोने खानपानादिकसत्कारका स्वीकार किया नहि. यमराज जब बहारसे आये तब कहनें लगे की हे कुमार ? तुम हमारे स्थानमें आयके तीन रात्रि पर्यन्त उपोषित-असत्कृत रहे हो, इसलिये हमसे तुम तीन वर (दान) मागो. तब नचिकेतानें एक वरमें ब्रह्मविद्याके बोधकी भी याच्ञा किया, उसके अनन्तर यमराजनें उसके अधिकारकी परीक्षाके लिये प्रियतर पदार्थोंका प्रदर्शन करके प्रलोभन किया है. यह बात प्रलोभनरूपसें इस मन्त्रमें कहते हैं. पक्षान्तरमें कुमारनामक ऋषिविशेषने सूर्यकी स्तुति की, तब सूर्यनारायण प्रत्यक्ष होकरके ज्ञानोपदेश करते भये ॥

१३७. ८ ७ २३ यंकुमारप्रावर्तयोरथंविप्रेभ्यस्परि ।

तंसामानुप्रावर्ततसमितोनाव्याहितम् ॥ ४ ॥

हे कुमार नचिकेतः! यं पूर्वोक्तमधिष्ठितं रथं प्रावर्तयः मत्समीपं प्रत्यगमयः विप्रेभ्यो मेधाविभ्यः परि उपरि भूलोके वर्तमानानां मेधाविनां बान्धवानामुपरिष्टादन्तरिक्ष इत्यर्थः। तं रथं साम पित्रा कृतं सान्त्वनं यमसमीपं गत्वा एवमेव त्वया वक्तव्यमिति प्रत्यागमनकारण मुपायोपदेशन मनुप्रावर्तत इतोस्माल्लोकादन्वगच्छत्, कथंभूतं नावि नौवत् तरणसाधनायां बुद्धौ समाहितं सम्यग्धृतं. यद्वा हे कुमार ऋषे यं शरीरात्मकं रथम् अधिष्ठितं प्रावर्तयः संसारं प्रवर्तितवानसि, मेधाविनां मध्ये तं रथं अनुसाम, उपलक्षणमेतत्, ऋक्सामादिसाध्यं स्तोत्रं नावि नौवत्तारयित्र्यां वाचि वेदात्मिकायां समाहितं सम्यक् प्रतिपाद्यत्वेन हितं कर्मच इतः अस्मिन् लोके प्रावर्तत प्रवृत्तमभूत्, इत्थं 'आत्मस्वरूपापरिज्ञानेन शरीरबन्धनं तेन कर्तव्यं व्यवहारजातं 'चोक्तं । 'अथतु' सत्यज्ञानादिस्वरूपमकर्तारं, परमात्मानं यदि स्वात्मतया साक्षात्करोति तदोक्तं न संभवतीत्यभिप्रायः ४ ॥'

अनुवाद–हे कुमार ! (नचिकेत : !) पूर्वोक्त अधिष्ठित जिस् रथको मूलोकमें वर्तमान मेधावि-बान्धवोंके उपरितन-अन्तरिक्ष भागमें मेरे समीप आनेके लिये तुमनें चलाया, उसी रथके भीतर संसारतरणमें नौकाकी तरह साधनभूत बुद्धिमें सम्यक्प्रकारसे धारण किया हुवा " यमराजके निकट जाकरके तुमनें ऐसा ऐसा कहना " इत्यादिक पिताने कहा हुवा सान्त्वन प्रत्यागमनकारण-उपायोपदेश अनुगत-अवस्थित है, यानें तुमारे अध्यवसायात्मक रथमें पितृपदिष्ट उपायोपदेशात्मक आगमनकारण अवस्थित है. अथवा सूर्यपक्षमें-हे कुमार ऋषे! जिस् अधिष्ठित शरीरात्मक रथको संसारमें तुम चला रहे हो ! मेधावियोंके मध्यमें उसी रथमें ऋक्सामादिसाध्य नौकाकी तरह तारनेवाली वेदवाणीमें सम्यक् प्रतिपादित स्तोत्र और हितकर्म इस् लोककी भीतर आश्रित है, यानें आत्मस्वरूपके अज्ञानसें देहबन्धन और देहसें करनें योग्य व्यवहार बताया, और जबकी सत्यज्ञानानन्दस्वरूप अकर्ता परमात्माको स्वस्वरूपत्वेन साक्षात् करता है तब देहबन्धन और कर्तव्यकार्य संगत होसक्ता नहिं. ॥ ४ ॥

१३८. ८ ७ २३ कःकुमारमजनयद्रथंकोनिरवर्तयत् ।

कः स्विक्तद्य्नोब्रूयादनुदेयीयथाभवत् ॥ ५ ॥

कः पुरुषः इमं कुमार मजनयत्, अधिक्षेपे किंशब्दः, कीदशं बालं यमसमीपं प्रहिण्वन् कथं पिता समीचीनः स्यात्, तत्तावदास्तां, कोवा पुरुषः अस्य बालस्य यमसमीपं प्रतिगमनाय तं रथं निरवर्तयत् निर्वर्तितवान् सोपि मूर्ख इत्यर्थः। अथवा येनप्रकारेण अयं कुमारः अनुदेयी अनुदातव्योभवत् भवति तदनुगुणं वचन मुपायकथनं अद्यास्मिन्काले नोस्माकं कःस्वित् को नाम ब्रूयात् अभिदध्यात् प्रथमं यमसमीपं गत्वा पश्चात्ततोनिर्गमनोपायं ब्रुवन्नपि न प्राज्ञ इत्यर्थः। अथवा कुमाराख्य ऋषिः आत्मनः सार्वात्म्यमवगच्छन् स्वव्यतिरिक्तस्यान्यस्यासंभवं किंशब्देन आक्षेपवाचिना, दर्शयति–कुमारं मां कः पिता अजनयत् न कोपि, " अजोनित्यः शाश्वत " इति (क. १२-१८) श्रुत्युक्तरूपोहं भवामि, कथ शरीरात्मकं रथं निरवर्तयत् निर्वर्तयति मद्व्यतिरिक्तस्य निर्वर्तयितुरभावात्, तथा निर्वर्त्यस्यान्यस्यासंभवाच्च अद्यास्मिन्काले सार्वात्म्यानुभवदशायां तं तं प्रकारं कः स्वित्

कोनाम नोस्माकं ब्रूयात्, यथा येन प्रकारेण अनुदेयी अनुदातव्या मद्व्यतिरिक्ता पदार्थसत्ता अभवत् भवति स प्रकारोऽपि दुर्वच इत्यर्थः ॥ ५ ॥

अनुवाद–इस कुमारको किसने उत्पन्न किया होगा! यह (वाक्य अधिक्षेपार्थक है) यानें बाल्यावस्थावाले इस कुमारको यमराजके पास भेजता हुवा इसका पिता सम्यग्बुद्धिवान् कैसे कहा जाय?। यह बात छोडो. किस पुरुषने यमराजके समीप इस बालकको भेजनेको उस रथको चलाया होगा? यानें जिसनें इस (यम)लोकमें आनेको संमति दीहो वहभी मूर्खही है । और यह बालक प्रतिगमन (वापस) करने योग्य है, तो उसके अनुकूल वचन यानें उपायकथन इस समय हमारे पास कौन करेगा? यानें प्रथम यमराजके पास जाकरके अनन्तर वहासे निर्गमनका उपाय बतानेवालाभी प्राज्ञ नहि होना चाहिये। अथवा कुमारनामक ऋषि अपनें सार्वात्म्यभावका अनुभव करते हुवे आत्मव्यतिरिक्त इतर पदार्थके असंभवको आक्षेपवाचक "किं" शब्दसे बतावे है–मुझ (कुमार)को किसनें उत्पन्न किया है? किसीने नहि. क्योंकी "अजो नित्यः शाश्वतोऽयंपुराणः" यह आत्मा अजन्मा अविनाशी-अखंड और प्राचीन-पुराण है, इस लिये मेरा (आत्माका) जन्म संगत हो सक्ता नहिं। और इस देहात्मक रथको किसने बनाया है! मेरे सिवाय दूसरा कुछभी न होनेमें शरीरका बनानेंवाला संगत होसक्ता नहिं, और बनाने योग्यभी पदार्थ मेरे (आत्मस्वरूप)सें भिन्न नहिं, यानें बनानेंवाला और बनानेयोग्य और बनाना–रचनात्मक क्रिया यह सब कलाप पारमार्थिक आत्मस्वरूपही है, तो कौन बनावे? और किसको बनावे? इस कालमें यानें सार्वात्म्यानुभवदशामें उस प्रकारको हमारे पास कौन कहे सक्ता है? की जिस प्रकारसे मुझसें व्यतिरिक्त पदार्थकी सत्ता सिद्ध होसके? यानें आत्मभिन्न पदार्थकी सत्ताका निरूपण दुःशकही॥५।

१३९. ८ ७ २३ यथाभवदनुदेयीततोअग्रमजायत ।

पुरस्ताद्बुध्न आततःपश्चान्निरयणंकृतम् ॥ ६ ॥

अनुदेयी अनुदातव्यः यथा येन प्रकारेण पितरमनुलक्ष्य अयं कुमारो यमेन दत्तोऽभवत् भवति, तथा ततः तस्माद्राजश्रवसापितुः अयं यमसमीपं

गच्छेति वचनस्य अग्रतो वर्तमानं नचिकेतसा यमेन सह वदितव्यं, तवैप्रवसन्तं गतासीतिहोवाचेत्यादिकं ब्राह्मणान्तरोक्त मजायत प्रादुरभवत् पितोपादिष्टवानित्यर्थः, पुरस्तात्ततः पूर्वं बुध्नः उक्तस्याग्रस्य मूलभूतं यमगृहं प्रति गच्छेति वचनमाततः अतिविस्तृतमासीत् अतस्तदशक्यपरिहारमिति पश्चात्कोपं परित्यज्य निरयणं तस्माद्यमान्निर्गमनोपायं कृतं पित्रा आचरितं । यद्वा अनुदेयी आत्मानमनुदातव्या आत्मस्वरूपव्यतिरिक्तान्यपदार्थसत्ता यथा भवन् भवति तदनुगुणं ततः तस्मान्मायाविशिष्टादात्मनः अग्रं स्रष्टव्यविकारजातस्य आद्यं मनस्तत्त्वं सिसृक्षाकारणमजायत उदपद्यत, पुरस्तात्सृष्टेः प्रागवस्थायां बुध्नो मूलम् अव्याकृतं मायात्मकं कारणमेव आततः आसमन्तात्ततं विस्तृतमासीत्, पश्चात्तमसः उत्पत्त्यनन्तरं निरयणमुद्गतानां कार्याणां मस्मात्कारणान्निर्गमनं घटपटादिभेदेन स्वरूपालंभनं कृतं ब्रह्मणा निर्मितं, तथामृद्विकारोघटादिर्मृदोन्यो न भवति आदित्यानुग्रहाद्ब्रह्मभावंप्राप्तस्य मम विकारः प्रपंचो मदन्यो न भवति इति व्यतिरिक्तस्य पित्रादेराक्षेपः पूर्वोक्तः समर्थितः ॥ ६ ॥

अनुवाद–जिस् प्रकारसें वाजश्रवस पिताके पास इस कुमारको यमराजनें वापस भेजा वह प्रकार यम लोकमें भेजनेके प्राक्कालमें पितानें बताया था. क्योंकी प्रथम क्रोधाधीन होकरके " तुम यमराजके पास जाओ " ऐसे कथनको अन्यथा न करनेंसे क्रोधरहित होकरके वहांसे निर्गमनका उपायभी पितानें बताया. अथवा आदित्यपक्षमें आत्मस्वरूपसें व्यतिरिक्त अन्य पदार्थकी सत्ता लोकमें प्रतीत हुई, तदनुगुण उसके अनुकूल स्रष्टव्यविकृतवर्गका आदिभूत सृष्टिकी रचनाका कारण मनरूप तत्त्व आत्मासे उत्पन्न हुवा. सृष्टिके पूर्वकालमें अव्याकृतमायात्मक तत्त्व कारणरूपहीसे विस्तृत था. उसके अनन्तर अज्ञानकी उत्पत्तिके बाद कारणसें उद्गत कार्योंका घटपटादिभेदसें स्वरूपालंभन निर्माण ब्रह्मानें किया, जैसे मृत्तिका का विकार घटशरावादिक मृत्तिकासे अन्य नहि है तैसेंही आदित्यके अनुग्रहसे ब्रह्मभावको पाये हुवे मुझसे विकारात्मक प्रपंच अन्य नहि है, तो मुझसे अतिरिक्त पिता माता इत्यादिकका संभव कैसे हो सका है ? ॥ ६ ॥

१४०. ८ ८ ३५ पतङ्गमक्तमसुरस्यमाययाहृदापश्यन्तिमनसाविपश्चितः ।

समुद्रेअन्तःकवयोविचक्षतेमरीचीनांपदमिच्छन्तिवेधसः॥१॥

मायया अक्तं जीवरूपेणाभिव्यक्तमात्मानं विपश्चितो वेदान्ताभिज्ञाः हृत्स्थेन अन्तर्मुखेन मनसा पतंगं पतति व्याप्नोतीति पतंगः परमात्मा तं पश्यन्ति उपाधिपरित्यागेन जीवात्मनः परमात्मना तादात्म्यं सक्षात्कुर्वन्तीत्यर्थः । अपिच ते कवयः क्रान्तदर्शिनो वेदान्ताभिज्ञाः समुद्रे समुद्रवंत्यस्माद्भूतानीति समुद्रः परमात्मा तस्मिन्नधिष्ठानभूतेन्तर्मध्ये सर्वं दृश्यजातं अध्यस्तत्वेन विचक्षते विपश्यन्तीति अतोऽन्यातिरिक्तस्य मिथ्यात्वात् वेधसः विधातारस्ते मरीचीनां वृत्तिविज्ञानानां परमधिष्ठानभूतं सच्चित्सुखात्मकं यत्परंब्रह्म तदेवेच्छन्ति तद्भावप्राप्तिमेव कामयन्ते ॥ १ ॥

अनुवाद–माया–अविद्याद्वारा जीवस्वरूपसें अभिव्यक्त आत्माको वेदान्तविज्ञानवाले पण्डितलोक मनको अन्तर्मुख करके सर्वव्यापक परमात्माको अपरोक्ष अनुभवतें हैं, याने उपाधिपरित्याग करके जीवात्माका परमात्मासें वास्तविक अभेदको साक्षात् करतें हैं. और वही वेदान्तवित् पण्डितलोक "समस्तदृश्यप्रपंचके अधिष्ठानभूत परमात्मामें सकलप्रपंच अध्यस्त–कल्पित है" ऐसा समझतें हैं. इसलिये द्रष्टासे अतिरिक्त सकल पदार्थ कल्पित होनेसें उनको मिथ्या समझ करके तत्तदाकारवृत्तिविज्ञानके अधिष्ठानभूत सच्चित्सुखात्मक परब्रह्महीको चाहतें है, यानें ब्रह्मभावापन्नही होना चाहतें हैं. ॥ १ ॥

१४१. ८ ८ ३५ पतङ्गोवाचंमनसाबिभर्तितांगन्धर्वोवदद्गर्भेअन्तः ।

तांद्योतमानांस्वर्यंमनीषामृतस्यपदेकवयोनिपान्ति ॥ २॥

पतंगः सर्वोपाधिशून्यो व्याप्तः परमात्मा स सृष्ट्यादौ वाचं मनसा बिभर्ति कानि कानि सृष्टव्यानीति पर्यालोचनेन मनसा सकलार्थप्रतिपादकं वेदं परामृष्टवानित्यर्थः ।स्मर्यतेहि-वेदशब्देभ्यएवादौ निर्ममे स महेश्वर इति। गर्भे हिरण्यमये ब्रह्माण्डे अन्तर्वर्तमानो गंधर्वो हिरण्यगर्भः तां वाचमवदत् प्रथममुच्चारितवान् द्योतमानत्वादिगुणविशिष्टां तां वाचं कवयः क्रान्तदर्शिनो देवाः ऋतस्य सत्यस्य ब्रह्मणः पदे स्थाने निपान्ति निभृतं रक्षंति ॥ २ ॥

अनुवाद–समस्तोपाधिरहित व्यापक परमात्मा सृष्टिके प्रारंभमें मनसें वाणीको धारण करते है, यानें "कौन्‌कौन्‌से पदार्थ सृष्टव्य हैं" ऐसा पर्यालोचन करके मनसें सकलार्थप्रतिपादक वेदका परामर्ष-ज्ञान करते भये. स्मृतिमेंभी कहा हैकी "परमेश्वरने वैदिक शब्दोंसें सृष्टिका निर्माण किया है" हिरण्मय ब्रह्माण्डमें (भीतर) वर्तमान हिरण्यगर्भ उस वाणीको प्रथम बोलने भये की जो वाणी अध्यात्मस्वरूपका प्रकाश करनेमें समर्थ है, और क्रान्तदर्शी देवतालोक ब्रह्मपदमें जिस वाणीका रक्षण–सेवन करते हैं. ॥२॥

१४२. ८ ८ ४८ ऋतंचसत्यंचाभीद्धात्तपसोध्यजायत ।

ततोरात्र्यजायतततःसमुद्रोअर्णवः ॥ १ ॥

अभीद्धात् अभितः प्रकाशमानात् परमात्मनो मायाधिष्ठानरूपादुपादानभूतात् ऋतं सत्यं चाजायत ततस्तस्मादेवेश्वरात् रात्री उपलक्षणमेतदह्नोपि, अहश्चरात्रिश्चाजायत, ततः तस्मादेवेश्वरादर्णवः अर्णसोदकेन युक्तः समुद्रश्चाजायत समुद्रशब्दोन्तरिक्षोदध्योः साधारणइति अभिमतार्थस्य प्रकाशनाय अर्णवशब्देन विशेष्यते ॥ १ ॥

अनुवाद्–सर्वतः प्रकाशमान मायाकेभी अधिष्ठानरूप और उपादानकारणभूत परमात्मासें ऋत और सत्य प्रकट हुवे, और उसी परमात्माहीसे समुद्र अथवा अन्तरिक्षभी प्रकट हुवा ॥ १ ॥

१४३. ८ ८ ४८ समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरोअजायत ।

अहोरात्राणिविदधद्विश्वस्यमिषतोवशी ॥ २ ॥

अर्णवात् समुद्रात् सृष्टात् अधि ऊर्ध्वं संवत्सरः संवत्सरोपलक्षितः सर्वकालः अजायत । श्रूयते हि–सर्वेनिमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि कला मुहूर्ताः काष्ठाश्चेति । सचेश्वरः अहोरात्राणि एतदुपलक्षितानि सर्वाणि भूतजातानि विदधत् कुर्वन् सृजन् मिषतो निमिषादियुक्तस्य विश्वस्य सर्वस्य प्राणिजातस्य वशी स्वामी भूत्वा वर्तते ॥ २ ॥

अनुवाद–रचे हुवे समुद्रके अनन्तर संवत्सरोपलक्षित सकलकाल प्रकट हुवा, श्रुतिमेंभी कहा है की "उस पुराण पुरुषसें निमेषसे आदि समग्रसमय विद्युत् कला मुहूर्त काष्ठा यहसब प्रकट हुवे"। यह परमात्मा अहोरात्रोपलक्षित समग्र भूतभौतिक सृष्टिकी रचना करता हुवा निमेषादियुक्त सकल भूतभौतिक प्रपंचका नियामक–स्वामी बनकरके अवस्थित है ॥ २ ॥

१४४. ८ ८ ४८ सूर्याचन्द्रमसौधातायथापूर्वमकल्पयत्।

दिवंचपृथिवींचान्तरिक्षमथोस्वः ॥ ३ ॥

सूर्याचन्द्रमसौ कालस्य ध्वजभूतौ दिवंच पृथिवीं चान्तरिक्षंच इत्थं त्रिभुवनं स्वः, स्वःशब्दः सुखवाची दिवोविशेषणं, सुखरूपां दिवं तदेतत्सर्वं धाता विधाता यथा पूर्वं पूर्वस्मिन्काले अकल्पयत् सृष्टवान् तथैवागामिन्यपि कल्पे कल्पयिष्यतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

अनुवाद–कालके ध्वज–प्रकाशक सूर्य चन्द्र सुखप्रद स्वर्ग पृथ्वी अन्तरिक्ष यानें त्रिलोकी इनसबोंका विधान करनेवाले उन् परमेश्वरनें जैसे पूर्व कल्पमें पूर्वोक्त पदार्थोंका निर्माण किया था, तैसेही (इस कालमें निर्माण किया है और) अनागत कल्पमें भी निर्माण करेंगे ॥ ३ ॥

॥ ॐ तत्सत् परमात्मने नमः ॥

